# बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य

रामचरण हयारण 'मि

प्रथम संस्करण १९६६
प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८ फैज़ बाज़ार दिल्ली ६
मूल्य १५.००
मुद्रक शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस
के १८ नवीन शाहदरा दिल्ली ३२
सज्जा श्री सुकुमार चटर्जी

बुन्देल-भूमि जिनके साहित्य से गौरवान्वित हुई,
उन्ही राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त,
स्व० मुंशी अजमेरी, कवीन्द्र स्व० नाथूराम
माहौर, आचार्य स्व० घनश्यामदास
पाण्डेय, राष्ट्रीय कवि स्व० घासीराम
व्यास की पुण्य स्मृति में।

—रामचरण हयारण 'मित्र'

# भूमिका

'भावुक जा स हो महत काय होत हैं।'

बन्धुवर श्री रामचरण हयारण मित्र' की इस कृति 'बुन्देलखण्ड की सस्कृति और साहित्य' म उनकी लगन अध्यवसाय और परिश्रम तथा शाघ की प्रवत्ति को देखकर राष्ट्रकवि पदमभूषण डॉ० मथिलीशरण गुप्त की उपयुक्त पक्ति बरबस याद आ गई।

एक भावुक बुन्देलखण्डी कवि क रूप मे मित्रजा हिन्दी ससार के लिए सुपरिचित है। 'भेंट 'सरसा', लौठैया, साधना', 'आरछा दशन 'लाक गायनी', 'गीता दशन आदि उनके कई काव्य सग्रह छपकर प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कविताए और गद्य रचनाएँ भी पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित होती रहती हैं। य मुख्यत बुन्देलखण्ड की गौरवगाथाओ और काव्य के सम्बन्ध म ही होती हैं। स्वाधीनता सघप क काल म कवि सम्मेलनो म उनकी बुन्देली भावुकता का स्वातन्त्र्य प्रेम और उसके लिए शौय, त्याग और बलिदान की ललकार उनकी वाणी से गूजती रहती थी और फिर स्वतन्त्र भारत म भी कवि सम्मेलनो और रेडियो से भी उनकी सरस मधुर और प्रखर ओजस्विनी दोना प्रकार की वाणी गूजती रही है और अपनी प्रासादिकता स श्रोताओ को गहराई स प्रभावित करती रही है। अत कवि और लेखक के रूप म मित्रजी का परिचय दिय जान की जरा भी आवश्यकता नहीं है। केवल इतनी बात पर ध्यान दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि उन्हे कभी किसी विद्यालय म साहित्यशास्त्र भाषा, व्याकरण या इतिहास आदि का विधिपूवक अध्ययन करन का अवसर नही मिला। कवि और लेखक क रूप म उनकी जो भी उपलब्धियाँ हैं या भी कीर्ति उन्होने अर्जित की है वह विशुद्ध उनके अपन ही अध्यवसाय लगन परिश्रम और सत्सग का फल है।

मित्रजी श्रमजीवी है और लखक और कवि भी परन्तु श्रमजीवी
पत्रकार जस अथ म नही। व आजीविका क लिए लख और कविताऐं नही
लिखत। आजीविका के लिए वे शारीरिक श्रम करन वाले बतन बनान
वाल और दुकानदार रहे हैं कवि और लखक तो व अपन स्वभाव
और प्रतिभा क प्रसाद और कवियों क सत्सग क प्रभाव से अथवा यो कह
लीजिए कि पूव जन्म क सस्कारो की प्ररणा म ही हैं। धनोपाजन के क्षेत्र म
मित्र जी न लखक और कवि क रूप म कमान स अधिक व्यय ही किया है।
उनक कविता सग्रह सरसी की भूमिका म मित्रजी क सम्बन्ध म बनारसीदास
चतुर्वेदीजी न बहुत ही ठीक लिखा था— इधर मित्र जी का हथौडा अपना
काम करता रहता है पात्र निर्माण म और उधर उनका मस्तिष्क अबाध गति स
छन्द निर्माण करता जाता है। यह दुहरी सृष्टि मित्रजी की श्रमजीवी प्रतिभा
की अद्भुत विशषता ह। मित्रजी की सर्वोत्तम रचनाए हथौडे स पीतल के
बतनो का निमाण करत हुए ही लिखी गई हैं।

बुदलखण्ड आर्थिक विकास की दष्टि स ही उपक्षित नही रहा है उसक
सास्कृतिक इतिहास और एकता की भी उपेक्षा होती रही है। बुदलखण्ड के
इतिहास और सस्कृति क मूल स्वर म व्यक्त यहाँ की जनता की शौय स्वातन्त्र्य
और सतीत्व की भावना न साम्राज्यवादियो को सदैव आतकित रखा है
पहल मुगलो और फिर विदेशी साम्राज्यवादी आततायी अग्रेजो को भी।
इतना ही नही पौराणिक प्रागतिहासिक और प्राचीन एतिहासिक काल म भी
सम्राटो का यहाँ की जनता के उद्दड स्वातन्त्र्य प्रेम स आतकित रहने का उल्लख
साहित्य और इतिहास म मिलता है। चाणक्य ने तो सम्राट चन्द्रगुप्त को
'दशाण (बुन्देलखण्ड और बुदलखडियो का प्राचीन नाम) और लोगो का न
छेडन म ही राजनीतिक बुद्धिमानी बतात हुए यहाँ क लोगो को दुष्टाच दुष्टाच
कहा है। स्वातन्त्र्यापहारी साम्राज्यवादियो की दृष्टि म दुष्ट इसलिए कि किसी
आक्रमणकारी क सख्यावल अधिक अच्छ शस्त्रबल और धनबल स पराजित
होकर यदि यहाँ क लाग अधीनता स्वीकार करन को विवश भी हो जात थ
तो भी चुपक चुपक बल सग्रह करक व पुन विद्रोह कर दत थ अपन स्वातन्त्र्य
का अपहरण करन वाल आततायियो स विवशता म किय गय वादो क प्रति
वफादार रहन म उन्होने कभी नीतिमत्ता नही माना। शठ शाठ्य समाचरेत्
और नवु म छल करन की नीति को अपनान म उन्होन कभी आगा-पीछा
नही किया इसलिए स्वातन्त्र्यापहारी आततायियो की दष्टि म व सदव 'दुष्ट
और पुष्ट' ही रहे।

फूट डालो और शासन करो यह सभी प्रकार क सामन्तवादी और
पूँजीवादी साम्राज्यवादियों का सामान्य नीति रहा है। बुन्देलखण्ड भी इस

नीति का शिकार रहा है, इस विशेषता के साथ कि वह इस फूट और बाहरी शासन के प्रति निरंतर विद्रोह करता रहा है कभी उजागर तो कभी गुप्त रूप से ही। किसी भी जनता के मनोबल को हीन करने के लिए उसे उसके यशस्वी पूर्वेतिहास और सांस्कृतिक एकता से अपरिचित रखना, राजनीतिक और प्रशासनिक प्रबंध में उसे अलग अलग टुकड़ों में बाट कर रखना साम्राज्य-वादी नीति की सामान्य बातें हैं। मुगल शासक यही करते रहे अंग्रेज शासकों ने भी यही किया। १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बानपुर के राजा मर्दनसिंह और शाहगढ के राजा बखतबली आदि के नेतृत्व में बुंदेलखण्डी जनता ने जिस स्वातन्त्र्य शौर्य और वीरता का परिचय दिया था उसे अंग्रेज साम्राज्यवादी शासक कभी भूले नहीं। फिर बुंदेली जनता को अपने अनुगत छोटे छोटे राजाओं के अधीन छोटी छोटी रियासतों में विभक्त रखना ही उन्हें राजनीतिक दृष्टि से अभीष्ट हुआ और सीधे अंग्रेजी शासन में भी उसने बुंदेलखण्ड को संयुक्तप्रान्त और मध्य प्रान्त में बाँटकर रखा। शिक्षा के क्रम में भी विदेशी आततायी सरकार ने ऐसी कोई बात नहीं रखी जिसमें बुंदेलखण्डी जनता को अपनी ऐतिहासिक गरिमा का अभिमान और अपनी सांस्कृतिक एकता का ज्ञान हो।

खेद तो इस बात का है कि जहां तक बुंदेली इतिहास की गौरवगाथाओं की, उसकी सांस्कृतिक विरासत की तथा एकता की बात है स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भी इस दिशा में कुछ विशेष नहीं हुआ। सामंती छोटे छोटे राज्य तो समाप्त हुए परंतु बुंदेली जनता का राजकीय प्रशासनिक एकीकरण नहीं हुआ। वह आज भी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में बँटी हुई है। मध्य प्रदेश के नक्शे में उत्तर प्रदेश का बुंदेलखण्डी भू भाग एक उल्टे प्रश्नचिह्न की भांति लटका पड़ा हुआ है।

बुंदेलखण्ड के कालिजों के शिक्षाप्राप्त स्नातक भी अभी तक उसके इतिहास और उसकी सांस्कृतिक विरासत से प्राय अपरिचित ही रहते हैं। उसका इतिहास प्राय असंबद्ध दंतकथाओं के संग्रह और उसकी संस्कृति इसी प्रकार के लोकगीत और वार्ताओं आदि के संग्रह के रूप में ही है। यहाँ का इतिहास साहित्य और संस्कृति वनांचल गति से शोध-कार्य करने वालों को पुकार रहा है। एरच आदि स्थानों में संभवत अनेक मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे ढह खुदाई के लिए पड़े हुए हैं। परन्तु बुंदेलखण्ड का न तो कोई अपना एक प्रशासन ही है न कोई विश्वविद्यालय विशेष और न कोई अपना रेडियो केन्द्र। अत बुंदेलखण्ड के सम्बन्ध में ऐतिहासिक शोध कार्य और सांस्कृतिक एकता के कार्य में जिस एकसूत्रता की नितान्त आवश्यकता है वह कहाँ से आए? उसके लिए आवश्यक नेतृत्व, संयोजन और अर्थ-साधन कैसे जुटें?

# निवेदन

बुन्देलखण्ड के इतिहास, संस्कृति तथा साहित्य पर अभी तक कोई प्रामाणिक
ग्रथ प्रकाश म नहीं आया है। इसकी कसक प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति के मन म
द्रौपदी के दुकूल सम बनी रहती है। यद्यपि प० गोरेलाल तिवारी एव दीवान
प्रतिपालसिंह ने एक भाग बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रकाशित कर महत्वपूर्ण
काय किया तथा कुछ बगला और मलयालम भाषा के उपन्यासकारो ने भी
इस दिशा म प्रयत्न किया है तथापि अभी तक जो कुछ हो पाया है वह
धूमिल-सा ही प्रतीत होता है। इसका मूल कारण यह रहा कि अकबर के
शासनकाल से औरगजेब के समय तक बुन्देलो से मुगलो का विरोध चलता रहा
जिसके फलस्वरूप मध्यकाल के अस्सी वर्षों म बुन्देलखण्ड के लेखको द्वारा यहाँ
के इतिहास को प्रकाशरूपी धरती प्राप्त ही न हो सकी यह सदैव भ्रमणावद्ध
भटकता ही रहा, जिसके कारण सगठित न हो सका और होता भी कैसे क्योंकि
बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक सामग्री मुगल शासको के हस्तगत थी।

इसम सर्वप्रथम आते हैं मुगल दरबार म लिपिबद्ध किये गये, अखबारात
ए दरबार ए मुअल्ला। जब औरगजेब का दरबार भरता था, तब अखबार
नवीस प्रत्येक प्रात का ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा साहित्यिक विवरण
उपस्थित करते थे जिसकी नकल प्राय मत्री उमरा और नवाबो को ही प्राप्त
होती थी।

औरगजेब के शासनकाल म इस प्रकार का जो सग्रह हुआ था, उसका
एक बहुत बडा लिपिबद्ध भाग जयपुर राज्य के सग्रहालय म था। इस सग्रह
का कुछ अश कर्नल टाड लन्दन ले गया जो कि वहाँ रायल एशियाटिक सोसायटी
सग्रहालय म सुरक्षित है।

सुख्यात अंग्रेज लेखक ग्रियर्सन ने अन्य आचलिक भाषाओ के साथ

बुन्देलखण्डी के शोध का बडा महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। लदन मे सग्रहीत बुन्देलखण्ड की इस ऐतिहासिक सामग्री के कुछ अश का सर यदुनाथ सरकार ने नक्ल कराकर अपने शोध ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑव औरगजेब' मे वणन किया है।

सर यदुनाथ सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड पर जो सामग्री सग्रहीत की गई उससे बुन्देलखण्ड के इतिहासवेत्ताओं को अत्यधिक प्रेरणा मिली है, इसी से उनकी यशस्वी लेखनी यह वहत काय करने का साहस कर सकी है।

इस प्रकार बुन्देलो और बुन्देलखण्ड के इतिहास, सस्कृति तथा साहित्य के प्रकाश का पुन उदय हुआ और सन १६२१ म गाधीजी के जन आन्दोलन मे इसको एक नवीन दिशा मिली, जिसम ग्रामो के साथ साथ बुन्देलखण्ड का साहित्य जाग्रत हो उठा, और जिसके शोध के लिए कई विद्वानों ने अपनी लेखनी को सम्हाला। इसम डा० भगवानदास गुप्त डॉ० गनेशीलाल बुधौलिया, डॉ० शकरलाल शुक्ल तथा साहित्य महोपाध्याय प० श्यामसुन्दर बादल एव साहित्य महोपाध्याय डॉ० भगवानदास माहौर और डॉ० राधेश्याम द्विवेदी को अपने अपने चुने हुए विषयो म काफी सफलता मिली। इनकी लेखनी द्वारा बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक सास्कृतिक तथा साहित्यिक जन जीवन को नवीन चेतना प्राप्त हुई है। फिर भी बुन्देलखण्ड जैसे विशाल प्रदेश की ऐतिहासिक, सास्कृतिक तथा साहित्यिक सामग्री एकत्र करना सहज काय नही क्योकि यह प्रात शताब्दियो से खण्ड खण्ड म विभक्त रहा है और जब-जब इस प्रदेश म सगठन हुआ, तब तब उसको गृह कलह की बाधाओ ने विलग कर दिया, किन्तु यहाँ की वीरप्रसविनी वसुधरा अपने साहस को बटोरे हुए इस प्रदेश की रक्षा के लिए अपन गभ से साहसी सपूतो को जन्म देती ही रही।

बुन्देलखण्ड वन उपवन, पशु पक्षियो, सर सरिताओ और पवतमालाओ मे आच्छादित प्रदेश है। इस प्रदेश की षट ऋतुएँ अपने अपने निश्चित समय पर प्रदक्षिणा किया करती हैं। बुन्देलखण्ड की सस्कृति और यहाँ के लोक साहित्य की रक्षा हेतु बुन्देले नरेशो ने जब जब इस प्रदेश पर आक्रमण हुए तब तब हँसते हसते युद्ध की भीषण लपटो म अपने प्राणो की होम दिया। बात-की बात म आन बान पर मर मिटना यहाँ के वीरो के लिए सदा खेल रहा है। यही मुख्य कारण है कि यहाँ की सस्कृति और लोक साहित्य ग्रामो म सुरक्षित है।

सस्कृति के आधारभूत यहाँ के रहन सहन रीति रिवाज, तीज-त्यौहार, व्रत पूजन और शिल्प-कला स्थापत्य कला तथा ललितकला आदि का दिव्य दिग्दशन आपको इस आधुनिक युग म भी बुन्देलखण्ड के प्रत्यक ग्राम म अवलोकन करने को मिलेगा।

लोक-साहित्य 'लोक' तथा साहित्य दो शब्दो मे बना है। 'लोक' शब्द साधारणजन के प्रयोग मे आता है और 'साहित्य' शब्द लोकहित

के रूप में प्रकट हुए हैं। इस दृष्टि से लोक साहित्य जन मन के हृदय की अनुभूतियों का एक अक्षय स्रोत है।

लोक साहित्य को भारतीय मनीषियों ने अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा कई रूपों में विभाजित किया है। इनमें लोक-गाथा, लोकोक्ति, लोकवार्ता, लोक कथा, लोक कहानी, लोक गीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोक चित्र आदि आते हैं और इनकी उपमा उन्हीं। उन विभागों का कल्प में जो हैं जिनकी मान्यता अतीत काल से जन मन में विस्तृत रूप में सन्तत पूजा और चलता रहा है।

लोक-गीत का प्रथम स्वर प्रकृति में पले हुए पृथ्वी के पुत्र-पुत्रियों द्वारा प्रस्फुटित हुआ है जिनका प्रत्येक उनका अपना लहलहाते हुए गायों और बछियों की रक्षा हेतु दिन रात जागते समय टहलते हुए बरोसों के बीच घूमते, गर्जन करते हुए काले बादलों, नाचते हुए मयूरों, पिउ पिउ रटते हुए चातकों, गुंजार करते हुए भ्रमरों और कल-कल निनाद करती हुई वनैया स्निग्ध घनेरी घनश्याम वन पुष्पावली, वाटिका आदि सरिताओं में मिली है। यही मुख्य कारण है कि लोक गीतों में स्वच्छन्द हृदय के स्वाभाविक उद्गार पाये जाते हैं जो कि कृत्रिमता से मुक्त लोक में प्रवाहित हैं। इन लोक गीतों में सदैव रसमय जीवन का अथाह समुद्र लहराता रहता है जो कि जन जीवन में अलौकिक सौन्दर्यपूर्ण माधुर्य का सृजन करके सुख और शान्ति प्रदान करता है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के कथनानुसार 'लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है उसमें भूत, भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है लोक कृत्स्नज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का आध्यात्मिक शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का रूप है। लोक, पृथ्वी मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।

लोक गीतों का जो उल्लेख मनीषियों द्वारा हिन्दी साहित्य में हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि लोक-साहित्य जन कल्याण की दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। कबीर ने अपने काव्य में 'दुलहनी गावहु मंगलचार' के गीत द्वारा लोक भावना को मुखरित किया है और गोस्वामी तुलसीदास ने सीता के जीवन चयन का सार ही ग्राम वधूटियों की बातों में बताया है। वह वनवासिनी सीता से मधुर स्वरों में पूछती हैं

> कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे।
> सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुची सिय मनमहँ मुसकानी।
> सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी।

बहुरि बदन बिधु अचल ढाकी । पिय तन चितय भौंह कर बाकी ।
खजन मजु तिरीछे नयनन । निजपति कहेउ तिनिहिं सिय सयनन ।
भइ मुदित सब ग्राम बधूटी । रक्न्ह राय रासि जनु लूटी ।

वास्तव मे सीता को मात गृह तथा श्वसुर गृह कहीं भी सुख शाति की प्राप्ति नही हुई । यहाँ तक कि लका की अशोक वाटिका से मुक्त होने पर भी कुछ दिनापरा त राम न उनको गभावस्था म ही वनवास दे दिया, जिसकी कोई अवधि नही थी । इसके फलस्वरूप उनको विवश होकर ऋषि वाल्मीकि की शरण लेनी पडी । इसम स्पष्ट है कि सीता के हृदय को अपन जीवन म ग्राम-वधूटिया के अतिरिक्त कहीं स्नेह का स्रोत नहीं मिला ।

'महाभारत म भी राजसूय यज्ञ के समय लोक गाथाओ के गीतो को गाया गया है । सस्कृत ग्रन्थो मे भी गधर्वों द्वारा लोक गीता तथा लोक नृत्यों को प्रस्तुत किया गया है । इसस यह स्पष्ट है कि लोक साहित्य की मा यता प्राचीन काल म ही रही है ।

बुन्देलखण्ड एक विशाल प्रदेश है और इस प्रदेश की पावन भमि ही कवीन्द्र केशवदास, गोस्वामी तुलसीदास, बिहारी, मतिराम पदमाकर आदि कविया की जन्मदात्री रही है जिन कविया ने अपन साहित्य द्वारा सरस्वती का अपार भण्डार भरा है किन्तु यह प्रश्न उठता है कि इन कविया ने बुन्देलखण्डी बानी म साहित्य का सृजन क्यो नही किया । इस विषय म हमको कुछ विद्वाना का मत प्राप्त हुआ है कि उस समय की बुन्देलखण्डी भाषा के दो रूप थे—साहित्यिक और बोलचाल की भाषा । नायिका भेद क ना ग्रन्थ लिखे गय व बुन्देलखण्डी साहित्यिक भाषा म लिखे गय थ । लकिन ब्रजलीला प्रकरण क कारण कुछ कालान्तर में वही साहित्य ब्रज भाषा साहित्य के नाम म प्रचलित हुआ । इस प्रकार बुन्देलखण्डी बोलचाल की भाषा अलग हो गई जो कि आज भी प्रचलित है । लकिन हम इस भाषा विवाद में न पडकर बुन्देलखण्डी लोक गीतों के अमर नायक ईसुरी की वन्दना करत हैं जिन्होंने अपनी बाणी म बुन्देलखण्डी बानी म ही साहित्य का सृजन करक मातृ भाषा बुन्देलखण्डी की रक्षा की और इस प्रकार वह मात भूमि क प्रति श्रद्धा रह हैं । उन्होंने अपन फाग म लिखा है गगा जू ला मरें ईसुरी दाग बगौरा होजा । ईसुरी के फागो का प्रचार आज भी बुन्देलखण्ड क प्रत्यक ग्राम म है । ईसुरी न जितने लोक गीतो का सृजन किया है उनकी गणना अभी तक नहीं हो सकी है । उन्होंने स्वय अपन अनन्य प्रेमी, जिसको वह रजउ'—यह शब्द राधिका के लिए प्रयोग किया गया है—कहकर सम्बोधन करते थ उसक प्रति लिखा है ।

' लिखीं सात सौ सात ईसुरी रजउ रजउ की फागें ।"

इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अन्य प्रकरणों पर भी कितना साहित्य इस जनपद को दिया होगा।

बुन्देलखण्डी गीतों के प्रबल भक्त स्व० मुंशी अजमेरी ने ईसुरी के फागों को साहित्य सम्मेलनों में गा गाकर तथा उनकी विवेचना करके ब्रज के रसिया से श्रेष्ठ बताया है। उनका अन्य बोलियों की अपेक्षा बुन्देली बोली के माधुर्य के संबंध में यह मत था कि जो ग्रामीण क्रोधातुर हो किसी को गाली देते हैं उसमें भी जू शब्द का प्रयोग करते हैं जो सभ्यता का प्रतीक है और यह प्रयोग अन्य बोलियों में नहीं है।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' मासिक द्वारा इस जनपद की और उसके लोक साहित्य की जो सेवा की है उसके लिए यह क्षेत्र उनका सर्वदा ऋणी रहेगा, तथा श्री कृष्णानन्द गुप्त ने ईसुरी के फाग नामक तीन संग्रह प्रकाशित करके यहाँ के क्षेत्रीय गीतों की रक्षा की है तथा स्व० महाराज वीरसिंहदेव द्वितीय स्व० श्रीकृष्ण बल्देव वर्मा और पं० गौरीशंकर द्विवेदी शंकर ने भी इस दिशा में यथेष्ट कार्य किया है।

'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' नामक इस लघु पुस्तक के लिखने के अपने प्रयास को हम एक टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डी ही मानते हैं। भविष्य में इस साहित्य का मार्ग दर्शन इस क्षेत्र के मूर्धन्य विद्वान अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

इस शोधकार्य में जिन सुहृद मित्रों कवियों लेखकों और भूमिका लेखक श्रद्धेय पद्मभूषण डा० वृन्दावन लाल वर्मा एवं साहित्य मनीषियों ने सौहार्दपूर्ण सम्मतियाँ प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत किया उनके प्रति मैं आभारी हूँ। साथ ही भाई राजेन्द्र शर्मा एवं राजीव सक्सेना ने ग्रन्थ को बड़ी सावधानी से सम्पादन कर मुझे उपकृत किया है। उनके प्रति भी मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

विनीत

रामचरण हयारण 'मित्र'

## प्रेरणाप्रद

'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' शोध ग्रन्थ में 'मित्र' जी का व्यक्तित्व अपनी असाधारण विनम्रता तथा स्वाभाविक सहृदयता के साथ पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो गया है।

बुन्देलखण्ड में जो कुछ सर्वोत्तम है मित्र जी उसके सच्चे प्रतिनिधि हैं। वे खड़ी बोली ब्रजभाषा तथा बुन्देलखण्डी के बहुत प्रभावशाली कवि हैं और इस प्रकार भावी साहित्यकारों के लिए पथ प्रदर्शक। यद्यपि स्व० गुप्त बन्धुओं तथा श्रद्धेय वृन्दावनलाल वर्मा ने अखिल भारतीय कीर्ति अर्जित की और निस्सन्देह वे हमारे पूज्य बन गये पर मित्र जी जानपद जन हैं और बुन्देलखण्ड गुण गरिमा के सच्चे प्रतीक। उन्होंने जो यह बुन्देलखण्ड का विशद कार्य किया है उससे बुन्देलखण्ड पर शोधकर्ताओं को प्रेरणा तो मिलेगी ही, अतएव बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य की सुरक्षा होगी।

फिरोजाबाद
१४-६-६८

—बनारसीदास चतुर्वेदी

# बुन्देलखण्ड की साहित्यिक परम्परा का विकास

प्राचीन भारतीय साहित्य म वि ध्य पवत का महत्त्व प्रसिद्ध है। इतिहास मे भी वि ध्य पवत के अनक उल्लख तथा रोचक वत्ता त मिल्त हैं। सवप्रथम कोपीतकी उपनिषद (२, १३) म विन्ध्य की चचा दक्षिण पवत के रूप म मिल्ती है। वशिष्ठ धम सूत्र (१, ६) तथा मनुस्मृति (२ १२) म भी वि ध्य प्रशस्ति का वणन मिल्ता है। इसके अतिरिक्त श्री दवी भागवत के दशम स्कध के सप्तम अध्याय म वि ध्याचल की महान विनम्रता का उल्लेख इस प्रकार आया है

चकये चाचलस्तूण दष्टववाग्रे स्थित मुनिम।
गिरि खवतरोमूत्वा विवक्षु रवनीमिव ॥
दडवत्पतितो भूमौ, साष्टाग भक्ति भावित ।
त दृष्टवा नम्र शिखर विन्ध्य नाम महागिरिम ॥

(धन्य है महान पुरुषो म महानता का होना। श्री पवतराज विन्ध्याचल गिरि न जब अपने श्री गुरु अगस्त्य ऋषि को अपन समक्ष आत दखा तो तत्काल सूयस्पर्धा रूप स्वाभिमान त्याग कपित हो धरावन धराशायी हो गय और शुष्क काष्ठवत होकर बड भक्ति भाव से उन्ह साष्टाग प्रणाम किया।)

भगवान् वेद व्यास न वि ध्य वनस्थली के पावन अचल, म जो सवदा से सप्तऋषियो की तपोभूमि रही है जब रा क्षसो को क्रीडा करते हुए देखा तब उन्हान अपन मनोभाव इस प्रकार प्रकट किए

आचक्ष्महे तव किमद्यतनी मवस्था तस्याद्य,
विन्ध्य शिखरस्य मनोहरस्य। यत्रव सप्त मुनय
तपसा निषेदु सोऽय विलास वसति पिशिताशनानाम।

(मम चित रत्न भद र)

राजगृह मधुपुरी, अवती, नरपुर (नरवर) तक विस्तत था, उसकी आदि राजधानी पद्मावती इसी भू भाग पर अवस्थित थी। नागवश के पीछे मौयवशीय अशोक, सुगवशीय अग्निमित्र तथा पुष्यमित्र गुप्तवशीय समुद्रगुप्त, कुमार गुप्त नसिंह गुप्त, हूण, तूयपणि मिहिरकुल चन्देलवशीय महाराज चन्द्र ब्रह्म से लेकर प्रमाददेव, चौहान पृथ्वीराज यावनी वश के महमूद गजनवी, कुतुबुद्दीन ऐबक, शमसुद्दीन अल्तमश, गयासुद्दीन बल्बन फिरोजशाह तुगलक सिकन्दर लोदी व इब्राहीम लोदी, मुगलवशीय बाबर हुमायु अकबर महाराना सग्रामसिंह शेरशाह सूर तथा बुन्देलवशीय महाराज वीरसिंहदेव चम्पतराय छत्रसालादि और अन्त म महाराष्ट्र जातीय वीरो की वीरोचित लीलाओं के इतिहास की रगभूमि भी यही प्रदेश रहा है। उत्तरीय भारत और दक्षिण पथ का कटिबध होने के कारण ऐसा कोई सावदेशिक परिवतन हो ही नही सका जिसके मुख्य अभिनय इस भूमि पर न हुए हो।

प्राचीन से प्राचीनतम तीथ क्षेत्र तथा समृद्धिशाली राजधानियो तथा व्यापारिक नगरों, मन्दिरो, आवासों, गढा गुफाओ स्तूपों और जलाशया के अवशेष यहाँ कितने ही स्थानों म पाए गए है।

देवगढ कालिजर, महोबा तथा खजुराहा के मन्दिरा और पचरई तथा गोलाकोट की मूर्तियों का समूह शिल्प कला के अद्वितीय दृष्टान्त हैं। अपनी प्राचीन ख्यातियों के कारण इस वीर क्षत्र का ग्राम ग्राम थर्मापोली कहा जाये तो अनुचित न होगा और चन्द्र ब्रह्म राहिल ब्रह्म मदन ब्रह्म कीर्ति ब्रह्म ब्रह्मजीत, आल्हा, ऊदल मलखान, वणवीर, रुद्रप्रताप, मधुकर शाह वीरसिंह देव उदया जीत, चम्पतराय छत्रसालादि अनुपम वीरा का लीला-क्षेत्र भी यही भूमि रही है।

वर्षा तथा शरद काल मे यहाँ के प्राकृतिक दश्य ऐसे मनोरम हो जाते हैं कि उनके वणन के लिए 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' का वाक्य अक्षरश चरिताथ होता है। कालिजर कोट की पाताल गगा चित्रकूट के मन्दाकिनी, तटस्थ अनुसूया गुप्त गोदावरी पन्ना राज्यान्तगत पण्डवाहा का जल प्रपात, जबलपुर का धुआधार प्रपात, बरुआ सागर निनारा का तालाब, महोबे के कीर्ति सागर मदन सागर, विजया सागर, ओरछा बेतवा तटस्थ, कचना घाट, टीकमगढ का वीर सागर खजुराहा का खज्जूर सागर थासी का लक्ष्मी सरोवर, आदि अनेक स्थान अनुपम प्राकृतिक सौन्दय के भण्डार है।

इस पुनीततम वीर क्षत्र मे प्राकृतिक रमणीयता के साथ-साथ उवरा होने की भी अपूव शक्ति है। जडी बूटी कदमूल अन्नादि सभी प्रकार के उदभिज पदाथ यहाँ प्रचुरता से होते है। हीरों म लेकर लोहे और प्रस्तर तक की खानें हैं। भयानक विषधर सर्पों अरण्य महिषो और सिहो स लेकर साधारण

से-साधारण जन्तु तक यहाँ पाये जाते हैं। यहाँ की जलवायु भी स्वास्थ्यप्रद है। प्राचीनतम अनार्य जातियाँ यहाँ आज भी अवस्थित हैं। साहित्य और संगीत के आचार्यों की तो यह जन्मभूमि ही है। कवि कुलगुरु महर्षि वाल्मीकि, भगवान् वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन, भवभूति, कृष्णदत्त मिश्र, प० काशीनाथ जी आदि संस्कृत के कवि यहीं जन्मे थे। अपने पूर्व जन्म के जीवन काल की अवधि पर सन्तोष न करके कवि कुलगुरु महर्षि वाल्मीकिजी पुनः इसी भूमि पर प्रातःस्मरणीय श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के रूप में अवतरित हुए थे जिनके भाषा-काव्य में वर्णित रामायण के पुण्य प्रसाद से हिन्दू धर्म तथा संस्कृति ने अमर जीवन प्राप्त किया है। भाषा-काव्य के परमाचार्य कवीन्द्र केशवदासजी मिश्र ने भी इसी प्रदेश में जन्म पाया था। इनके अतिरिक्त पद्माकर, मतिराम, भूषण, बिहारी और आधुनिक काल के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, वियोगी हरि, आचार्य घनश्यामदास पाण्डेय, राष्ट्रीय कवि घासीराम व्यास, कवीन्द्र नाथूराम माहौर, रावराजा हरनाथ, कविराजा, बिहारी साहित्य शिरोमणि रामचरण हयारण 'मित्र' अन्यान्य शतशः भाषा-कवियों ने भी इसी देश में जन्म लेकर अपने काव्य कौशल से जनता को मुग्ध किया है। इसके अतिरिक्त इतिहास के महान् लेखक उपन्यास सम्राट् वृन्दावनलाल वर्मा और प्रसिद्ध समालोचक डा० रामविलास शर्मा इसी बुन्दलभूमि की देन हैं। बाबा रामदासजी व तानसेन एवं कुन्दनसिंह सरीखे संगीत कलाविद भी इसी जनपद के रत्न थे और मल्लविद्या तथा क्रीडा के विश्वविजयी गामा एवं ध्यानचन्द की जन्मभूमि भी यही प्रदेश है। संक्षेप में सभ्य समाज की उच्चतम विविध ललित-कलाओं का यहाँ पर्याप्त विकास हो चुका है और उनके पूर्ण ज्ञाता यहाँ जन्म ले चुके हैं।

(मधुकर पृष्ठ ३३ अंक ६)

इसके अतिरिक्त यहाँ की क्षेत्रीय भाषा (बुन्देलखण्डी), जिसका सौष्ठव अन्य प्रदेशों की किसी भी क्षेत्रीय भाषा के समक्ष अधिक रस माधुर्यपूर्ण रहा है, प्रत्यक्ष है।

बुन्दलखण्डी लोकगीतों का स्वाभाविक सृजन, जो कि लोकमाता धरती के पुत्रों और पुत्रियों द्वारा काले बादलों की गर्जना उत्फुल्ल मन से नाचते हुए मयूरों, और भार से लदे हुए आम्रनिकुंजों में पियु पियु शब्द रटते हुए उन्मत्त चातकों तथा वसंत वायु से विलसित झूमती लुकती हुई खेतों की बालों से प्रभावित होकर ही हुआ है।

लोकगीत किसी भी प्रदेश का हो, वह उसकी संस्कृति का द्योतक होता है। उसमें उसके चरित्र और शौर्य का मनोवैज्ञानिक तत्त्व बड़ी सूक्ष्मता से छिपा रहता है और किसी भी अध्ययन और चिन्तनशील व्यक्ति का ध्यान

हो सकता है। देखिये, अध्ययन कीजिये इस बुंदेलखण्डी लोक गीत की पंक्तियों का

हमने लखन जानकें टेरे,
नातर चले जात भौतेरे ।
नेरे रये सुकरमन के तुम,
और कुकरमन डेरे ।

(हमने आपको लक्ष्मण, जोकि कर्मवीरों में श्रेष्ठ थे, के अनुरूप समझकर ही बुलाया है। वैसे तो इस मार्ग से सहस्रों व्यक्ति गुजर रहे हैं और आप सदैव सुकर्मों में रत और दुष्कर्मों से विलग रहने हो। शौर्य और चरित्र का एक साथ कैसा सुन्दर समन्वय इस लोकगीत में प्रदर्शित किया है, उस धरती पुत्र ने !)

यहां हम एक लोकगीत और उद्धृत कर रहे हैं जिसमें एक ग्रामीण लड़की, मथुरावली अपने सतीत्व की रक्षा हेतु हँसते हँसते जलकर भस्म हो जाती है। बुंदेलखण्ड में लोकगीतों में वीरगाथाएँ भरी पड़ी हैं। मथुरावली इन्हीं में से एक गीत की वीरांगना है। यह गीत श्रावण मास में झूले पर गाया जाता है।

मथुरावली का काका अपने भाई से अर्थात मथुरावली के पिता से कुछ अनबन हो जाने के कारण विद्रोही हो जाता है और एक तुर्क को उस पर आक्रमण करने के लिए बुला लाता है। युद्ध में तुर्क किसी प्रकार उसके भाई की रूपवती पुत्री मथुरावली को बन्दी बना लेता है और उसे अपने शिविर में ले जाकर रखता है। यहीं से गीत प्रारम्भ होता है

सगौ (री) कका बरी भओ,
ल्याओ तुर्किया चढ़ाय,
बन्दी परी है मथुरावली।

मथुरावली का सगा काका बैरी हो गया है और एक तुर्क को चढ़ाकर लाया है। इस प्रकार मथुरावली बन्दी हो गई है। तब आकाश में उड़ती हुई एक चील द्वारा मथुरावली अपने सम्बन्धियों को समाचार भेजती है

सरग उड़न्ती एक चील री,
आधे सरग मड़राय,
जाय जो कहिऔ मेरे ससुर सों,
सास सों कहिऔ समझाय,
बन्दी परी है मथुरावली।

संवाद पहुंच जाता है। मथुरावली के सगे-सम्बन्धी तुर्क के पास (गीत में आगे मुगल हो गया है) उसे छुड़ाने के लिए भेंट पर भेंट ले जाते हैं।

मे-साधारण जन्तु तक यहाँ पाए जाते हैं। यहाँ की जलवायु भी स्वास्थ्यप्रद है। प्राचीनतम अनार्य जातियाँ यहाँ आज भी अवस्थित हैं। साहित्य और संगीत के आचार्यों की तो यह जन्म भूमि ही है। कवि कुलगुरु-महर्षि वाल्मीकि भगवान् वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन भवभूति कृष्णदत्त मिश्र प० काशीनाथ जी आदि संस्कृत के कवि यहीं जन्मे थे। अपने पूर्व जन्म के जीवन काल की अवधि पर सन्तोष न करके कवि कुलगुरु महर्षि-वाल्मीकिजी पुन इसी भूमि पर प्रातःस्मरणीय श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के रूप में अवतरित हुए थे जिनके भाषा-काव्य में वर्णित रामायण के पुण्य प्रसाद से हिन्दू धर्म तथा संस्कृति ने अमर जीवन प्राप्त किया है। भाषा-काव्य के परमाचार्य कवीन्द्र केशवदासजी मिश्र ने भी इसी प्रदेश में जन्म पाया था। इनके अतिरिक्त पद्माकर मतिराम भूषण बिहारी और आधुनिक काल के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त वियोगी हरि आचार्य घनश्यामदास पाण्डेय राष्ट्रीय कवि घासीराम व्यास कवीन्द्र नाथूराम माहौर रावराजा हरनाथ कविराजा बिहारी साहित्य शिरोमणि रामचरण ह्यारण 'मित्र' प्रभृति अन्यान्य भाषा-कवियों ने भी इसी देश में जन्म लेकर अपने काव्य कौशल से जनता को मुग्ध किया है। इसके अतिरिक्त इतिहास के महान् लेखक उपन्यास-सम्राट वृन्दावनलाल वर्मा और प्रसिद्ध समालोचक डॉ० रामविलास शर्मा इसी बुन्देल-भूमि की देन हैं। बाबा रामदासजी व तानसेन एवं कुलदीपसिंह सरीखे संगीत कलाविद् भी इसी जनपद के रत्न थे और मल्लविद्या तथा क्रीडा के विश्व-विजयी गामा एवं ध्यानचन्द की जन्मभूमि भी यही प्रदेश है। संक्षेप में सभ्य समाज की उच्चतम विविध ललित-कलाओं का यहाँ पर्याप्त विकास हो चुका है और उनके पूर्ण ज्ञाता यहाँ जन्म ले चुके हैं।

('मधुकर' पृष्ठ ३३ अंक ६)

इसके अतिरिक्त यहाँ की क्षेत्रीय भाषा (बुन्देलखण्डी) जिसका सौष्ठव अन्य प्रदेशों की किसी भी क्षेत्रीय भाषा के समक्ष अधिक रस-माधुर्यपूर्ण रहा है प्रत्यक्ष है।

बुन्देलखण्डी लोकगीतों का स्वाभाविक सृजन जोकि लोकमाता धरती के पुत्रों और पुत्रियों द्वारा काले बादलों की गर्जना उत्फुल्ल मन से नाचते हुए मयूरों और भौंरों से लदे हुए आम्रनिकुंजों में पियु पियु शब्द रटते हुए उन्मत्त चातकों तथा वसन्त वायु में विलसित मस्ती से झुकती हुई खेतों की बालों से प्रभावित होकर ही हुआ है।

लोकगीत किसी भी प्रदेश का हो वह उसकी संस्कृति का द्योतक होता है। उसमें उसके चरित्र और शौर्य का मनोवैज्ञानिक तत्त्व बड़ी सूक्ष्मता से छिपा रहता है और किसी भी अध्ययन और चिन्तनशील व्यक्ति का दर्शन

किन्तु तब मुगल, उन्हें स्वीकार नहीं करता। वह तो मयुरावली के अनुपम सौन्दर्य पर रीझा है। सारे प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। गीत इस प्रकार आगे चलता है

ससुर मिलाओ (हो) ले चल,
ले चल हतिया हजार,
ले रे मुगल के जे हतिया
बहू नो छोड़ों मयुरावली।

तब वह मुगल (तुर) मयुरावली के ससुर को उत्तर देता है

तेरे हथियन कौं मैं का करौं,
मेरे हैं गदहा हजार,
एक न छोड़ों मयुरावली।
जाके हैं लम्बे लम्बे केस,
भौंहें कटीली, नैना रस भरे
लै जाऊँ काबुल देस,
बीबी बनाऊँ—मयुरावली।

ससुर जेठ, देवर, तुर (मुगल) के सम्मुख सब अपनी-अपनी भेंट लेकर आते हैं। किन्तु वह सबको यही उत्तर देता है कि मैं अनुपम सुन्दरी मयुरावली को किसी भी लालचवश नहीं छोड़ूँगा। उसके उपरान्त उसके साहेब (पति) हजार नर्तकियाँ लेकर आते हैं और यह भाव प्रकट करते हैं कि रे मुगल मयुरावली (पत्नी) में मेरे प्राण निवास करते हैं तुम उसको छोड़ दो और यह हजार नर्तकियों ले लो। तब मुगल उत्तर देता है कि मैं नर्तकियों को लेकर क्या करूँगा? मेरे पास तो हजार बीवियाँ हैं। मयुरावली को मैं नहीं छोड़ूँगा, मैं उसे काबुल देश ले जाऊँगा। उसे मैं अपनी बीबी बनाऊँगा। इस प्रकार उसके परिवार के सभी सम्बन्धी मयुरावली को मुक्त कराने में असफल रहे। तब उसका भाई प्रयत्न करता है। वह मुगल के शिविर पर चढ़ाई करता है। लेकिन फिर वह विचार करता है कि युद्ध में व्यर्थ रक्तपात होगा। इस अवसर पर उसकी बहिन मयुरावली अपने भाई से लौट जाने को कहती है और यह विश्वास दिलाती है कि भाई मैं तेरी पगड़ी की लाज रखूँगी। भाई लौट जाता है। यहाँ से गीत बड़ा करुण भावोत्पादक और कुल की आन-बान लेकर आगे बढ़ता है

बिरन मिलाओ (हो) ले चले
लै चल तेगा हजार,
बदो पाग हैं—मयुरावली।

जाओ विरन घर आपने,
राखौंगी पगडी की लाज,
ब दी परी हैं---मयुरावली ।

अब यहाँ गीत का चरमोत्कष आता है। यह अत्यत करुण एव हृदय-विदारक दृश्य है। लकिन इसम बुन्देलखण्ड की आन बान प्रदर्शित होती है। मुगल मयुरावली का अपनी प्रेयसी बनन और इस्लाम धम स्वीकार करन को बार बार समझाता है। मयुरावली सब शाति पूवक सुनती है। मुगल स पानी माँगती है, और कहती है कि मैं भिस्ती क हाथ का पानी नही पिऊँगी। तब मुगल उसके लिए स्वय पानी का प्रबध करन जाता है। इधर मयुरावली शिविर म आग लगा लेती है और ढोलिया (ढाल बजान वाले) से ऊचे स्थान पर बठकर ढोल म घोषणा करन को कहती है कि मयुरावली खडी जल रही है।' इस काय के लिए ढोलिया को यह अपनी नाक का आभषण पुरस्कार मे देती है। इतन म मुगल आता है। एक हिदू रमणी खड खड जल रही है, यह देखकर वह स्तम्भित होकर रह जाता है। उसका पति राता हुआ आता है। भाई हसता हुआ आता है। उसे सतोप हो जाता है कि उसकी बहन ने पगडी की लाज रख ली है। गीत का यह हृदयस्पर्शी भाग इस प्रकार है

जारे मुगल के पानी भर लिआ
प्यासी मर—मयुरावली ।
जौनों मुगल पानी गओ,
बगले मे दैलई आग,
ठाडी जर—मयुरावली ।
नाक की बेसर ढोलिया तोय दऊँ,
ऊँचे चढ ढोल बजाओ
ठाडी जर मयुरावली ।
अग जर जसे लाकडी
केस जर जसे घास,
ठाडी जर—मयुरावली ।
रोय चले बाके बलमा
विहँस चले राजा वीर, (भाई)
ठाडी जर—मयुरावली ।
राखी बहना पगडी की लाज,
ठाडी जर—मयुरावली ।

जब तक मुगल पानी लने गया मयुरावली बगल म आग लगाकर जलने लगती है। इससे पूव वह ढालिया का नाक की नयुनी देकर ढोल स घोषणा

करने को तैयार कर लेती है। ढोलिया ढोल बजाकर उसके गढ़ गढ़े जलने की घोषणा करता है। उसके अंग लकड़ी की तरह जल रहे हैं। केश घास की तरह जल रहे हैं। यह दृश्य देखकर मुगल 'अल्ला तोबा' कहता है। हिन्दू रमणी बहुत बुरी होती है। वह खड़ी-खड़ी भस्म हो जाती है। उसके पति रोते हुए और भाई हँसते हुए, पर यह कहते हुए चलते हैं कि बहन ने बुन्देलखण्ड के पुरखों की और भरी पगड़ी की लाज रख ली है।

इस प्रकार यह गीत गौरवपूर्ण बुन्देली संस्कृति की भावनाओं से ओत प्रोत है। बुन्देलखण्ड में ढोलिया का ढोल श्रावण मास में, गीत की करुण ध्वनि के साथ, अब भी यह घोषणा करता हुआ सुनाई देता है—

'बहिन ने पगड़ी की लाज रख ली। मयुरावली खड़ी-खड़ी जल रही है।"

(लोकवार्ता, जनवरी १९४६ पृ० २२)

इस संदर्भ में हम यहाँ बुन्देली शब्दों में जो भावात्मक मनोविज्ञान प्रदर्शित होता है, उसका कुछ उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। बुन्देलखण्डी शब्दों में कण कटु वर्णों का सर्वथा अभाव रहा है, यानी उनको कहीं महत्त्व नहीं दिया गया है। यहाँ जन पद का व्यक्ति जब आक्रोश में किसी व्यक्ति को गाली देता है। तब वह जू शब्द का प्रयोग करता है जैसे कि ससुरजू, सारजू आदि—जाति मर्यादा और सम्मान के द्योतक हैं।

अभी हमने बुन्देलखण्ड के प्राचीनतम इतिहास का उल्लेख किया है। इस आधुनिक युग में स्वतन्त्रता संग्राम व असहयोग और क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी कवियों ने अपनी वाणी द्वारा योगदान किया है। इसका भी कुछ उल्लेख कर देना हम उचित समझते हैं। राष्ट्रीय कवियों में सर्वप्रथम आते हैं पं० माखनलाल चतुर्वेदी श्री सुभद्राकुमारी चौहान, श्री घासीरामजी व्यास रामचरण हयारण मित्र और स्व० पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन। इन कवियों की रचनाओं द्वारा राष्ट्र को अतुलनीय बल मिला है जिनकी राष्ट्रीय कविताओं की कुछ पंक्तियाँ हम उद्धृत कर रहे हैं। सर्वप्रथम सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्र को अपने अतीत गौरव का स्मरण कराकर चेतना शक्ति दी। उन्होंने गाया—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

और राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सहस्रों व्यक्तियों की एकत्रित सभा के मध्य वीरों को आह्वान करते हुए इस पुस्तक में लेखक ने यह भाव प्रकट किये—

देश जननी के दुख का पाश<br>
काटता कौन साहसी वीर?<br>
जगाता जगती तल का भाग,<br>
दीन दुखियों की हर कर पीर।

कूदता रण आगन मे कौन ?
धधकती ज्वाला से कर मेल।
हथेली पर सर धर कर कौन ?
खेलता है प्राणो का खेल।
(भेंट)

और राष्ट्रीय कवि स्व० घासीराम व्यास ने निभयता के साथ जेल की यातना भोगते हुए, अपनी वाणी से राष्ट्रीय वीरो को प्रोत्साहित करने के लिए अपने राष्ट्रीय विचार इस प्रकार व्यक्त किय

सुवन स्वतन्त्र निज देश का बढा दें मान
घटा दे गुमान शाह कामी क्रूर कोही का।
राजपूतनी के नीके दूध को पुनीत कर,
सबक सिखा दें उसे क्षुद्र छल छोही का।
कूद पड सिंह सा दहाड शत्रु सेना पर,
विश्व को दिखा दे 'व्यास' विक्रम सिरोही का।
बेजा मत मान, लेजा लेजा शीघ्र भेजा फाड,
नेजा पर टांग दे कलेजा देशद्रोही का।
(वीर ज्योति पृ० ५०)

आजादी के लिए प्रारम्भिक क्रातिकारी प्रयासो म अग्रगण्य राठ निवासी प० परमानन्दजी के अतिरिक्त स्व० क्रातिकारी चन्द्रशेखर आजाद ने सन १९२४ म अग्रेज सरकार को उखाड फेंकने के लिए ओरछा राज्यान्तगत सातार सरिता किनारे अपनी कुटी बनाकर बुन्देलखण्ड के क्रान्तिकारियो को सगठित किया। इसमे झासी के भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मल्कापुरकर, स्व० मास्टर रुद्रनारायण एव स्व० विश्वनाथ वैशम्पायन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सन १९२६ म जब भुसावल बम काण्ड म क्रातिकारी भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मल्कापुरकर को अग्रज सरकार ने गिरफ्तार कर लिया, और जलगाव सेशन जज की अदालत म जब भगवानदास ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए मुखबिर फणीन्द्रनाथ घाष और जयपाल पर रिवाल्वर से गोली दाग दी तब अग्रेज सरकार के औसान डिग गए। अन्त मे अदालत ने भगवान दास को इस अपराध म सन १९३० म आजन्म काले पानी का दण्ड दे दिया। किन्तु इस कठोर कारावास का भगवानदास माहौर के साहसी मन पर कोई प्रभाव नही पडा और वह उस कारागार की बन्दी अवस्था मे भी राष्ट्रीय गीतो का सृजन करते हुए निभयता के साथ हसते और बन्दियो की झनकार के साथ स्वर म स्वर मिलाकर गा उठे

मेरे शोणित की लाली से
कुछ तो लाल धरा होगी ही।
मेरे वतन से परिवर्तित
कुछ तो परम्परा होगी ही।

यह है बुन्देलखण्ड के साहित्यिक क्रान्तिकारी वीरों का साहस जिनके बल पर इस परतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात सन १९६१ में जब चीन ने भारत पर प्रबल आक्रमण किया तब यहां के राष्ट्रीय विचारधारा के अनेक अनेक कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी में चीन के विरुद्ध रचनाओं का सृजन कर वीरों को प्रोत्साहित किया। इन कवियों में श्री राघवेन्द्र अम्बकेश अवधेश, तन्मय बुखारिया आनन्द मिश्र और रामचरण हयारण मित्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सन्दर्भ में यहां हम श्री मित्रजी का एक बुन्देलखण्डी गीत उद्धृत कर रहे हैं जिसकी पंक्तियां इस प्रकार हैं

जागो विरन[1] मोरे समर जुझारु[2] सुन धरती की गुहार[3]।
घेरो अफिमचिन आन हिमाचल बांधो कमर तरवार।
देत दुहाई रए सत्त की निकरे बडे लबार।
देखत मे अत लगें ऊजरे, भीतर भरी भंगार[4]।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करके पंच सील की बातें भरमा[5] लए जवार।
नेव-नदिन[6] में ही घुस आये करी कपट व्योहार।
जागो विरन मोरे समर जुझारी सुन धरती की गुहार। घेरो
तुमखों सौंगद मात कूख कें हिलुरे की सौ बार।
मोरी उन उलियन[7] की सौगंद, जिनमें पलो दुलार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौंगद इन अल्हड बीरिन की जिनमें नओ उभार।
सूरज की किरनें जिनकी करबें वारीं सिंगार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौगन्द नई[9] नारों बौलिन की, रुदीं रूप के भार।
चन्दन के विरछन सों लिपटी अपनी बांय पसार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो

---

१ भाई २ रण-कुशल ३ पुकार ४ मैलपन ५ मोहित ६ प्रेम नदी ७ माता के पय में गुजन को ८ हाथों में लकड़ी-सुन ? ~सनान ९ नवीन।

करन चहत आधीन हिमालय उर गंगा की धार।
जइ मन की मंसा चाऊ की जइसीं बुरए विचार।
जागौ विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करी कुगत अत करमसिंग[1] की नीत अनीत विचार।
कोउ सताउत नईं रच्छक्न कर अपनो अधकार।
जागौ विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
इसीं घर घर सला सूत[2] कर समत ल्यो निरधार।
तज के भेद भाव आपुस के रऔ सदई तयार।
जागौ विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
कोऊ करन न पावै कैसउ सीमा ऊपर वार।
रच्छया अपनें करौ देश की मित्र' जई में सार।
जागौ विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो

(लोक गायनी पृ० ७७)

ऐसी ऐतिहासिक, साहित्यिक परम्पराओं से पूर्ण बुन्देलखण्ड की यह पावन वसुंधरा, सराहनीय, पूजनीय और वन्दनीय है।

—द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'

---

१० भारतीय सीमा का एक रक्षक, ११ सलाह करके संगठित रहना।

मेरे शोणित की लाली से
कुछ तो लाल धरा होगी ही।
मेरे पतन से परिवर्तित
कुछ तो परम्परा होगी ही।

यह है बुन्देलखण्ड के साहित्यिक क्रान्तिकारी वीरों का साहस जिनके बल पर इस परतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात सन् १९६१ में जब चीन ने भारत पर प्रबल आक्रमण किया, तब यहाँ के राष्ट्रीय विचारधारा के अनेक अनेक कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी में चीन के विरुद्ध रचनाओं का सृजन कर वीरों को प्रोत्साहित किया। इन कवियों में श्री रामचन्द्र अम्बिकेश अवधेश, तन्मय बुखारिया, आनन्द मिश्र और रामचरण हयारण 'मित्र' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ हम श्री मित्रजी का एक बुन्देलखण्डी गीत उद्धृत कर रहे हैं, जिसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

जागो विरन[1] मोरे समर जुझारु[2] सुन धरती की गुहार[3]।
घेरो अफिमचिन आन हिमांचल बांदो कमर तरवार।
देत दुहाई रए सत की निकरे बड़े लवार।
देखत मे अत लगें ऊजरे, भीतर भरी भंगार[4]।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करके पंच सील की बातें भरमा[5] लए जवार।
नेक नदिन[6] मे हीं घुस आये करी कपट व्योहार।
जागो विरन मोरे समर जुझारो सुन धरती की गुहार। घेरो
तुमखों सौंगद मात कूख[7] के हिलुरे की सौ बार।
मोरी उन उलियन[8] की सौगद, जिनमे पलो दुलार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौगद इन अल्हड़ बोडिन की जिनमे नओ उभार।
सूरज की किरनें जिनको करवे वारीं सिंगार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौगद नइ[9] नोनीं बोलिन की, लर्दी रूप के भार।
चन्दन के विरछन सों लिपटी अपनी बांय पसार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो

---

१ भइ २ रण-कुशल ३ पुकार ४ मैलापन ५ मोहित ६ प्रेम नदी ७ माता के पट में खनने की ८ हाथों में लेकर भुन ना खिलाना ९ नवीन।

करन चहत आधीन हिमालय उर गंगा की धार।
जड़ मन की मसा चाऊ की जइसों बुरए विचार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करौ कुगत अत करमसिंग[1] की नीत अनीत विचार।
कोउ सताउत नईं रच्छक्न कर अपनो अधकार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
इसौं घर घर सला सूत[1] कर समल ल्यो निरधार।
तज के भेद भाव आपुस के रओ सदई तयार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
कोऊ करन न पाव कसउ सीमा ऊपर वार।
रच्छया अपनें करौ देश की मित्र' जई मे सार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
(लोक गायना पृ० ७७)

ऐसी ऐतिहासिक साहित्यिक परम्पराओं से पूण बुंदेलखण्ड की यह पावन वसुंधरा, सराहनीय पूजनीय और वंदनीय है।

—द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'

---

१० भारतीय सीमा का एक रक्षक, ११ सलाह करके सगठित रहना।

मेरे शोणित की लाली से,
कुछ तो लाल धरा होगी ही।
मेरे यतन से परिवर्तित
कुछ तो परम्परा होगी ही।

यह है बुन्देलखण्ड के साहित्यिक क्रान्तिकारी वीरों का साहस जिनके बल पर इस परतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात सन् १९६१ में जब चीन ने भारत पर प्रबल आक्रमण किया तब यहाँ के राष्ट्रीय विचारधारा के अनेक अनेक कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी में चीन के विरुद्ध रचनाओं का सृजन कर वीरों को प्रोत्साहित किया। इन कवियों में श्री राघवेन्द्र अम्बकेश अवधेश, तन्मय बुखारिया आनन्द मिश्र और रामचरण हयारण मित्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ हम श्री मित्रजी का एक बुन्देलखण्डी गीत उद्धृत कर रहे हैं जिसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

जागो बिरन[1] मोरे समर जुझारु[2] सुन धरती की गुहार[3]।
घेरो अफिमचिन आन हिमाँचल बाँदो कमर तरवार।
देत दुहाई रए सत्त की निकरे बड़े लबार।
देखत मे अत लगें ऊजरे, भीतर भरी भँगार[4]।
जागो बिरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करके पच सील की बातें भरमाए[5] लए जवार।
नेह नदिन[6] मे हीं घुस आये करी कपट व्योहार।
जागो बिरन मोरे समर जुझारो सुन धरती की गुहार। घेरो
तुमखों सौंगद मात कूख[7] के हिलुरे की सौ बार।
मोरी उन उलियन[8] की सौगद, जिनमें पलो दुलार।
जागो बिरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौंगद इन अल्हड़ बोडिन की जिनमें नओ उभार।
सूरज की किरनें जिनको करत्त वारीं सिंगार।
जागो बिरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
सौगन्द नई[9] नोंनीं बोलिन की, लदीं रूप के भार।
चन्दन के बिरछन सों लिपटी अपनी बाँय पसार।
जागो बिरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो

---

१ भाई  २ रण-कुशल  ३ पुकार  ४ मैलापन  ५ मोहित  ६ प्रेम नदी  ७ माता के पेट में रहने की  ८ हाथों में लेकर झुलाना खिलाना  ९ नवीन।

करन चहत आधीन हिमालय उर गगा की धार।
जड़ मन की मसा चाऊ की जड़सों बुरए विचार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
करो कुगत अत करमसिंग[10] की नीत अनीत जिचार।
कोउ सताउत नई रच्छन कर अपनो अधकार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
इसों घर घर सला सूत[11] कर समत त्यो निरधार।
तज के भेद भाव आपुस के रओ सदईं तयार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो
कोऊ करन न पाव कैसउ सीमा ऊपर वार।
रच्छया अपनें करो देश की 'मित्र' जई मे सार।
जागो विरन मोरे समर जुझारु सुन धरती की गुहार। घेरो

(लोक गायना, पृ० ७७)

ऐसी ऐतिहासिक, साहित्यिक परम्पराओं से पूर्ण बुन्देलखण्ड की यह पावन वसुन्धरा, सराहनीय, पूजनीय और वन्दनीय है।

—द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'

---

१० भारतीय सीमा का एक रक्षक, ११ सलाह करके संगठित रहना।

# विषयानुक्रमणिका

### हेमन्त ऋतु के तीज-त्योहार व्रत, मेले और लोकगीत



### शिशिर ऋतु के तीज-त्योहार व्रत, मेले और लोकगीत

प्रथमोन्मेष

# शौर्य खण्ड

# राजा परिमाल चन्देल

यमुना नमदा चम्बल, वेतवा, धसान केन सिंध पुष्पावती और तमसा (टाम) आदि पवित्र सरिताओं से परिवेष्ठित विशाल मध्य देश जिसे आज बुंदेलखण्ड की संज्ञा दी जाती है प्राचीन काल मे दशाण तथा चन्देली देश कहलाता था। इसकी प्रमुख राजधानी चन्देली (चन्देरी) थी। चन्देली का दुग महाराज यशोब्रह्म चन्देल ने आज से लगभग १५०० वष पूव बनवाया था। चन्देरी से लगभग आठ मील दूर बूढी चन्देरी का किला है जो ५००० वष प्राचीन है। इसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। इस देश म चन्देल वश के महान यशस्वी अजेय योद्धा हुए हैं। उनकी शासन प्रणाली अनुपम रही है। महाराज चन्द्रब्रह्म चन्देल का बनवाया हुआ विश्व विख्यात कालिंजर का किला लगभग ८००० वष पुराना है। महाभारत काल के प्रसिद्ध पाडवा के चन्द्रवशी क्षत्रिय राजाओं म चन्देल यादव (जादो) राठौड हैहय तोमर क्षत्रियो का वणन आया है।

चन्देल शासको ने अपनी विजयपताका भारतवष के बाहर बल्ख बुखारे तथा काबुल-कन्दार तक फहराई थी

## चन्देलों की साखा गोत्र परवर इष्ट आदि

वश—चन्द्रवश गोत्र—चन्द्रायण, साखा—कौथमी वेद—सामवेद उपवद —धनुर्वेद शिखा—वाय सूत्र—गोमिल परवर—तीन यज्ञोपवीत के। आंगिरस, बाहस्पत्य। चन्द्रात्रय पद—वाम, अग्नि—दानेसुरा चन्देल इष्ट दव—शिव विष्णु कष्टमाता—दुर्गा, स्वामी—मगल सम्प्रदाय—गौ वण—क्षत्रीय अग्नि पावन कम या पक्षी कबूतर कुल देवी-अम्बिका, नदी नमदा ध्वजा श्वेत तीथ प्रयाग मुद्रा-कमल पर वठी हुई महावीर तथा लक्ष्मी की चतुभुज मूर्ति।

चन्देल वश के अनक प्रसिद्ध राजाओ म महाराज धगब्रह्म ६५० से ६६६ ई० तक शासनारूढ रहे। इसके अतिरिक्त महाराज गडब्रह्म ६६६ से १०२५ ई० तक सिंहासनारूढ रहे। यह बड वीर एव युद्ध प्रिय राजा थ। इन्होने १०२० ई० म डेढ लाख सेना स महमूद गजनवी पर धावा करके विजय श्री प्राप्त की थी। दूसरी बार १०२३ ई० म जब इन्हान धावा बोला तब गजनवी को इनसे सधि करनी पडी। इस समय चन्देलो के पास चौदह सुदृढ एव विशाल किले थे।

इसी वश म महावा के अंतिम राजा परिमाल चन्देल हुए। कहा जाता है इनका जन्म कालिजर म हुआ। महाराज परिमाल का शासन-काल स० ११११ से १२०३ तक रहा जो चन्दवरदाई के परिमाल रासो' म सिद्ध होता है

'ग्यारह सौ दस पाच मास नौमी पख उज्जल।

इस अर्द्धाली से यह प्रतीत होता है कि वि० सवत ग्यारह सौ पन्द्रह माग शुक्ल तक राजा परिमाल का राज रहा। महाराज परिमाल के पाँच पुत्र थ, ब्रह्माजीतदेव आसाजीतदव समाजीतदेव कामजीतदेव और रणजीतदेव।

महाराज परिमाल की कीर्ति का वणन कालिजर के नीलकठ मन्दिर म एक शिलालेख म इस प्रकार आया है

आकाश प्रसर प्रसयत दिशस्तव प्रथ्वि पृथ्वी भव
प्रत्यक्षी कृतमादि राज यश सा दुग्माभि रुज्ज भितम
अद्य श्री परिमार्द्धि पार्थिव यशो राशोविकाशो—
दयादबीजोच्छवास विदीण दाडिममिव ब्रह्माण्डमालोक्यते ॥
कीर्तिस्ते नत दूतिका मुररिपोर के स्थितामिन्दिरामानीय —
प्रददोतयेति गिरिश श्रुस्वधिनारीश्वर ।

ब्रह्मा मूच्चतुराननं सुरपतिश्चक्षु सहस्र दधौ स्कदो
मदमर्तिविवाहविमुखो धत्त कुमार व्रतम ॥
नागो भाति मदेन ख जल रुहे पूर्णेन्दुना शवरी
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम।
वाणी व्याकरणेन हस मिथुनर्नंघ सभा पडित
सत्पुत्रेण कुल त्वया वसुमती लोकत्रय विष्णुना

('चन्देल चन्द्रिका' पृ ठ १८)

महाराज परिमाल का उस समय बुन्देलखण्ड के आठ किलों पर झडा फहराता था। य इस प्रकार हैं बारीगढ़ (महोबा के पास) कालिजर अजयगढ मनियागढ, मडफा मौन्हा, कालपी और महावा। एक ताम्रपत्र इनको वि० स० १२२३ म कालिजर म दिया गया। उसम परिमालदव को उपाधि कालिजराधिपति चन्देल महाराजाधिराज' लिखी है। इतिहासकारा न राजा परिमाल का जीवन प्रणेता वि० स० १२७० तक प्रकाशित होना स्वीकार किया है। द्वितीय महाराज परिमाल वि० स० १४६६ म यहाँ हुए हैं जिसका वणन 'चन्देल चन्द्रिका' के लेखक श्री गिरिजासिंह चन्देल न किया है। लेकिन इन्होने विशेष प्रकाश प्रथम महाराज परिमाल पर ही डाला है।

महाराज परिमाल के राजमन्त्री माहिल कूटनीति के पण्डित थे। वही राज्य का कार्य भार सम्हालते थे। सेनानायकों में बनाफर वंश के दसराज बच्छराज के वीर पुत्र आल्हा-ऊदल और मलखान थे जिनकी वीरता द्वारा महाराज परिमाल की विजयपताका फहरा रही थी। इसका प्रमाण यह मिलता है कि राजा परिमाल ने दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर अपने पुत्र ब्रह्माजीत के साथ पृथ्वीराज की पुत्री बेला का विवाह रचा था।

महाराज परिमाल ने भारत और बाहर के समीपवर्ती देशों में निरंतर जब विजय प्राप्त की तब इनका मन अनायास युद्ध से विराम लेने के लिये विवश हो उठा और अन्त में इन्होंने अपनी तलवार को चिर शान्ति प्रदान करने के लिए असि प्रक्षालन महा विजय यज्ञ किया जो सम्भवतः द्वापर युग के अश्वमेध यज्ञ की ही परम्परा में रहा हो। यज्ञ का प्रबन्ध-कार्य राजमन्त्री ने भारत स्थित तथा समीपवर्ती विदेशों के राजाओं को युद्ध का अन्तिम निमंत्रण देकर यह सन्देश भेजा कि यज्ञ की तिथि के पूर्व जो भी नरेश राजा परिमाल से युद्ध करना चाहते हों वह अपनी सेना लेकर महोबा की रणभूमि में अपना रणकौशल दिखाने के लिये पधारें, क्योंकि यज्ञ के पश्चात महाराज परिमाल फिर शस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे। महाराज के अनुपम रणकौशल और उनकी अजेय सेना के समक्ष यज्ञ की अन्तिम तिथि तक किसी भी नरेश का साहस उनसे लोहा लेने का नहीं हुआ। फलतः उन्होंने अपना असि प्रक्षालन यज्ञ भारत के समस्त राजाओं की उपस्थिति में बड़े समारोह से सम्पन्न किया।

महाराज परिमाल ने ५२ लड़ाइयां लड़ीं जिनका वर्णन इनके दरबारी कवि जगनिक ने आल्ह छन्द में बड़ी ही रोचकता के साथ किया है। और विचित्र बात तो यह है कि महाराज परिमाल के पूर्ण शत्रु दिल्लीपति के दरबारी कवि श्री चन्दबरदाई ने परिमाल की प्रशंसा में जो 'परिमालरासो' लिखा है उसमें महाराज परिमाल की यशकीर्ति और भी बढ़ जाती है और यह बात कवि के लिए न्यायसंगत भी है क्योंकि 'तुलसी साँचे शूर की बैरी करत बखान।'

वीररस के विख्यात कवि श्री चन्दबरदाई ने 'परिमालरासो' में जो वर्णन किया उसका कथानक इस प्रकार है कि एक बार राजा परिमाल महोबा से कालिंजर की यात्रा कर रहे थे। साथ में उनके वीर आल्हा और ऊदल भी थे। आल्हा को मार्ग में सुन्दर मृगों का एक झुंड चौकड़ी भरता हुआ दृष्टिगत हुआ जिससे आकर्षित हो उन्होंने अपना घोड़ा उस झुंड की ओर बड़े वेग से छोड़ दिया और कई मृगों को अपने तीरों द्वारा वेध दिया।

महाराज परिमाल आल्हा की इस तीरंदाजी को देख हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु मन्त्री माहिल के हृदय में आल्हा के प्रति द्वेषाग्नि धधकने

लगी। कालिंजर पहुचने पर जब परिमाल रनवास म विनोद कर रहे थ तब अवसर पाकर माहिल ने वीर आल्हा ऊदल के विरुद्ध चुगली का जाल बिछाया जिसका वणन चन्दवरदाई ने इस प्रकार किया है —

करी केलि परिमाल नृप सब रनवास समेत
माहिल मन्त्री भूप कौं मतौ कुमत को देत।
अल्हन हय दौराय क मारे भग हैं धाय।
ऐसे इनके पाँच हैं नप प एको नाय।
घोडे आप मगाय क देओ अल्हन और।
नाहि कर तौ घर तज जाय और ही ठौर।

आल्हा-ऊदल के पास पांच ऐसे अश्व थे कि जिनम युद्ध और उडन की शक्ति विद्यमान थी। इन्ही क बल पर युद्ध म इनको पूण विजय प्राप्त हुआ करती थी। इन्ही घोडो का आश्रय लेकर माहिल ने वीर आल्हा ऊदल के विरुद्ध परिमाल के हृदय मे अनबन की भावना उत्पन्न कर दी। माहिल न कहा कि महाराज जो पाच अश्व आल्हा ऊदल के पास हैं वे आपके तबेले म रहने योग्य है। इस कारण उनस वे घोडे लेकर बदले म उनको और घोडे दे दिये जायें तो अच्छा हो। यदि वह आपकी आज्ञा का उल्लघन करें तो उस अपराध मे उनका देश निष्कासन का दण्ड द दिया जाय क्योकि उन पाँचो घोडो का आपके पास रहना राजा की दृष्टि स अत्यन्त हितकारक ह।

मत्री की सम्मति मान कर परिमाल न आल्हा ऊदल को यही आदेश दिया जिससे वह हृदय म अत्यन्त दुखित हो अपनी माता देवला स आकर कहने लगे

माता भूपत भूप सहें चुगली करी विशाल।
बार-बार यर पचऊ माँगत हैं हय बाल॥

(माता राजा माहिल ने भूपत परिमाल से हमारे बछरा (घोडो) का शौय देख यह चुगली की कि आल्हा ऊदल के पाँचो उडन बछेरा को माँग लिया जाय और यदि व अस्वीकार करें तो दश निष्कासन द दिया जाय।) यह सुनकर माता देवला न उत्तर म कहा

सुनत वचन देवलदे खिज्जिय।
पून बछेरा देन न किज्जिय॥
पास छड कनवज्ज कहि चल्लिय।
राजा दल पांगुर सों मिल्लिय॥

माता देवलदे हृदय म क्षुभित हो अपने पुत्र आल्हा ऊदल स कहन लगी—पुत्र! अपने अश्वो को देना स्वीकार नहीं करना और यदि राजा परिमाल

इस अवना के अपराध म देश निकाला दन ह तो यहा से चलकर कन्नौज (कन्नौज) म पागुर दल के राजा जयचद से मिलना चाहिए।

माता देवल्दे की आज्ञानुसार आल्हा ऊदल ने राजा परिमाल को अपन पाचा अश्वा का देना अस्वीकार कर दिया और इस राजाज्ञा के उल्लघन के अपराध मे उनको निर्वासित का जो दड मिला उसको स्वीकार करके उन्होने अपने परिवार सहित कनवज के लिए प्रस्थान किया।

यात्रा म आल्हा ऊदल ने अपने बाहुबल के पराक्रम स माग के कुरहट राज्य के हरसिंह विरसिंग राजाओ को पराजित किया और जो कुछ धनराशि अजित हुई उस लेकर कनवज के राजा जयचन्द से जाकर मिले। राजा जयचन्द बनाफल वीर पराक्रमी आल्हा ऊदल की यश कीर्ति तो पहले से ही जानते थे। इस कारण उन्होने हर्षित हो इनका उचित प्रबध करके दरबार म उच्च स्थान दे दिया।

यह वत्तात जब माहिल को ज्ञात हुआ तब उन्होने एक योजना बनाकर पृथ्वीराज चौहान के पास दिल्ली जाकर राजा परिमाल के विरुद्ध यह षडयन्त्र रचा। उन्होने कहा कि महाराज अब राजा परिमाल से वैर भजाने का अच्छा अवसर है क्योकि परिमाल ने अपने पुत्र के साथ पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला को चौहान को पराजित करके जबरन विवाह किया था। ठीक इसी के प्रतिकूल माहिल ने चौहान का सम्मति दी कि आपको चाहिये कि परिमाल चन्देल की पुत्री चन्द्रावली स आप अपने पुत्र का विवाह महोबा पर चढाई करके करवालो क्योकि परिमाल न वीर आल्हा ऊदल को देश निकाला दे दिया है और परिमाल शस्त्र त्याग कर चुके ह। आपको अपने वर का बदला लेने और चन्द्रावली से अपन पुत्र का विवाह करने का स्वण अवसर प्राप्त है।

माहिल के इस षडयन्त्र का पता परिमाल के पुत्र ब्रह्मजीत को ज्ञात होगया तो उसने अपने पिता से भरे दरबार म मत्री माहिल परिहार के प्रति क्रोध प्रकट करते हुए कहा

महीपाल भूपत्त जुर कियो दड को मूल।
यह कुवत्त ब्रह्मा कुवर परिहारन नहिं भूल।

माहिल ने जब ब्रह्मा के द्वारा दरबार म अपना यह अपमान सुना तब वह हृदय म और आग बबूला होगया और फिर उसन दिल्लीपति को कूटनीति पूण भेदो का वणन करते हुए पत्र लिखा

महीपाल जुग पत्र लिख चहूँ आन कहूँ सन्द।
दिखा कजरिया आव मिस लजो पवर कर बन्द।

माहिल पत्री भेज लिखी चहुँआन कौं।
करहुँ कूँच ततकाल सु 'माहिम धाम कौं।
श्रवन मास की पथ आन दल बिजिजिये।
दीन गुचर के हत्त राज कहँ दिजिजये।

माहिल भूपत चर पठवाइय।
इक्क अहन बिच तिविर कराइय।
दुतिय अहन विच धाय न विनय।
चहुआन कहँ पत्री दिनव।

माहिल परिहार का हरकारा (चर) जब दिल्लीपति चौहान को पत्र देता है तब वे अपने गुरु कवि चन्दबरदाई को सुनाकर शीघ्र माहिल को उसका उत्तर लिख उनके हरकारे का अपना पत्र देकर विदा करते हैं। उपरान्त अपने सामन्त सरदारों को महोबा के कीर्तिसागर की कजरिया देखने को प्रोत्साहित करते हुए अपनी भावना प्रकट करते हैं

सनद बच सम्मर धनी गुरु कवि चद सुनाय।
चर कौं प्रत उत्तर लिखौ मानस मत्त सुभाय।
सब सामन्तन सन राह चहुआन नप बुल्ल।
कीरत सर वह चालिया मम सुपिष्ट लग चल्ल।
सा‍‍‍न सन सामन्त सब बज्जत घोर निसान।
दिखन कजरिया सम्मरिय नगर महोत्सव जान।

पृथ्वीराज का आदेश पाकर शूर सामन्त सुसज्जित होने लगे—

सज कन्ह नरनाह सामन्त भारी।
सजे वीर चाउंड सेना सँधारी।

सामन्त वीर कन्हराज जो पृथ्वीराज के काका थे सुसज्जित हुए और वीर चामुण्डराय जो सेनापति थे अपनी सेना को सजाने लगे। उपरान्त चन्दबरदाई ने चौहान के वीर योद्धाओं और शूरों के सुसज्जित होने का वर्णन किया है

सजे सजबराय पुडीर चद्रम।
सजे सुर नरसिंग मेघम सुभद्र।
सजे सल्ल लक्खन बडे जुद्ध कार।
सज विझक्कु राज सुतोमर प्रहार।
सजे दाहिमा आततांई सुवीर।
सजे निढ्ढुराय सुधाध सुधीर।
सजे वीर हरसिंग पज्जून राय।
सजो सब सेना सज्जुध्धम कराय।

पृथ्वीराज चौहान की सेना वणन के उपरान्त चन्दवरदाई न रासो मे महाराज परिमाल की सेना का वणन इस प्रकार किया है

**सौ सावत पृथिराज के लख्ख लख्ख प एक ।**
**पाँच धवल चदेल क सौ सावँत प एक ॥**

पृथ्वीराज चौहान की सेना म सौ सामन्त ऐसे थे जो एक एक लाख योद्धाओ को परास्त करने की शक्ति रखते थे लेकिन महोबा के महाराज परिमाल चन्दल की सेना म एसे पाच धवल थे जिनम एक एक म सौ सामन्तो पर विजय प्राप्त करन का शौय था। किन्तु इनके होते हुए भी परिमाल की सेना वीर आल्हा ऊदल के बिना निबल सी प्रतीत हो रही थी और राजा परिमाल को भी इसका अनुमान हो रहा था।

राजा परिमाल की यह चिन्तित अवस्था देख उनकी रानी मल्हना न आल्हा ऊदल की माता देवलदे को महोबा की स्थिति क सम्बन्ध म करुणाजनक पत्र लिखा और कवि जगनिक द्वारा उस कन्नौज भेजा।

इसी प्रसग म शिवशकरल्याल अनान्त रिठारिया ने अपनी रचना महोवा, खण्ड काव्य म इस प्रकार के भाव व्यक्त किय है

**लिखा राज्य माता ने आल्हा आज हमारी लाज बचा लो।**
**दुश्मन के हाथों से अपना देश, राज्य सरताज बचा लो।**
**आज तुम्हें मेरी बहिनो की आरत आह पुकार रही है।**
**नगर महोबे की हर माता व्याकुल राह निहार रही है।**

(महोबा खण्ड काव्य)

कन्नौज पहुच कर जगनिक ने देवलदे को पत्र दिया और आल्हा से महोबा चलने का आग्रह किया। जगनिक की बात आल्हा को तीर-सी लगी जिसके कारण वह कडककर कहन लगा

सुन जगनिक की बात आल्ह बुल्लिय तब बानिय।
लुट्टि महाबो नगर कुट्टि चन्देल गुमानिय।
बिना चूक परिमाल कियौ हम देस निकारव।
काम आव जसराज सब नप काम सुधारव।
पडहार सन आग धरहु चुगल धार हित कान सह।
सावँत सूर सम्मुख लरहु जुध्ध करहु चहूँआन सह।

आल्हा का स्पष्ट उत्तर सुन जगनिक कहने लगे

सुनि जगनिक यह वात बखानिय।
हम तो राजा कछू न जानिय॥
हम सिर बध महोवो रष्षव।
नप चन्देल चुगल दिस दिष्षव।

लगी। इस अवसर पर ब्रह्माजीत के साथ केवल पन्द्रह शूर रह जाते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है

विचल घमू परमाल की समर म आयस अब।
ब्रह्माजित्त कुमार सग रये सूर दस-पच।

राजा परिमाल के वीर पुत्र ब्रह्माजीत को जब पृथ्वीराज चौहान ने अपने दस सहस्र हाथियों के मध्य रणभूमि म घिरा देखा तब उन्होंने गुरु चन्दवरदाई से आज्ञा लेकर अपने सौ सामन्तों को ब्रह्माजीत का वध करने का आदेश दिया

सुनत वचन गुरु चद के बुल्लय सम्मरवार।
सत सामतन सों कहत मारो ब्रह्मकुमार।

पृथ्वीराज चौहान की यह घोषणा जब राजा परिमाल को विदित हुई तब वह आतंकित हो उठे। उसी अवसर पर समीप के उद्यान म योगी वेष म जो आल्हा ऊदल तथा उनके साथी निवास कर रहे थे वह राजा परिमाल को धैर्य बँधाकर रणाँगन म कूद गये। उनके साथी राजा जयचन्द के वीर पुत्र लाखन ने प्रथम पृथ्वीराज से मोर्चा लिया किन्तु लाखन भी उन हाथियों के घेरे म घिर गया। जब योगी वेषधारी ऊदल ने यह देखा तो वह क्रुद्ध होकर रणाँगन म आ गये और वहाँ घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में वीर ऊदल ने अपने रणकौशल द्वारा लाखन और ब्रह्माजीत दोनों को हाथियों के घेरे से मुक्त कर लिया।

इसके उपरान्त योगियों और पृथ्वीराज चौहान का जो घनघोर युद्ध हुआ उसका वर्णन चन्दवरदाई ने इस प्रकार किया है

चल्यो पिप्ट चहुआन निस्सान बज्जें।
मनों मेघ आसाड के नाद गज्जें।
इत जोगि सिंगी सुमुक्ख बजाव।
सुनें व्योम देव सुमेघ लजाव।
तब ब्रह्मजित्त सुष अश्व छिन्नों।
चढ़ो लघ्घु जोगी सुउत्साह किन्नों।
तब हिरनगिनो बाज बाजो सुपायो।
करो खग्ग जमकाल सौंजुध्ध ठायो।
तब जोगि हत्त मनुज अस्त्र लिन्ना।
सत वीर के सीस दो दो सु किन्नों।
भगी फौज पीयल्ल की जोगि जान।
गयो अश्व पेलत जहाँ चहुँआन।

हनो राज पील गिरौ भूम आय।
पक्र जोगि हत्त सुराज उठाय।
तब आय गुरु चद बानी उचार।
अहो जोगि ईस सुराज न मार।

पृथ्वीराज चौहान युद्ध म आहत हो जब भूमि पर गिर पडे तब ऊदल न उनको पकडकर वध करना चाहा। यह दखकर चन्दबरदाई अति आतुरता के साथ घटना-स्थल पर पहुचकर कहने लगे—'योगीराज! राजा का वध करना उचित नही है। चन्दबरदाई के विनम्र शब्दो को सुनकर योगी ऊदल ने पृथ्वीराज को मुक्त कर दिया।

इसके उपरान्त चन्दबरदाई ने मूर्च्छित पृथ्वीराज को अपन हाथी पर बठा कर शिविर को प्रस्थान करने क प्रथम योगियो की प्रशसा म इस प्रकार के भाव प्रदर्शित किय

तब चद गुरु राय सम्मुख आय।
भयौ राज मुरछा सुपील चडाय।
कहै चद जोगी बडौ जुध्ध किन्नो।
भगी फौज जोजन्न चार परिन्नो।

युद्ध की रणभेरी कई दिन तक कीर्तिसागर के तट पर बजती रही जिसमे विजयश्री ने कभी चन्दलो को वरण किया और कभी चौहानो को। तब तक भाद्र कृष्ण प्रतिपदा का वह महत्त्वपूर्ण वीर पव आ गया जिसकी प्रतीक्षा मे दोनो सनाओ क मोर्चे लगे हुए थ। प्रात काल रानी मल्हना और उनकी पुत्री चन्द्रावली का डोला सजा। आगे-आगे नगर की कुछ वधुएँ अपने-अपने हाथो म भुजरियो के दोन सजाए हुए कीर्तिसागर पर सिराने मधुर गीत गाती चल रही थी जिसके पीछे कहार अपने-अपने कधे पर रानी मल्हना और चन्द्रावली का डोला लिय चल रहे थे। उनके पीछे पीछे चल रहे थे अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित महुबिया जवान जिनके सम्बन्ध म यह अर्द्धाली उपयुक्त है—प्रान जाय प जान न देंगे जे पुरखन की आन रे—कीर्तिसागर के तट पर जब यह भुजरियो को सँजोये हुए नगर की वधुएँ और मल्हना और चन्द्रावली का डोला पहुचता है तब राजा परिमाल की ओर से योगी और उधर स्वय पृथ्वीराज रण के लिए सुसज्जित हो उठते हैं

सावन सुद पूनें गई भादो परमा आन।
इते कुवर जोगी सजे उत भूप चौहान।

रणभेरी बजते ही दोनो सनाओ क वीर योद्धा जूझ उठे। इस बार युद्ध के सनापति थ योगिराज आल्हा जो कि महाराज परिमाल के पक्ष म अपना रणकौशल दिखला रहे थ और दूसरी ओर थ स्वय शब्द भेदी बाणो से सुसज्जित

दिल्लीपति चौहान जो अपनी सेना को सम्हाले पर रहे थे।

चन्देली वीरों ने संग्राम में अपना वाहुबल का ऐसा पराक्रम दिखाया कि चौहान सेना भाग खड़ी हुई। यह देख पृथ्वीराज चौहान ने अधिक हो अपने पीलवान को इशारा, जिससे उसने अपने हाथी को आल्हा के सम्मुख कर दिया और शीघ्र पृथ्वीराज ने अपने धनुष को सम्भाल कर आल्हा पर सन्नभेदी बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया किन्तु आल्हा को दुर्गा का यह वरदान था कि तेरा शरीर वज्र के समान रहेगा।

दुर्गा के अभय वरदान के कारण पृथ्वीराज चौहान के बाण जो आल्हा के वक्षस्थल पर पड़ रहे थे वे सब कुण्ठित होकर भूमि पर गिरने लगे। यह देख पृथ्वीराज चौहान को भान हो गया कि यह योगी नहीं दस्सराज का वीर पुत्र आल्हा है। उसके प्रभाव से प्रभावित होकर वे हाथी के हौदे से भूमि पर उतरे और नतमस्तक हो आल्हा से अपनी पराजय स्वीकार करने लगे। किन्तु आल्हा कहने लगे कि हम तो चन्देलवंश की संस्कृति की रक्षा के हेतु युद्ध लड़ रहे थे। यदि आप पराजय स्वीकार करते हैं तो यह याचना आपको महाराज परिमाल के सम्मुख करनी चाहिए। विवश हो चौहान ने ऐसा ही करके दिल्ली को प्रस्थान किया।

> था सावन का मास दिवस था रक्षाबन्धन।
> कजली का त्यौहार मनाना था प्रिय जन-मन।
> बादल नभ में घुमड़ रहे थे अंधियारी झुकती आती थी।
> वर्षा के स्वागत में कजली जन गाता धरता गाती थी।
>
> (महोबा खण्ड काव्य)

पश्चात योगियों ने रानी मल्हना और वेरा चन्द्रावली द्वारा भुजरियों का पूजन कराकर कीर्तिसागर में विसर्जन करवाया। उपरान्त राजा परिमाल ने योगी वेषधारी वीर आल्हा ऊदल से अपनी भूल जो उनसे अपने मंत्री माहिल की कुमन्त्रणा से हुई थी स्वीकार की और महोबा चलने का आग्रह किया। इस समय राजा परिमाल और आल्हा ऊदल के नेत्रों से एक-दूसरे से बिछुड़ होने के कारण अश्रु छलक रहे थे जिनसे यह भासित होता था कि एक दूसरे के हृदय के वे कितने निकट हैं।

राजा परिमाल का विशेष प्रेम देख आल्हा विनम्र हो गये। किन्तु उन्होंने महोबा जाना स्वीकार नहीं किया। अन्त में आल्हा ने राजा परिमाल को धैर्य बंधाते हुए वचन दिया कि हम किसी भी संकटकालीन अवस्था में महोबा आने को तैयार रहेंगे।

इसी समय राजा परिमाल की पुत्री चन्द्रावली ने आल्हा की बांह पकड़ते हुए कहा— भैया अब कहाँ जाते हो तुम्हारे बिना महोबा सूना लगता है।

यह सुनकर आल्हा उन्दल का हृदय उमग उठा। लेकिन उनके सामने एक कठिन समस्या थी, अपनी माता देवल्दे की, और साथी लाखन की। इस कारण उन्होने बहन चन्द्रावली को समझाकर कनवज को प्रस्थान किया।

कालान्तर म महाराज परिमाल न रानी मल्हना के आग्रह पर आल्हा ऊदल को मनाने के लिये अपन राजकवि जगनिक को कनवज भेजा।

राजकवि जगनिक ने कनवज पहुचने पर राजा जयचन्द को आल्हा ऊदल को विदा करने का वह पत्र दिया जो कि उनको महाराज परिमाल न दिया था। राजा जयचद न उसे स्वीकार कर आल्हा ऊदल को सम्मानपूवक विदा कर दिया।

यह है बुन्देलखण्ड महोवा के महाराज परिमाल के यश शौय का विशद इतिहास जिसका वणन चन्दवरदाइ ने अपने 'परिमाल रासो' म किया ह। यह रासो अब लुप्तप्राय ह, लकिन धन्य हैं राजकवि बीर अम्बकेश और कविवर 'प्रचण्ड' जिनके द्वारा हमको चन्देल वश के इतिहास का यह सूक्ष्म वत्त लिखने का अवसर प्राप्त हुआ।

## श्री मधुकरशाह और रानी गणेश कुँवरि

श्री रुद्रप्रताप ने बसाख शुक्ल १३ (रोहिणी नक्षत्र) सम्वत १५८८ म ओरछा को अपनी राजधानी बनाया था।

नप प्रताप रुद्र सुभए तिनके जनु रन रुद्र।
दया दान को कल्पतरु गुननिधि सील समुद्र।

महाराजा रुद्र प्रताप के दो पुत्र थे, भारतीचन्द और मधुकरशाह। भारती चन्द वीरता मे श्रेष्ठ थे तो मधुकर कमनिष्ठ और धमनिष्ठ थे। एक बार ओरछा पर शेरशाह ने चढाई की तब भारतीचन्द न अपने रण कौशल द्वारा उसको पराजित किया। वे जीवन पयन्त बुन्देलखण्ड की आन बान की रक्षा करते रहे।

भारतीचन्द के उपरान्त मधुकरशाह ओरछा की गद्दी पर बठे। इन्होने भी मुरादशाह को पराजित कर कई दुग अपने आधीन किये और बुन्देलखण्ड का अधिक विस्तार किया। 'लेकिन यह बात सम्राट अकबर के सम्मान के विरुद्ध थी, क्योकि यह वह काल था जबकि भारत के सभी राजा अकबर के आधीन थे।' (डॉ० ह० प्र० द्विवेदा, हिन्दी साहित्य पृष्ठ ४५)

इसके अतिरिक्त प० गौरीशंकर द्विवेदी ने अपने बुन्देल वैभव' में कवि खेमराज की कविता द्वारा सिद्ध किया है कि महाराणा रुद्रप्रताप के नौ पुत्र थे। खेमराज महाराजा रुद्रप्रताप के दरबारी कवि थे। इन्होंने अपने प्रताप हजारा नामक ग्रन्थ में, जिसका रचनाकाल वि० सम्वत १५६० माना जाता है, नौ पुत्रों का वर्णन इस प्रकार किया है

> प्रथम भारतीचन्द, दुतिय मधुकर सो जानों
> कीरत उदया जीत सिंह आमन पहिचानो।
> भूपत भूपतशाह चान चाह न तिहीन का,
> प्रागदास, दुरगेस स्याम सुन्दराहि हीन का।
> कह खेमराज' गढ ओरछे गढ कुढार पति मानिये
> नव पुत्र रुद्रपरताप के सो नौऊँ खण्ड बखानिये।

राजा रुद्रप्रताप ने खंगार राजा को पराजित करके पहले कुंढार गढ को अपने आधीन किया तदुपरान्त ओरछा नगर बसाकर अपनी राजधानी बनाई और फिर अपने नौ पुत्रों को जागीरें बांटी। इसका वर्णन इस प्रकार है

१ भारतीचन्द और २ मधुकरशाह क्रमश ओरछा की गद्दी पर बैठे। ३ उदयजीत सिंह इन्हें मऊ और महेवा की जागीरें दी गई, इनके ही वंशज महाराजा छत्रसाल हुए। इन्होंने पन्ना राज्य की नींव डाली। ४ अमानदास इन्हें पडारा की जागीर मिली थी। ५ भूपतिशाह इन्हें बुण्डरा मिला, और इनकी ही मिरच वाले बाली बिराव वाली गढ काटा और चरखारी की शाखायें चली। ६ चन्दनदास को कटेरा मिला इनकी विजरावन नराटा, बागरा आदि की शाखायें चली। ७ प्रागदास को हरसपुर (ललितपुर) की जागीर मिली। ८ दुर्गादास को दुर्गापुर जो कि दतिया राज्य में है वहा की जागीर फिर कटरा वाली लारौन वाली और मिजौरा वाली शाखायें आगे ही प्रयास से बनी। और ९ घनश्याम दास को मैंगवा की जागीर मिली।

(बुन्देल वैभव पृ० २७०)

ओरछा नरेश मधुकरशाह कुशल राजनीतिज्ञ थे। इस कारण अकबर उनके विरुद्ध कोई चाल नहीं चल पाता था किन्तु ओरछा राज्य उसके हृदय में खटकता अवश्य था।

आगरा में प्रत्येक वर्ष अकबर का बसंत दरबार लगता था। इस दरबार में भारतीय नरेश घोषणा होने पर जुहार करने आते थे। इस बार अकबर ने मधुकरशाह से ईर्ष्या होने के कारण यह आज्ञा निकाली कि बसंत दरबार में कोई भी भारतीय नरेश तिलक माला धारण करके प्रवेश नहीं करेगा। जो राजा

इस आज्ञा का उल्लघन करेगा, उसका भाल लाल गम लोहे से दाग दिया जायेगा।

यह शाही फरमान सुनकर जो भारतीय नरेश उस समय उपस्थित थे, व बडे आश्चय म पड गय और अकबर की निन्दा करते हुए अपने अपने स्थानो को लौट गय। स्व० श्री मु० अजमरी जी ने अपनी पुस्तक मधुकर शाह' म इस घटना का उल्लेख इन शब्दो म किया है

एक दिन आके बादशाह की बहार मे—
बोले बादशाह उसी खास दरबार मे।
राजा महाराजा यह हुक्म सुनें मेरा सब
तिलक लगा के आना ठीक नहीं होगा अब।
देखिये किसी का नहीं यह घर बार है
जानें आप लोग यह मेरा दरबार है।
तिलक लगाना मुझे सख्त नागवार है
आप से इसी से यह मेरा इसरार है।
तिलक लगा के यहा कोई अब आवेगा,
दाग गम लोहे से लिलार दिया जावेगा।
कह गये बादशाह बातें ये गम्भीर हो
रह गये राजा सब शिथिल शरीर हो।
लौट दरबार से विचार किया सब ने,
दोष बादशाह को यथेष्ट दिया सब ने।

मधुकर शाह रात्रि मे बादशाही हुक्म पर विचार करते हुए अपनी बुन्देली सस्कृति और आन बान पर विचार करने लगे। उन्होने यह दृढ निश्चय किया कि मैं स्वधम से मुख नही मोडूगा और कल दरबार मे तिलक-माला धारण करके अवश्य जाऊँगा भले ही चाहे प्राणो का बलिदान करना पडे। यह विचार करते-करते भोर होगया।

प्रात काल अपने नित्य कम से निवत्त होकर व पूजन गृह मे गय। उपासना के आधारभूत उन्होने नित्य प्रति की अपेक्षा अधिक उभरा और स्पष्ट तिलक धारण किया।

ओरछेश प्रात काल नित्य कृत्त करके,
पूजा मे प्रवत्त हुए पूण ध्यान धरके।
तिलक लगाते नित्य माथे पर छोटा सा
उस दिन नाक से लगाया बडा मोटा सा।

मधुकर शाह जब अकबर के दरबार में तिलक लगाकर उपस्थित हुए, उस समय का वणन कवीन्द्र केशवदास ने इस प्रकार किया है

राजाधिराज मधुशाह मन यह विचार उद्दित भयव।
हिंदुवान धर्म रक्षा समुझि पाग धरधर के गयव।
दिल्ली पति दरबार जाय मधुशाह सुहायव।
जिमि तारा के माहि इन्दु सोभित छवि छायव।
देखि अकबर साह उच्च आभा तिलक करी।
बोले वचन विचारि कहो कारन यहि करी।
तब कहत भयव बुंदेल मणि, मम सुदेश कटक अपनि।

कवीन्द्र केशवदास की रचना से मधुकर शाह के दरबार में प्रविष्ट होने तथा अकबर के कारण अपनी भूमि को कटक अवनि कहने से उनका स्वाभिमान झलकता है। स्व० मुंशी अजमेरी जी ने अपनी रचना द्वारा इस घटना का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है

आम दरबार यह भली भांति था भरा
फूला हुआ खेत जैसे पोसते का हो हरा।
राजा महाराजा पांच सात-सौ हजारी थे
थे वजीर उमरा-अमीर-दरबारी थे।
बांधे थे पगड़ियां सब्ज-लाल पीली थे,
पाकरेजी बासनी, कपूरी और नीली थे।
अकबर शाह आके तख्त पे विराजे थे,
महिमा महान थे महान छवि छाजे थे।
तिलक विचित्र ओरछे के नरनाह का,
देख चकराया चित्त अकबर शाह का।
सोचा भयचन्द ने, बुंदेला मिट जायगा
उद्धत अवज्ञा का अवश्य फल पायगा।
बोले बादशाह तब भूप ओर देख के
तिलक लगाने की अवज्ञा निज लेख के।
मधुकर शाह आप मुझे जानते हैं क्या
और कहें, अपने को आप मानते हैं क्या।
ओरछा अधीश लगे कहने—जहांपनाह,
जानता हूं आपको मैं भारत का बादशाह।
और अपने को मानता हूं आपके अधीन
छोटा सा नृपाल एक क्षात्र, धर्म-कर्म लीन।
शाह फिर बोले कल मैंने हुक्म था दिया
तिलक लगाने को सभी को मना था किया।

कल दरबार मे क्या आप नहीं आये थे,
या वह हुक्म सुन आप नहीं पाये थे।
महाराज बोले मैं अवश्य कल आया था
और सुना हुक्म भी था जो कि फरमाया था।

मधुकर शाह ने अपनी कर्मनिष्ठा पूर्ण निर्भय वाणी से ओज भरे शब्दों मे कहा कि मैं कल दरबार में भी आया था और शाही हुक्म भी सुना था। यह सुनकर अकबर क्रोधित हो गर्जन लगा।

गूंजी गिरा अच्छा तब तिलक न छोड कर
आपने दिखाया मुझे मेरा हुक्म तोड कर।
मधुकर शाह परवाह हुक्म शाही की,
आपका नहीं है तभी तो यों चित्त चाही की।
देखें आप जितने नरेश यहा आये हैं—
कोई उनमे से कहीं तिलक लगाये हैं।
सिर्फ आपने ही शाही हुक्म को न मान कर,
तिलक लगाया है अनोखा एक तान कर।
तो हैं आप बागी यह पूछा बादशाह ने,
उत्तर दिया यों ओरछे के नर नाह ने।
बागी अनुरागी जो हूँ सामने हूँ चाह से,
चाहता नहीं हूँ मैं बिगाड बादशाह से।
चाहें शाह शीश अभी देने को तयार हूँ,
परवा नहीं है मुझे प्राण की जुझार हूँ।
बिना दगा माल हाल नजर करूगा मैं
धर्म अपने की आन-बान पै मरूगा मैं।
धर्म मुझे प्राणों से पचासो गुना प्यारा है,
धर्म ही तो लोक परलोक का सहारा है।

इसके उपरान्त मधुकर शाह ने माहमपूर्ण शब्दों में अकबर से पुनः कहा

धर्म दिव्य दीपक है मोक्ष की भी राह का
धर्म से नहीं है बडा हुक्म बादशाह का।
जीते जी कदापि धर्म से नहीं मुह मोडूगा,
डर से किसी के धर्म धर्म को न छोडूगा।
तिलक लगाना धर्म मेरा है सदा ही से,
धर्म छोड सकता नहीं मैं हुक्म शाही से।

मधुकर शाह के यह धर्म और कर्मनिष्ठापूर्ण निर्भीक वचन सुनकर राजा महाराजा तथा अकबर शाह सब प्रभावित होकर वाह वाह करने लगे।

ओरछेश की इस अथाह बात चीत से
    राजा महाराजा हुए चकित-सभीत से।
मौन बादशाह दंग सब दरबारी थे
    विस्मित वजीर आदि उच्च अधिकारी थे।
देखा सबने कि उग्र ओरछाधिराज हैं
    कुछ कर डालने को उद्यत से आज हैं।
सन्नाटा सभा का तोड गूंजा शब्द वाह वाह
    बोले बादशाह वाह मधुकर शाह वाह।
आपको ही निज-नेम अपना निभाया है
    जान पर खेल कर तिलक लगाया है।
तिलक बिना है राजा-महाराजों का समाज
    निकले टिकैत सच्चे सिर्फ एक आप आज।

अकबर मधुकर शाह को आफरी देते हुए बोले केवल आप ही एक सच्चे टिकैत अर्थात टीका लगाने वाले राजा हो जो कि अपने धर्म की आन बान पर मर मिटने के लिये तयार हो और फिर शाह प्रसन्न मुद्रा में कहने लगे कि आज से यह टीका आप के नाम से ही विख्यात होगा।

आप के ही नाम से लगाया अब जायगा,
    मधुकर शाही यह टीका कहलायगा।

अकबर की इस घोषणा से दरबार के सभी राजा महाराजा मधुकर शाह की प्रशंसा करने लगे। उसी समय एक कवि ने उनकी प्रशंसा में यह कवित्त पढ़ा

हुक्म दियो है बादशाह ने महीपन कों
    राजा राव राना सो प्रमान लेखियतु है।
चन्दन चढ़ायो कहूं देव-पद बदन कों,
    तहां सिर दाग जहां रेखा रेखियतु है।
सूना कर गये भाल छोड़ छोड़ कंठ-माल
    दूसरो निशा और कौन देखियतु है।
सोहत टिकैत मधुशाह अनियारी इमि
    नागन के बीच मनियारो पेखियतु है।

(मधुकर पृष्ठ १७ पद १)

इसी घटना का वर्णन ब्रजभाषाचार्य श्री सत्येन्द्र जी ने भी अपना 'काव्य प्रतिभा' पुस्तक में निम्नलिखित कवित्त में इस प्रकार किया है।

तिलक लगाय मधुशाह शाह आना छाडि
    भवन भाल तिलक निभाय सीख सीख्यो है।

मार रूप देह द्रुम जगत असार रूप,
सेवकेन्द्र सार रूप धम फल चीख्यौ है।
चदनीय रेख बदनीय कीति नदनी है,
रूप सिन्धु श्याम मजुनी को बिन्दु दीख्यो है।
घाल्विँ कौं पाप-पुज पालिवे कौं पुण्य पज,
राधिका समेत नदलाल भाल लीख्यौ है।

इस ऐतिहासिक घटना से यह सिद्ध होता है कि महाराज मधुकर शाह ने अपने प्राणो की बाजी लगाकर बुन्देलखण्ड की सस्कृति और आन की प्राण प्रण से रक्षा की। यह जनपद उनका सवदा ऋणी रहेगा।

## रानी श्री गणेश कुँवरि

महाराज मधुकर शाह जिस प्रकार धम और कम परायण थ उसी प्रकार उनकी रानी श्री गणेश कुवरि भी अनन्य भक्त थी।

मधुकर शाह श्री जुगलकिशोर जी के उपासक थे और गणेश कुवरि श्रीराम की भक्त थी। एक बार हास्य म महाराज ने रानी से कह दिया कि ऐसा प्रतीत होता है कि आप साक्षात श्रीराम स लाड लडाती हो। रानी के हृदय म यह बात चुभ गई फिर भी उन्होन प्रम भाव से विनम्र शब्दा म महाराज का उत्तर दिया कि महाराज मे मुझे जो प्रेरणा मिली है उसको मैं सफल बनाने का प्रयत्न करूँगी जिसस श्रीराम का मुझे साक्षात हो सके।

रानी की बात सुनकर महाराज विचार करने लग कि रानी को मेरी बात कुछ गड गई है, और पुन हँस कर कहन लगे कि हमन तो आपसे विनोद म कहा था।

रानी विनम्र शब्दा म अनुनय करत हुए बोली कि महाराज आपके विनोदी शब्दा न हमारे हृदय के पट खोल दिय ह। इससे मुझे दो लाभ होग, एक तो पति की आज्ञा का पालन और दूसरा भगवान श्रीराम का दशन।

रानी न कालान्तर म अवध-यात्रा की तयारी कर दी और अवध पहुच कर श्रीराम क वात्सल्य भाव की साधना म रत होकर श्रीराम स ओरछा चलने का आग्रह करने लगी। स्व० श्री भगवानदास दास ने इस घटना को इस प्रकार लिखा है।

राम राजा खों लन गईं गनेश बाई
धन्य पूरब पुन्य की कमाई।
करक चलीं प्रतिज्ञा मन मे,
धरक ध्यान प्रभू चरनन मे।
जौलौ करीं नईं भोजन म।
जौलौं मजु मूरत श्रीराम जू की नईं पाई।
धन्य पूरब पुन्य की कमाई। राम राजा—

(मनोहर गीत गायन, पृष्ठ ७)

इस घटना म सम्बन्धित एक और प्राचीन पद भी इस जनपद म प्रचलित है। इस पद म सम्वत १६३१ वि० म गणेश कुवरि की अवध यात्रा का और नाभादासजी कृत 'भक्तमाल' म मधुकर शाह तथा गणेश कुवरि क भक्ति प्रसग एव श्रीराम को अवध से ओरछा लान का वणन मिलता है

प्रणत हित करत सदा रघुराई
सम्वत सोल्ह सौ इकतिस मे अवधपुरी को जाई।
श्री सरजू असनान करत मे ध्यान मिले रघुराई।
मधुकर शाह नरेश भक्त मय भक्त माल मे गाई।
तिन की महारानी गणेश दे राम ओरछा ल्याई।
प्रणत हित करत सदा रघुराई।

रानी गणेश कुवरि जब श्रीराम की भावना म रत थी तब अवध के पुजारी उनको समझान लग कि 'रानी जी, श्रीराम जी भी क्या किसी के साथ प्रयाण करते हैं वह तो केवल भक्त की भावना के भूखे हैं। आपको तो उनकी अनन्य भक्ति केवल उपासना करनी चाहिए जो कि भक्त क लक्षण हैं और जीव को इसी से मोक्ष की प्राप्ति होनी है किन्तु रानी अपन सकल्प म दृढ रही।

कालान्तर म मधुकर शाह न भी रानी को ओरछा पधारन का सदेश भेजा। किन्तु वह नहीं गई। एक दिन मधुकर शाह को स्वानुभूति हुई कि रानी अपन सकल्प को पूण करक ही ओरछा लौटेंगी। इस कारण उन्होंने श्रीराम के लिए एक विशाल मन्दिर की नीव डाली। यह निमाण काय वि० सम्वत १६१४ म पूण हुआ।

रानी गणेश कुवरि को जब कई वर्षों तक साधना करन पर सफलता प्राप्त नहीं हुई तब उन्होंने श्री सरजू जी म अपन शरीर को जल मग्न करन का निश्चय किया, और एक दिन प्रातःकाल इसी भावना म उन्होंने सरजू क जल म प्रवेश किया। जब उनक शरीर का अध भाग डूबन लगा तब

श्रीराम उनकी गोदी म आ गये इसका वणन दास जी के इस लोक गीत मे बहुत मार्मिक बन पडा है

आओ भोले भाले राम, सगे चलो ओरछा धाम।
तुम मे बसे हमारे प्रान, इतनी कन्क सरजू मे डुबकी लगाई।
धन्य पूरब पुन्य की कमाई—
डूबा साधौ धरक ध्यान, गोदी मे आ गये भगवान।
रानी कौं सुख भयौ महान, लगा छाती सौं रामचन्द्र निकर आई।
धन्य पूरब पुन्य की कमाई।

(मनान्र गान गायन न० ६)

भगवान भक्त की परीक्षा अवश्य लेते हैं, लेकिन रहते उसके मन म ही हैं। श्रीराम गोद म आकर मुस्कराते हुए कहन लग—माता मैं आ तो गया हूँ।

रानी आत्म विभोर हो गई और श्रीराम को गोदा म लिए हुए सरजू जी से बाहर निकल कर ओरछा चलन की तैयारी करने लगी। यह देख राम हँसकर कहने लग—मा कहा प्रयाण करन की सोच रही हो।'

रानी न वात्सल्य भाव स उत्तर दिया—ओरछा को। श्रीराम भी वत्स की भाति हठ करते कहने लग—मैं साथ अवश्य चलूगा किन्तु मेरी कुछ बातें तुमको स्वीकार करनी होगी।

रानी ने प्रसन्न मुद्रा म माता की भाति उत्तर दिया—कौन-कौन सी बातें ?

प्रथम मैं तुम्हारे साथ म ही निवास करूँगा।
दूसरी जिस नगर मे मैं रहूगा वहा मेरा राज होगा।
तीसरी, पुष्य नक्षत्र मे ही केवल यात्रा करूगा।

श्रीराम की इन तीनो प्रतिज्ञाओ को रानी गणश कुवरि न बड हर्ष क साथ स्वीकार कर लिया और पुष्य नक्षत्र के लगते ही अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी। रामदास 'कुसुम' के लोक गीत म इस यात्रा का वणन हुआ है

रानी चल्तीं पुक्खन पुक्खन।
रामे क्या लयें रइ बरसन।
पूरी भई प्रतिज्ञा ठानीं।
आगई नगर ओरछा रानी।

(गारी ग्रान बोध पृष्ठ ५)

रानी गणेश कुवरि इस प्रकार अपना साधना म सफल होकर वि० सम्वत् १६६१, चत्र शुक्ल ६ सामवार को अपन रनवास ओरछा मे पधारीं और श्रीराम की साधना म तन्मय हो गइ।

राजा मधुकर शाह की रानी कुवरि गनेश।
अवधपुरी से ओरछा ल्याई अवध नरेश।

यह दोहा जनपद मे आज भी प्रचलित है।

मधुकर शाह ने जिस प्रकार अपने प्राणा की बाजी लगाकर बुन्देलखण्ड भूमि की सस्कृति की रक्षा की, ठीक उसी प्रकार रानी गणेश कुवरि ने भी अडिग तपश्चया द्वारा श्री राम का अवध से ओरछा लाकर अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है। आज भी इस जन पद मे इनकी चर्चा है। इनसे सबको अपने कम धम पर दढ रहने की प्रेरणा मिलती है।

## श्री वीरसिंह देव बुन्देला

श्री वीरसिंह देव वि० सम्वत १६६३ म ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए थे। यह विद्वान पराक्रमी और न्यायप्रिय राजा थे। इनकी प्रशसा म इनके दरबारी कवि श्री मित्र मिश्र न 'वीर मित्रोदय' ग्रन्थ की रचना की थी। 'वीर मित्रोदय' को कदाचित ससार का सवप्रथम शब्द कोष कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। इस ग्रन्थ क अब तक ८२ भाग प्रकाशित हुए हैं। सव प्रथम इसका प्रकाशन जमनी मे हुआ था।

वीरसिंह देव की न्याय प्रियता की एक घटना इस जन पद म आज भी प्रसिद्ध है। इनका पुत्र प्रवीर राय स्वभाव स क्रोधी होन के कारण बाघराज के नाम से प्रसिद्ध था। एक बार वह शिकार खेलने गया।

ओरछा के दुग क पिछवाड का वन-खण्ड लका वन के नाम से प्रख्यात था। (यहा जामनेर और बेतवा नदियो के सगम पर एक भवन निर्मित है जो लका क नाम स प्रसिद्ध है।) इस वन म शिकार खेलने वाले शासन की आज्ञा म ही शिकार खेलते थे। इसके अनन्तर कचनाघाट स तगारण्य तक—जहा तग ऋषि का आश्रम है—का प्रदेश अयोध्या वन कहलाता था। इस वन म शिकार खेलना निषिद्ध था।

प्रवीर राय का लक्ष साधा हुआ मृगा का एक झुड अनायास आखो से ओझल हो चौकडी भरता हुआ लका वन से अयोध्या वन म घुस गया। इसस प्रवीर राय उद्विग्न हो उठा और आवेश म आकर अपन साथियों को अयोध्या वन में म मृगा का खदेडने का आदेश दे दिया।

साथिया के यह कहने पर भी कि महाराज, अयोध्या वन म आये हुए मृग अवध्य है प्रवीर राय की आज्ञा स साथिया को उनको खदेडन के लिए अयोध्या

वन में प्रवेश करता पाया। वहाँ पहुँच उन्होंने धारा तट पर एक महात्मा को बैठे देखा। उन्होंने उस महात्मा से प्रश्न किया— महाराज क्या यहाँ मृगों का एक झुण्ड आया है? उस पर राजकुमार ने अपना तीर साधा था।'

महात्मा ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया— हाँ आया है और यह मृगों का झुण्ड इसी वन का है। राजकुमार मैं यह ना कि ये मृग अवध्य हैं।

सिपाही निरन्तर हो और आये और उन्होंने प्रवीर राय को महात्माजी का कथन आद्योपांत कह सुनाया। प्रवीर राय सुनकर लाल हो गया। उसके श्रम कण ढलक। हुए मस्तक पर रोष की रेखायें उभर आईं। वह शीघ्र ही वेतवा तट पर बैठे हुए महात्माजी के समीप पहुँचा और क्रोधित हो बोला— कहाँ हैं वे हमारे मृग महात्माजी

महात्मा ने संयम के साथ उत्तर दिया—'राजकुमार वे मृग इसी वन के हैं और इस अयोध्या वन में किसी जीव का वध करना अवध है।

प्रवीर राय की त्योरी चढ़ी और वह कड़क कर बोला— तुम्हें पता नहीं मैं वीरसिंह का पुत्र बोल रहा हूँ। बतला दो मेरे मृग अन्यथा तलवार के घाट उतार दूँगा।

महात्मा का हृदय सिर पर आई मृत्यु के भय से तनिक भी भयभीत नहीं हुआ। वह मौन हो गए। इस मौन को प्रवीर राय ने अपना अपमान समझा। उसकी तलवार म्यान से निकली चमकी और महात्मा का सिर कट कर धरती पर लुढ़क गया।

अयोध्या वन के पशु पक्षी इस घटना से व्याकुल हो उठे। माँ वेतवा की पावन धार कलकल निनाद करती हुई उमगी और उसने अपने तपपूत को गोद में लीन कर लिया।

महाराज वीरसिंह देव सदैव प्रातः के समय तुंगारण्य के मध्य में अवस्थित तुम्मी टौरिया स्थित मन्दिर में पानेश्वरी शिवजी के दर्शन करने आते थे। उनको जब यह घटना विदित हुई तब वह सहम उठे उनका उन्नत भाल लज्जा से झुक गया और अंतस मन न्याय के लिए पुकार उठा। उन्होंने अपना मस्तक झुका भगवान शिव से न्याय की भिक्षा माँगी और महल के लिए प्रस्थान किया।

शोकातुर महाराज वीरसिंह रानी पंचम कुँवरि के कक्ष में पहुँचे। प्रवीर इन्हीं पंचम कुँवरि का इकलौता पुत्र था। राजा के पधारने पर रानी ने यथोचित सम्मान करते हुए निवेदन किया— कैसो पधारबो भओ महाराज ?

राजा ने अपने शोकाकुल मन की व्यथा का समाधान करते हुए कहा— 'रानी जू कउत की दार काउ काऊ तपस्वी की बिना अपराध करे हत्या करदे तो का न्याय होय चइये ?

रानी ने अपनी न्याय सगत वाणी मे साहस के साथ उत्तर दिया— प्रान दड दयें चइये महाराज !'

राजा ने फिर रानी को सम्बोधित करते हुए कहा— और हत्यारा कउ कौऊ राजवश को हाय तौ ?

ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो राजा प्रवीर राय की माता से ही न्याय कराना चाहते हो। राजा के इन गभीर वचनो को सुन रानी ठसक और साहस के साथ बिना झिझके खनकते हुए स्वरो मे बोली— न्याय राजा और पिरजा के लानें एकई होत महाराज ?'

राजा वीरसिंह उनके पात्र फूले नाग आय और मत्री को बुलाकर आदेश दिया कि प्रवीर राय को गिरफ्तार करके जेल म डाल दिया जाय। मत्री आश्चय म डूब गया किन्तु राजा की आज्ञा थी। प्रवीर राय को बन्दी बनाकर जेल म भेज दिया गया। ओरछा नगर विष की लहरो स भर गया और जनता राजकुमार को जल भेजने का कारण जानन का आतुर हो उठी।

वीरसिंह को रात्रि म नींद नही आई। याय की ऊहा पोह म उनको भोर हो गया। वे उठे और सन्ध्या-वन्दन म निवत्त हो राजा राम क मदिर म ध्यानावस्थित हो राम क सम्मुख बठ गय। शीघ्र ही उनक अन्तम म राम की न्याय-नीति का दृश्य उभरने लगा। उन्हे याय का माग दर्शित हुआ। उन्होने राजा राम को मस्तक झुकाया चरणोदक लिया और दरबार के लिये चल दिये।

किले की दरबारी दरगालान म वीरसिंह का दरबार भरा। बन्दीगण विरदावली बखानने लगे। राजा वीरसिंह के मुख मण्डल पर इस समय अलौकिक तेज था और न्याय करने का अदम्य साहस। उन्होने मत्री को प्रवीर राय को दरबार म उपस्थित करने का आदेश दिया। प्रवीर राय के उपस्थित होने ही राजा न उस पर अयोध्या वन क महात्मा की हत्या का आरोप लगाते हुए उसका कारण पूछा।

प्रवीर ने राजा के प्रश्न के उत्तर म महात्मा के कुज म अपने मृगों के झुण्ड क होने का तक उपस्थित किया।

राजा न फिर प्रश्न किया— प्रवीर राय क्या तुमको यह ज्ञात नही था कि अयोध्या वन म आन वाले या निवास करन वाले सभी प्राणी अवध्य हैं ?

प्रवीर राय न बडी ठसक क साथ कहा— हा महाराज।

राजा ने पूछा— तुमने फिर महात्मा का वध किस विरत पर किया ?'

प्रवीर राय निरुत्तर हो गया। उसका शीश लज्जा म नीचे झुक गया। मानो उसके हृदय न अपराध स्वीकार कर लिया हो।

राज दरबार का आदेश हुआ— प्रवीर राय न अपनी जिस तलवार से

अयोध्या वन के महात्मा का वध किया उसी से उसका फूल बाग की सिंह पौर के मैदान म वायु यत्रो के समीप जनता के सम्मुख धड से सिर उतार दिया जाय । ओरछा राज्य रामराज कहलाता है यहा न्याय के आधार पर शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।

प्रवीर राय को इसी स्थान पर प्राण दण्ड दिया गया । इसकी साक्षी आज भी दे रहे है वह अपनी लम्बी लम्बी बाहो को उठाये हुए दो वायु यत्र जिनको लोग सावन भादो के नाम से पुकारते हैं ।

महाराज वीरसिंह जू देव के ओरछा राज्य की वशावली म बारह पुत्र होने का उल्लेख है । केशवदास रचित वीरसिंह देव चरित्र म भी इसी प्रकार का वर्णन आया है ।

वीरसिंह देव के एक दरबारी राजकवि ने भी अपनी कविता द्वारा इनके बारह पुत्रो का होना सिद्ध किया है । किन्तु प्राप्त कवित्त म कवि ने अपनी छाप नहीं डाली है । यह कवित्त हमको ओरछा नरेश वीरसिंह देव द्वितीय के राजकवि श्री अम्बिकेश जी द्वारा प्राप्त हुआ है और इस छन्द की जो शैली है वह प्राचीन शैली की ही द्योतक है । इस कारण यह कवित्त प्रामाणिक प्रतीत होता है

> जालिम जुझार सिंह प्रबल पहाड सिंह
> चन्द्रभान, माधव, हठीले हरदौल हैं ।
> भीम से भुजान वाले भूप भगवान सिंह ।
> नरहरिदास बनिदास, से न और हैं ।
> समर के शूरवीर परमानन्द, किशुन सिंह
> तुलसीराम बाघराज ऐते मति दौर हैं ।
> बारह बखानें बेटा वीरसिंह भूपति के
> दान किरपान हिन्दुवान शिरमौर हैं ।

**पारिवारिक प्रेम**—वीरसिंह जस न्यायप्रिय थ वस ही व अपने पारिवारिक प्रेम क लिय भी प्रसिद्ध थ । वीरसिंह देव और रामशाह सगे भाई थ किन्तु राज क कारण दोनो म अनबन रहती थी । इस समय केशवदास जी को ओरछा दरबार मे राजकवि और कवीन्द्र की उपाधि प्राप्त हो चुकी थी । उनको यह गृह-कलह उचित नहीं लगता था । उन्होने भाइयो की गृह-कलह को रोकने की दृष्टि स रामशाह की आज्ञा स वीरसिंह देव स परामर्श किया ।

वीरसिंह देव केशवदासजी का अत्यधिक सम्मान करत थ । इस कारण वह विनम्र भाव स कहने लगे

> जिही मग होय दुहून को भलो तिही मग मोहि चला ल चलो ।

[illegible]

केशवदास ने वीरसिंह देव के विनम्र वचनों को सुनकर यह उत्तर दिया

> द्वै द्वै बाट भली अन भली, चलिबौ कुसल कौन सी गली।
> बई एक दाहिनी ओर—सुखद दाहिनी बाई घोर।
>
> (वीरसिंह देव चरित पृष्ठ ८७-८८ काशी ना० प्र० सभा)

वीरसिंह देव ने गम्भीरतापूर्वक केशवदास से विचार करके अन्त में यह कहा

> राजहिं मौहिं करो इक ठौर विविध विचारन की तजि दौर।
> मैं मानो जो माने राज, सकल होहि सबही के काज।
>
> (वीरसिंह देव चरित पञ्चम प्रकाश ११६ ११७ काशी ना० प्र० सभा)।

इससे यह प्रतीत होता है कि वीरसिंह देव प्रजा प्रिय तो थे ही परिवार प्रिय भी थे।

सांस्कृतिक प्रेम—अकबर बड़ा कूटनीतिज्ञ था और अबुल फजल संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान तथा चतुर। इन दोनों ने हिन्दू जनता को वश में करने के लिये देव मन्दिरों में जाना और कथा वार्ता सुनना प्रारम्भ किया था। जब अकबर मन्दिरों में जाता तब वह तिलक माला धारण करके जाता। यह देखकर पुजारी और पंडितों को अकबर के प्रति अतीव श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी किन्तु कुछ विचारशील व्यक्ति यह सब अकबर का ढोंग मानते थे।

अकबर ने जब हिन्दुओं को अपने प्रति श्रद्धावान देखा, तब उसने अबुल फजल से परामर्श करके एक दीनइलाही मजहब चलाया।

वीरसिंह देव ने अकबर की यह चाल, जो कि वह हिन्दू संस्कृति को नष्ट करने के लिए चला रहा था, पूर्णतया समझ ली और वह सतर्कता से हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अग्रसर हुए।

जहांगीर के आग्रह पर वीरसिंह देव ने बुन्देलखण्ड की ही नहीं समस्त भारत की हिन्दू संस्कृति के विरोधी अबुल फजल का ओरछा से एक सौ दस मील दूर आंतरी ग्राम में वध कर दिया और इस प्रकार कसकने वाले कांटे को सदा के लिए निर्मूल कर दिया।

अबुल फजल के वध की घटना सन १६०२ के मध्य की है। उस समय अबुल फजल ५२ वर्ष का था। जहांगीर की यह धारणा थी कि अबुल फजल उसके और उसके पिता सम्राट अकबर के बीच कांटों की बाड़ है। वही जहांगीर के विरुद्ध अकबर को भड़काया करता था इसलिये जहांगीर ने अबुल फजल को समाप्त कर अपना मार्ग साफ करना चाहा। इसके लिये जहांगीर ने एक विशेष दूत भेजकर वीरसिंह देव से आग्रह किया। जहांगीर ने स्वयं जो अपनी जीवनी लिखी है उसमें घटना का उल्लेख करते हुए उसने वीरसिंह के प्रति कृतज्ञता प्रगट की है।

केवल जहांगीर के कहने पर ही वीरसिंह देव ने अबुल फजल का वध कर दिया हो यह बात सत्य नही है। स्वयं वीरसिंह देव पिछली एक घटना के कारण अबुल फजल के प्रति वैर की भावना रखते थे। एक बार अबुल फजल ने वीरसिंह को बादशाह अकबर से समझौता करने का विश्वास दिला कर बडौनी से निमंत्रण में भेजा। वीरसिंह देव के बडौनी से प्रस्थान के कुछ घटा बाद ही उसने बडौनी में आग लगवाई और लूटमार की। सन १६०० में वीरसिंह देव को जब यह समाचार मिला तो वे बाद में भी अकबर से बिना मिले वापस लौट आये और फिर अन्त तक विद्रोही बने रहे। विश्वासघात कर बडौनी को भस्म कर देने की इस घटना के कारण भी वीरसिंह देव अबुल फजल से रुष्ट थे।

जब जहांगीर सम्राट बना तो उसने वीरसिंह देव से बडा कृपापूर्ण व्यवहार रखा। जहांगीर के अल्पकालिक ओरछा प्रवास के लिये महाराज वीरसिंह देव ने ओरछा में बिल्कुल आगरा के शाही महल की शैली पर एक महल बनवाया जिसका नाम जहांगीर महल रक्खा गया। वस्तुतः किले के बाहर राजा के मन्दिर के निकट वाला महल ही जहांगीर महल जान पडता है जिसे अब लोग फूल बाग कहते है।

महाराज वीरसिंह देव भवन निर्माण कला के भी विशेष प्रेमी थे। जिस प्रकार उन्होंने अपने राज्य में अनेक सुन्दर महल मन्दिर और दुर्ग बनवाये उसी प्रकार उन्होंने मथुरा में भी एक अत्यन्त विशाल मन्दिर बनवाया था। सन १६५० के लगभग टैवर नियर नामक एक विदेशी यात्री ने उक्त मन्दिर को देखा था और अपनी पुस्तक में उसका विवरण देते हुए मन्दिर का नाम श्री केशव देव मन्दिर लिखा था। औरंगजेब ने जब मथुरा पर आक्रमण किया तब उस मन्दिर को तोडकर उसके ऊपर ही एक विशाल मस्जिद बनवाई थी। कालान्तर में यह मस्जिद जीर्ण होकर गिर पडी और उसके निकट ही टीले की खुदाई में मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुए। मन्दिर काफी विस्तृत था यह इस बात से सिद्ध है कि आजकल भी उसके लगभग दो मील के निकटवर्ती क्षेत्र को कटरा केशव देव कहते हैं। (जिन दिनों श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे उन दिनों उनकी अध्यक्षता में एक ट्रस्ट बना और खुदाई करके महाराज वीरसिंह देव के पुराने मन्दिर के मूल्यवान अवशेष निकाले गये। इसी स्थान को अब श्री कृष्ण जन्मभूमि नाम से जाना जाता है।)

जनकार्य—बुन्देलखण्ड में एक बार दुर्भिक्ष पडा। जनता भूख से विकल हो उठी। यह देख महाराज वीरसिंह देव ने विचार किया कि जनता के पालन पोषण का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। उन्होंने शीघ्र अपने मंत्री कृपाराम गौड से परामर्श करके सम्वत १६५८ माघ शुक्ल ५ को भवन निर्माण की एक

विशाल योजना बनाई । राज की ओर से इसकी घोषणा करदी गई । जनता को काम मिल गया जिसके फलस्वरूप बावन दुर्ग बावन तालाब बावन बावडी तथा बावन महलों का निर्माण हुआ । इस गणना में झांसी का दुर्ग दतिया का पुराना महल और चंदेवा की बावडी, दिनारा का तालाब वीर सागर आदि आते हैं ।

इस सम्बन्ध में बुंदेलखण्ड में एक ऐतिहासिक घटना प्रचलित है । वह इस प्रकार है कि दिल्ली से एक सूबेदार जब ओरछा खिराज वसूल करने आया तब ओरछा नरेश ने एक युक्ति चली कि रात्रि में बैलों के सीगों में जलती हुई मशाल बंधवाकर उसके खेमे के चारों ओर छुड़वा दिये जिससे वह भयभीत होकर सैनिकों सहित खजाना छोड कर भाग गया । वही द्रव्य महाराज ने दुर्भिक्ष काल में भवन निर्माण के उपयोग में लिया । पर इस घटना की पुष्टि नहीं होती है ।

महाराज वीरसिंह देव ने दुर्भिक्ष काल में धार्मिक भावना से दूसरी योजना स्वर्ण के तुलादान की बनाई थी । इस सम्बन्ध में महाराज ने राज्य ज्योतिषियों को एकत्रित करके यह प्रश्न किया, कि हमारे राज में जो दुर्भिक्ष पडा है उसकी शान्ति का उपाय बताइये ।

ज्योतिषियों ने विचार करके मथुरा में यमुना तट पर स्वर्ण का तुलादान करने का परामर्श दिया । महाराज ने यह उपाय सहर्ष स्वीकार करके तुलादान के लिये अपनी नौ जागीरों को जो कि खनियाधाना चिरगाव, दतिया आदि में थी नौ मन स्वर्ण एकत्रित करने का आदेश भेजा ।

ओरछा राज्य के जागीरदार भी बडे उदार एवं आज्ञाकारी और धर्म परायण थे । आदेश पत्र प्राप्त होते ही प्रत्येक ने नौ नौ मन स्वर्ण भेज दिया जिससे इक्यासी मन स्वर्ण एकत्र हो गया । महाराज ने सबों से विचार विमर्श करके राज परिवार तथा जनता में मथुरा-यात्रा का सन्देश भिजवा दिया ।

राज घोषणा सुनकर जनता के धनी मानी व्यक्तियों तथा परिवार के लोगों ने महाराज के साथ मथुरा के लिये प्रस्थान कर दिया । मथुरा पहुंच कर यमुना के तट पर तुला लगाई गई । राज्य ज्योतिषियों द्वारा तुला का पूजन किया गया । फिर महाराज वीरसिंह देव एक पल्डे पर विद्यमान हुए और दूसरे पल्डे पर इक्यासी मन स्वर्ण चढा दिया गया किन्तु तुला सम भाव में न देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

महाराज वीरसिंह देव यह देख प्रसन्न मुद्रा में अपने राज परिवार के व्यक्तियों को अपने अपने ओसरे में पल्डे पर बैठने का आग्रह करने लगे और सभी महाराज की आज्ञा मानकर पृथक पृथक तुला पर बैठे किन्तु तुला सम

वीरसिंह देव ने भभूति को स्पश करके देखा। मत्री ने कहने लगे कि मत्री जी अब तो धूनी ठडी हो गई।' उपरा त परिवार के व्यक्तियो मे हँसकर कहने लगे 'भया हरी देख लओ धनी पानी को सजोग।

दानवीर, कमवीर और धमवीर श्री वीरसिंह जू देव का स्वगवास इस के कुछ महीनो उपरा त सम्वत १६८७ म हो गया। उनकी दानशीलता, वीरता यश के सम्बन्ध म उसी काल के किसी कवि ने यह दोहा कहा है, जो इस जनपद म आज भी श्रद्धा भक्ति के साथ पढ़ा जाता है

बलि बोई कीरतलता, करन करी दो पात।
सीची वृसिंग देव ने जब देखी कुमलात।

अर्थात राजा बलि ने वावन भगवान को तीन पड म अपनी भूमि को दान म देकर कीर्ति की लतिका बोई थी, और दानवीर कण ने कुरुक्षेत्र के मदान म 'अपने स्वण जटित दातो को तोड कर' भिक्षुक रूप कृष्ण को अपण कर कीर्ति लता म दो पत्रो को उत्पन्न किया था और उसी लता को जब वीरसिंह देव ने कुम्हलाते हुए देखा तब स्वण का तुला दान देकर सीचा।

इस प्रकार महाराज वीरसिंह देव न अपने प्राणप्रण से बु देलखण्ड की सस्कृति की रक्षा की।

महाराज वीरसिंह जू देव की मृत्यु (वि० १६८७) के पश्चात जुझारसिंह ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए।

(ओ छा इतिह स पृष्ठ ६)

## श्री केशवदास और प्रवीण राय

ग्वालियर के तोमर राज्य वश के आश्रय म दो मिश्र परिवार थे। दोनो विद्या वारिधि। तोमरो से अनबन होने से उनम एक परिवार ओरछा के सस्थापक राजा रुद्र प्रताप के यहाँ आ गया था। कृष्णदत्त मिश्र को राजा रुद्र प्रताप ने पौराणिक वृत्ति दी। इन्ही की तीसरी पीढ़ी म आचाय केशवदास का जन्म सवत १६१८ की चत्र शुक्ल नवमी को ओरछा म हुआ था। इनके पिता सुख्यात सस्कृति ग्रथ शीघ्रबोध' के रचियता प० काशीनाथ सनाढ्य ब्राह्मण थे। केशवदास ने अपनी जन्मभूमि और सुकवि होने का स्वय परिचय दिया है

नदी बेतवा तीर जह तीरथ तुगारण्य।
नगर ओरछा महँ बस धरनी तल में धन्य।

दिन प्रति जह दूनों लहें जहा दया अरु दान।
एक तहां केशव सुकवि जानत सकल जहान।
(रसिकप्रिया पृ० ६ १०)

केशव का सम्मान जिस प्रकार ओरछा नरेश वीरसिंह देव इन्द्रजीत सिंह और रामशाह करते थे उसी प्रकार वहा के कवि तथा विद्वान भी करते थे। इस सम्बन्ध मे उनकी कविता की प्रशसा करते हुए एक कवि ने राजा के प्रति व्यगोक्ति लिखी है

देन न चाहे विदाई नरेश तो—
पूछत केशव की कविताई।

ऐसे ही किसी कवि ने केशव को कठिन काव्य का विकट पिशाच कहा है और यह दोहा तो साहित्य जगत मे विख्यात है ही

सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशव दास।
कलि के कवि खद्योतसम जह तह करहिं प्रकास।

कवीन्द्र केशव दास की प्रशसा अनेक कवि करते आये है किन्तु स्व० नरोत्तम दास पाण्डेय मधु ने केशवदास के सम्बन्ध म जो भाव व्यक्त किये हैं उनके समक्ष और कवि फीके पड जाते हैं

मानतें हैं कोई कवि तुलसी शशी से हुये,
कोई इन्हें सूर के समान बतलाते हैं।
कोई अन्ध भक्त अन्य सूरदास के हैं जोकि
सूरज सदृश सूर गाते न अघाते हैं।
आसमान के समान मान लीज दोनों किन्तु
सुकवि 'नरोत्तम' यों स्वमत सुनाते हैं।
केशव कवीन्द्र हुआ हिन्दी कवियों मे माघ,
जहा ये अमन्द भानु मन्द पड जाते हैं।

इस छन्द में 'सूर सूर तुलसी शशी' की उक्ति का दिग्दर्शन तो कराया ही गया है किन्तु उडुगन कहे जाने वाले केशव में सस्कृत के महाकवि माघ की प्रतिष्ठा अत्यन्त भावात्मक है। माघ श्लिष्ट पद है जिसमे 'माघे सन्ति त्रियागुण' और सूर्य को मन्द कर देने वाले माघ मास का अर्थ विद्यमान है। यह दूसरा छन्द भी साहित्यिक दृष्टि से अवलोकन कीजिये जो और भी भावात्मक है

केशवर सधन सुदेश जो हमेश चाहो,
सुमन समादृत सनेह तो विसाहिये।
चाहो करतल गत सूक्ति मजु मुक्ताहल
शुद्ध शब्द सागर मे बुद्धि अब गाहिये।

ज्ञान काव्य रीति की प्रतीत अपने मे होय
युक्त सों नरोत्तम जू चाह कछु चाहिये।
केशव कवीन्द्र चारु चन्द्रिका निहारिवेको,
चतुर चकोर से निराले नैन चाहिये।

केश बर मघन या केशव रस घन, सुमन समाहृत सनेह सूक्ति मुक्ताहल आदि प्रयोग इस छन्द म बडी दक्षता से किये गये है तथा चतुर चकोर से निराले नैन चाहिये वाली उक्ति मे बडा चुटीला व्यग्य है।

कवीन्द्र केशव दास ने मा सरस्वती की सेवा म जिन दस हिन्दी ग्रथो को भेंट करके साहित्य जगत की शोभा बढाई है उनकी गणना इस प्रकार है १ रतन बावनी, २ रसिक प्रिया, ३ नख सिख, ४ बारह मासा ५ रामचद्रिका, ६ कवि प्रिया, ७ छन्द माला, ८ वीरसिंह देव चरित्र, ९ विज्ञान गीता १० जहागीर जस चद्रिका।

कवीन्द्र केशवदास केवल कवि ही नहीं थे, वह राजनीतिज्ञ भी थे। इस कारण वह बुन्देलखण्ड की रक्षा के लिये सदव प्रयत्नशील रहे। जब जब वीरसिंह देव प्रथम और रामशाह मे राज्य के कारण अनबन होती थी, तब तब वह एकता तथा साम्य लाने का प्रयत्न करते थे। 'वीरसिंह देव चरित्र' इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त केशवदास न प्रवीणराय को जो एक नर्तकी थी शिष्या रूप म अपना कर ममत्व भाव का अद्वितीय परिचय दिया है। इससे स्पष्ट है कि वह यदि अपनी लेखनी को श्रीराम और वीरसिंह देव या जहागीर का यश वणन करने को उठा सकते हैं तो प्रवीण राय क सौन्दय तथा गुण वणन और उसकी काव्य प्रतिभा को परख कर उपमा उपमेय द्वारा प्रोद्भासित करन की भी क्षमता रखते हैं। देखिय, उन्होने अपनी कविता द्वारा प्रवीण राय के सम्बन्ध म कस उत्कृष्ट भाव प्रकट किये हैं

राय प्रवीन की सारदा, सुचिरुचि रजित अग।
वीना, पुस्तक, धारिनी राज हस युत सग॥
बृसभ बाहिनी, अगयुत, बासुकि लसति प्रवीन।
सिव सग सोहे सवदा सिवा कि राय प्रवीन॥

(कवि प्रिया प्रथम प्रभाव छ द ५६ ६०)

केशवदास ने प्रवीण राय म काव्य की प्रतिभा परख उसे छन्द शास्त्र का पूण ज्ञान कराया था। अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कवि प्रिया केशव ने प्रवीण राय के लिए ही लिखा। अनेक स्थानों पर इस ग्रथ म प्रवीण राय को सम्बोधन किया गया है। और वह जब छन्द शास्त्र म प्रवीण हो गई, तब

उन्होंने स्वयं नायिका भेद प्रान म उसकी परीक्षा ली जिसम मुग्धा नायिका भेद में यह प्रश्नोत्तर हुए हैं।

केशवदास—कनक छरी सी कामिनी काये कटि सों छीन।
प्रवीण राय—कटि को कचन काढि क कुच नितंब भर दीन।
केशवदास—जो कुच कचन के बने मुख कारो किहि कीन।
प्रवीण राय—जोबन ज्वर के जोर मे, मदन मुहर कर दीन।

प्रवीण राय की काव्य और नत्यकला से प्रभावित हो इन्द्रजीतसिंह न उसे प्रेमिका रूप में स्वीकार कर लिया। इस कारण उसकी गुण गरिमा और भी मुखरित हुई और उसकी ख्याति बुन्देलखण्ड क अतिरिक्त अकबर दरबार तक फल गई। लकिन अबुल फजल की घटना के बाद सम्राट अकबर वीरसिंह देव के अतिरिक्त उनके अग्रज इन्द्रजीतसिंह स भी रुष्ट हो गया था। प्रतिशोध की भावनावश अकबर ने इन्द्रजीतसिंह की प्रेयसी नतकी प्रवीण राय को मुगल दरबार म प्रस्तुत करन का आदेश दिया। प्रवीण राय का तलब करने का एक यह कारण भी हो सकता है कि अकबर को प्रवीण राय के अनुपम सौन्दय के साथ उसकी अप्रतिम कवित्व शक्ति के विषय म भी जानकारी थी। गुणी जना को अपन दरबार म बुलाना अकबर का स्वभाव था परन्तु प्रवीण राय को आदेश के स्वर म बुलाने का कारण इन्द्रजीतसिंह को ताडित करने की भावनावश भी हो सकता है।

जो भी हो सम्राट अकबर ने इन्द्रजीतसिंह को शाही फरमान भेजा कि प्रवीण राय को हमारे दरबार म प्रस्तुत करो।

इन्द्रजीतसिंह को जब यह पत्र प्राप्त हुआ तब वह क्रुद्ध हो उठे। प्रवीण राय यद्यपि उनकी प्रेमिका थी रानी नहीं थी लेकिन उन्होंने प्रेमिका धम को अत्यन्त महत्त्वपूण मान कर अकबर को उत्तर म विरोध पत्र भेज कर प्रवीण राय का भेजना अस्वीकार कर दिया।

अकबर शाह को जब इन्द्रजीतसिंह का यह विरोध पत्र प्राप्त हुआ, तब वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा, और इस हुक्म उदूली के अपराध म इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड रुपया जुर्माना करके हरकारे द्वारा आरछा फरमान भेज दिया।

यह समाचार जब कवीन्द्र केशवदास को विदित हुआ तब वह हृदय मे दुखित हो फतहपुर सीकरी के उपासनागृह जिसका दूसरा नाम इबादतखाना था म जाकर बीरबल स मिले। यह स्थान अकबर ने सन १६६० के लगभग धम शास्त्र के विवेचनकर्ताओ तथा कवियो क लिये बनवाया था।

बीरबल केशवदास का बडा सम्मान करत थ। उन्होंने सम्राट अकबर को समझाया। फलस्वरूप उन्होन इन्द्रजीतसिंह का जुर्माना माफ कर दिया,

किन्तु प्रवीण राय को प्रस्तुत करने की बात केशवदास से सलाह करके निश्चित रही, क्योंकि केशवदास और बीरबल को यह विश्वास था कि जब अकबर प्रवीण राय की नत्यकला तथा काव्यकला के गुणो का अवलोकन करेगा तब वह प्रभावित होकर उसको स्वय मुक्त कर देगा।

केशवदास ने ओरछा आकर इन्द्रजीतसिंह को सब वृत्तान्त सुना कर कूट-नीति समझाई जिससे उन्होंने प्रवीण राय को अकबर के दरबार म भेजना स्वीकार कर लिया, और इसी भाव से केशवदास ने प्रवीण राय को भी समझाया। किन्तु प्रवीण राय महिला थी। उसके मन मे यह धर्म-सकट हुआ कि यदि मैं आगरा जाना अस्वीकार करती हूँ, तो गुरु की आज्ञा का उल्लघन होता है, और स्वीकार करती हूँ तब प्रियतम धर्म को चोट लगती है।'

वह रात्रि भर विचार सागर म डूबी रही। इसके उपरान्त उसने आगरा जान म ही अपने प्रियतम की रक्षा और गुरु आज्ञा का सम्मान समझा और तयार हो गई उसन इन्द्रजीतसिंह से परामर्श करके आज्ञा लेने का निश्चय किया।

यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रवीण राय नतकी थी यदि वह चाहती तो अकबर के बुलाने पर सदा के लिए चली जाती और वहाँ उसे सम्मान के साथ साथ वैभव भी प्राप्त होता, किन्तु उसने ऐसा नही किया। उसने अपन प्रेमी इन्द्रजीतसिंह को हृदय म सर्वोपरि स्थान देकर न केवल बुन्देलखण्ड की सस्कृति का वरन् पूर्ण भारतवर्ष की नारी सास्कृति की रक्षा का ध्यान रक्खा। वह विनम्र शब्दो म इन्द्रजीतसिंह से प्रार्थना करने लगी

आई हो बूझन मत्र तुम्हें,
निज स्वासन सों सिगरी मति खोई।
देह तजों कि तजों कुल कानि,
हियें न लजौं लजिहै सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ को पथ,
चित्त विचार कहो तुम सोई।
जामे रहे प्रभु की प्रभुता,
अरु मोर पतिव्रत भग न होई।

इन्द्रजीतसिंह केशवदास के निश्चय के उपरान्त भी विचार मग्न हो आश्चर्य म पड गय, क्योंकि बुन्देला थ। उनके सामन फिर अपनी वीरता के प्रति लज्जा और केशवदास की आज्ञा के प्रति विवशता का प्रश्न उठ खडा हुआ। लेकिन केशवदास की आज्ञा श्रेष्ठ समझ उन्होंन सजल नेत्रो से प्रवीण राय को हृदय स लगा कर विदा कर दिया।

आगरा पहुँचने पर केशवदास ने बीरबल से मिलकर सम्राट अकबर को प्रवीण राय से भेंट करने की सूचना दी और अकबर ने भी तुरंत केशवदास तथा प्रवीण राय को खास दरबार में उपस्थित होने का निर्देश दिया।

खास दरबार भरा। सामने स्वर्ण सिंहासन पर बैठे थे सम्राट अकबर और एक ओर रजत सिंहासन पर बीरबल, तथा दूसरी ओर कवीन्द्र केशवदास एवं प्रवीणराय।

केशवदास की आज्ञा से प्रवीण राय ने उठकर सम्राट अकबर को झुक कर आदाब बजाया और केशवदास ने प्रवीण राय के नृत्य तथा काव्यकला का अकबर को परिचय दिया। उपरान्त बीरबल ने दरबार के नियमानुसार प्रवीण राय के सम्मुख पूर्ति करने के लिए यह समस्या उपस्थित की। समस्या थी अकब्बर तेरे—जिसकी शीघ्र प्रवीण राय ने पूर्ति करके दरबार में सुना दी

> अंग अनंग तहीं कुच शंभु,
> मुकेहरि लंक गयंदहि घेरे।
> है कच राहु तहीं उदै इन्दु,
> सुकीर कि बिम्बन चोंच न फेरे।
> भौंह कमान तहीं मृग लोचन,
> खंजन क्यों न चुगै तिल नेरे।
> कोउ न काहु सों बैर करें,
> सु डरें डर शाह अकब्बर तेरे।

दरबार के सभी कर्ता कामदार एक स्वर से समस्या-पूर्ति सुनकर प्रशंसा करने लगे। उसकी प्रतिभा से आनंदित हो अकबर ने राय प्रवीण से कविता में दो प्रश्न किये। प्रवीण राय ने भी काव्य उक्ति द्वारा मधुर वाणी से प्रसन्न मुद्रा में उत्तर दिया।

> सम्राट—युवन चलत तिय देह की चटक चलत केहि हेत।
> प्रवीण राय—मन्मथ वारि मसाल को सौंति सिंहारे लेत।
> सम्राट्—ऊँचे ह्वै सुर बस किये सम है नर बस कीन्ह।
> प्रवीण राय—अब पाताल बस करनिकों ढरकि पयानो कीन्ह।

सम्राट अकबर राय प्रवीण की काव्य प्रतिभा को देखकर मुग्ध हो गया और अपने प्रश्नों के यथेष्ट उत्तर से अत्यन्त लज्जित। उसके नेत्र नत हो गये। इस भाव पर सवत्स के स्व० पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' ने एक बड़ा सुन्दर दोहा कहा है

> भय, गलानि, आलस अमल दुख, सुख हेतु अहेत।
> मन महीप के आचरण दृग दिमान कहि देत॥

प्रवीण राय ने सम्राट अकबर के उन लज्जित नयनों को परखा—क्या न

परखनी आखिर थी तो राय के आचार्य कवींद्र केशवदास की शिष्या । तुरन्त उसने अवसर देख सम्राट अकबर के दरबार में यह प्रश्न किया

विनती राय प्रवीण की सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी, बायस, स्वान ।
(राधाकृष्ण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड, पृष्ठ २१०)

प्रवीण राय ने इस प्रश्न द्वारा न केवल सम्राट अकबर की राजनीति पर प्रत्युत उसकी धर्म निष्ठा और धर्म निष्ठा पर भी एक साथ चोट की थी जिससे वह आश्चर्यचकित हो प्रवीण राय की प्रशंसा करते हुए केशवदास से कहने लगा कि मैं आपको और आपकी शिष्या दोनों को बधाई देता हूँ तथा बुन्देलखण्ड की भूमि का भी धन्य मानता हूँ कि जिसने इस प्रकार के रत्ना को प्रकट किया । इन शब्दों के साथ उसने राय प्रवीण को पुरस्कार में बहुमूल्य रत्नाभूषण देकर विदा किया ।

कवींद्र केशवदास और प्रवीण राय द्वारा इस प्रकार बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य की जो रक्षा हुई है उसके लिए बुन्देलखण्ड उनका आजीवन आभारी रहेगा । कवींद्र केशवदास की मृत्यु वि०सम्वत—१६७४ में हुई और प्रवीण राय की मृत्यु जनश्रुति के आधार पर वि० सम्वत १७०० में ।

## दीवान हरदौल

ओरछा राज्य बुन्देलखण्ड में आज भी अग्रणी माना जाता है । या समस्त मध्य प्रदेश में इस राज्य का चौथा नम्बर है । इन्दौर भोपाल और रीवा राज्य ही केवल उसके ऊपर माने जाते हैं । तथापि बुन्देलखण्ड की पुरातन राजधानी होने के कारण ओरछा का अपना महत्त्व है । यहां के महाराजा सूर्यवंशी वाराणसी के गहरवार राजकुलोद्भव हैं । इस पवित्र वंश में पंचम बुन्देला एक नामी राजा हुए हैं जिनका हाल भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है । उनका असली नाम हेमकर्ण था । उन्होंने श्री विन्ध्यवासिनी देवी के आशीर्वाद से पंचम विन्ध्येला के नाम से सन १०४८ (वैशाख शुक्ल १६ सम्वत ११ ८) में इस विशाल राज्य की नींव डाली थी । इस वंश के राजाओं की उपाधियां इस प्रकार हैं श्री सूर्य कुलावतंस काशीश्वर पंचम ग्रहनिवार विन्ध्येलखण्ड मंडलाधीश्वर श्री महाराजाधिराज श्री ओरछा नरेश । इतने प्राचीन और प्रसिद्ध राज्य भारतवर्ष भर में इने गिने ही थे । यहां के महाराजागण सदा से स्वच्छन्द होते चले आये हैं और

उन्होंने स्वाधीनता का सम्मान यहाँ तक किया कि उसके लिए अनेक बार उन्हें दिल्ली के बादशाहों तथा मराठों से घोर युद्ध करना पड़ा। इन घमासान युद्धों में कभी वे जीते और कभी हारे भी पर पराजय कभी स्वीकार नहीं की चाहे राज्य से कुछ अंश समय समय पर निकल क्यों न गये। इन्हीं वंश के महाराजा रुद्रप्रताप ने एक सिंह से गाय के प्राण बचाने में लड़कर अपने प्राण तक दे दिये पर सिंह को अपने खड्ग द्वारा मार कर गऊ को बचा लिया। महाराज भारतीचन्द की समस्त आयु युद्ध करते ही बीती। मधुकर शाह का हाल हिन्दी साहित्य के पाठकों से छिपा नहीं है। साहित्य मुकुट मणि कविवर केशवदास इन्हीं के आश्रय में रहते थे।

(गत राजा डा० श्याम बिहारी मिश्र, मधुकर पृष्ठ ४)

इसी परमोज्ज्वल वंश में महाराजा वीरसिंह जू देव (प्रथम) के यहाँ हरदौल का जन्म सम्वत् १६६५ वि० में हुआ था और मृत्यु सम्वत् १६८८ में।

(ओरछा इतिहास पृष्ठ ६)

इनके जन्मोत्सव पर ओरछा राज्य के तत्कालीन राज कवि स्व० राम मिश्र के छन्द प्रशंसनीय हैं। प्रथम छन्द में कवि ने जन्मोत्सव पर बधाई और मंगलमय उल्लास का वर्णन किया है और द्वितीय में ज्योतिष के अनुसार केन्द्र में यानी जन्मस्थान में बृहस्पति होने का वर्णन किया है।

जनम लियो है लला बीर धीर सिंगजू के,
मंगल मनोग्य नभ साज सजिवे लगे।
भजन बधाई लगीं राज महलों के माहि
भेरी नफा, तुरइ मधुर बजिवे लगे।
मिश्र कवि गावन गुणावली नकीब लग,
मोद मान ढाडी ढाड़ नृत्य करिबे लगे।
सोबरन कलस धरे हैं द्वार द्वारन प,
पंडित प्रवीन वेद मंत्र पढ़िबे लगे।

सुखद सुधाकर प्रभाकर प्रभाकर सो,
गुन गुन सागर उजागर सुहायो है।
मिश्र कवि तेज पुंज इन्द्रन उपेन्द्रन सो,
सत्य पथ माहिं सत्य पथ चित चायो है।
याको नाव लेत नर, रन हर देव हू हैं
ऐसो पूर्व कृत्य को प्रताप संग ल्यायो है।
केन्द्र माहिं याके गुरु गमक विराजो आन,
वीर वीरसिंग, बीर सिंग सुत जायो है।

इसी सन्दर्भ मे लेखक की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं

रवि अश्व स्वर्ण की राशि लिये,
बढ़ चले ओरछा ओर आज।
जग-मग, जग मग, हो उठे महल,
नव जीवन का सज गया साज।
गज गामिनि भामिनि पूर रहीं,
चुन मुक्ताओ के चारु चौक।
मानों वसुधा पर अम्बर से,
हो उतर पड़ा नक्षत्र लोक।

(ओरछा स्थान, पृ ठ ६)

हरदौल बड़े कुशाग्र बुद्धि थे इस कारण सत्तरह वर्ष की अवस्था म शिक्षा और शिकार खेलने मे दक्ष हो गए। कालान्तर म वीरसिंह देव न दिल्ली से बादशाह शाहजहा का निर्देश आने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह को एक उच्च पद पर नियुक्त कर दिया और हरदौल को ओरछा राज का दीवान बना दिया।

दीवान हरदौल प्रजाप्रिय के साथ-साथ धर्म पालक और कर्मनिष्ठ भी थे, जिसके कारण उनमे जुझारसिंह की रानी पार्वती पुत्रवत स्नेह करती थी और हरदौल भी भाभी को माता तुल्य सम्मान देते थे।

हरदौल राज्य का कार्य भार सम्हालने म निपुण तो थे ही शस्त्र चलाने मे भी वे पूर्ण कुशल थे। एक बार एकावन मे मृग का शिकार करते समय उनकी सरदारो से होड हो गई कि जो एक तीर म मृग को बेधकर धराशायी कर देगा वही विजयी माना जायगा।

हांका (भगाना) कराया गया मृगो का एक झुड चौकडी भरते हुए सामने दिखाई पडा। क्रमश सरदारो ने अपने अपने तीरो का सधान कर वार किया, किन्तु कोई मृग आहत नही हुआ और जसे ही हरदौल न तीर छोडा एक मृग धराशायी हो गया। यह देख सभी सरदार लज्जित हो गए व हरदौल के शौर्य से प्रभावित तो हुए, किन्तु मन ही मन कुठित रहने लगे।

हरदौल के सम्बन्ध म इस जनपद म एक घटना यह भी प्रचलित है कि दिल्ली का एक तलवारबाज जिसका नाम हैदरखा था ओरछा आया और उसने सातार सरिता के तट पर अपने तलवार चलाने के जौहर दिखाये, जिसम ओरछा के कई तलवार चलाने वाले पराजित हुए। यह समाचार जब दीवान हरदौल को विदित हुआ तब व अत्यन्त क्रोधित हो उससे मुकाबला करने को उद्यत हुए। व एक प्राचीन तलवार जो जुझारसिंह द्वारा रानी पार्वती के पास सुरक्षित रखी गई

थी लेने गए। भाभी ने यह करते हुए—"लाला जसी रूप जान हीं धनवे गोरत जद्यों' तलवार हरदौल को दे दी।

सागर तट पर हरदौल और हैदरखां की दो पग तलवारबाजी हुई, जिसमें हैदरखां पराजित हो गया किन्तु हरदौल को जांघ में एक गहरा घाव हो गया, जिसके कारण वे अपने महल में चले गये। वे उस तलवार को जो भाभी से लाये थे वापिस करना भूल गये।

रानी चम्पती को जब लाला हरदौल के घायल होने का समाचार ज्ञात हुआ तब उन्होंने अपने महल में बुलाकर उनके उपचार का समुचित प्रबन्ध किया जिसमें वे शीघ्र स्वस्थ हो गए। तलवार और पटेबाजी की प्रथा आज भी बुन्देलखण्ड में प्रचलित है।

वीरसिंह देव महाराज ने हरदौल के वीरोचित करतब देख वि० संवत् १६८४ में एरिछ और बड़ागाँव की जागीरें उन्हें दी। इस समय हरदौल तीस वर्ष की अवस्था में पदार्पण कर रहे थे।

हरदौल को जिस प्रकार अस्त्र शस्त्रों से प्रेम था, ठीक उसी प्रकार प्रकृति से भी। इसी कारण वे राजमहल में न रहकर राम राजा के मंदिर के समीप फूल बाग में निवास करने लगे थे। वे यहीं की बारादरी में बैठकर जनता की कि बवारी सुन उसका समाधान किया करते थे।

दीवान हरदौल के प्रति जनता की बढ़ती हुई अभिरुचि देख जुझारसिंह के मन में असंतोष ही नहीं, प्रत्युत राज्यलिप्सा के कारण द्वेष रूपी 'वासा' का पौधा पनपने लगा जो विनाश का द्योतक था। वि० सम्वत् १६८८ में अनायास वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई और जुझारसिंह ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए।

कालांतर में बुन्देलखण्ड की रानी की रुचि के समीप बेतवा के तीर पर शाहजहां की मालवा, कन्नौज और आगरा की फौजों से मुठभेड़ हुई। उसमें शाही सेना बुरी तरह पराजित हुई। फलस्वरूप पन्ना के वीर चम्पतराय और ओरछा के दीवान हरदौल शाहजहाँ के हृदय में बबूल के कांटों की तरह चुभने लगे। शाहजहां ने यह निश्चय किया कि इन दो वीरों को पराजित किए बिना बुन्देलखण्ड को अपने आधीन रखना असम्भव है। इसी दृष्टि से उसने हिदायत खां को जो प्रसिद्ध षड्यन्त्रकारी था, बुन्देलखण्ड में फूट का विषम जाल बुनने को भेजा। लेकिन बुन्देलों के संगठन के आगे वह असफल रहा।

वीर चम्पतराय और दीवान हरदौल ने कालान्तर में धामौनी के गोंड राजा को मिलाकर देवगढ़ पर धावा बोल दिया। दुर्धर्ष संग्राम हुआ। विजयश्री ने बुन्देलों का ही वरण किया जिसमें चौरागढ़ पर बुन्देलों का झंडा फहराने लगा।

शाहजहां ने अपनी इस पराजय से आग बबूला होकर औरंगजेब को यह

फरमान भेजा कि अपने पराक्रम से चम्पतराय और हरदौल को गिरफ्तार करके दरबार में हाजिर करो, तो तुम्हें दक्खिन के सूबेदार पद से विभूषित किया जायगा।

दीवान हरदौल को यह शाही फरमान ज्ञात हो गया और वे सजग हो ओरछा आकर सेना का संगठन करने लगे। चौरागढ़ की देखरेख और सुरक्षा का प्रबन्ध राजा जुझारसिंह करते रहे।

हिदायत खां को जब यह विदित हुआ तब उसको अपने कर्तव्य का पुनः ध्यान आया और वह उसे पूर्ण करने को आतुर हो उठा। उसने अपनी कपट रूपी तलवार को शीघ्र चापलूसी की महशान पर विचारपूर्वक चलाया और हरदौल को परास्त करने की दृष्टि से अपना कुटिल मंत्र फूंकने जुझारसिंह के समीप चौरागढ़ पहुंचा।

जुझारसिंह उसकी वाक्पटुता पर पहले से ही मुग्ध था। समय पाकर हिदायत खां ने कहा—'महाराज, दीवान साहब का राजमाता के पास महल में अकेला रहना जनता में भ्रम पैदा करता है।

हिदायत खां के गूढ़ वचन सुन कर जुझारसिंह का हृदय ग्रीष्म ऋतु में बेतवा की तप्त रेत की भाँति जलने लगा। उसमें चारें छटने लगीं। रानी और हरदौल की समता पर जनता का भ्रम है, हिदायत खां?"—राजा ने भृकुटी और तवरी चढ़ाते हुए बड़ी मशक्कित पर दबी वाणी से कहा। हिदायत खां ने अपना हार्दिक स्नेह भाव दिखा कपट की तेज तलवार चलाते हुए कहा—हां महाराज।

जुझारसिंह को रानी के प्रति अविश्वास हो गया। वे हरदौल को द्वेष दृष्टि से देखने लगे। जब यह समाचार हरदौल के विरोधी सरदार प्रतीत राय को विदित हुआ तब वे भी अवसर पाकर जुझारसिंह से मिले और बहुत सी मिथ्या बातें गढ़कर हरदौल के विरुद्ध राजनीतिक षड्यन्त्र रचने लगे।

दीवान हरदौल के करुणाजनक अंत के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट कर देना उचित है कि बुंदेली संस्कृति के रक्षा के निमित्त उन्होंने अपने उच्च चरित्र बल द्वारा हँसते हँसते विषपान कर जिस प्रकार प्राणों का उत्सर्ग कर दिया उससे इस जनपद का प्रत्येक कवि चाहे वह ब्रजभाषा का हो अथवा बुंदेली का, प्रभावित हुआ है क्योंकि इस संदर्भ में जो साहित्य प्राप्त हुआ है वह इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

चुगलखोर हिदायत खां द्वारा जुझारसिंह के हृदय में हरदौल के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न करने का इस छप्पय में बड़ा मार्मिक वर्णन है

कहीं नृपति में कहा ओरछे की गलियन की।
चर्चा फैली जहाँ लला के ही घतियन की।

कान दये नहिं जात क्या सुन-सुन रतियन की।
सिंह पौर लों देख अब सब खों आवत लाज है।
वीर सिंह के सुवन नें ऐसो सजो कुसाज है।

हिदायत खां के कुप्रभाव में आकर जुझारसिंह ने ओरछा के लिए प्रस्थान किया और महल में प्रवेश करके अपनी सुरक्षित तलवार प्राप्त करने का संकेत किया

सुनि हिदात के बन नृपति हिय में भयौ क्रोधित।
चल्यौ ओरछा नगर तुरत चढ़ि वेग वत अति।
पौंच्यौ महलन माहिं रानी पीड़न बढ़ारव।
बहुर विनय करि सीतल जल सो चरन पखारव।
हिये क्षोभ ऊपर वचन मधु जुझार बोलत भयव।
रानी अति आतुर सौं चन्द्रहास मम देओ तब।
बोलो रानी तब विनय प्रिय सेजुत बानी।
राजन तट सातार भओ तो खेल कृपानी।
दिल्ली को इक पटेबाज आयो गुन खानी।
तीसों हारे सबहू सूर, सरदार गुमानी।
सुनि लाला हरदौल तब चन्द्र हास मांगन भयव।
जीतौ तासौं ताय तब उनहीं नौ तरवार तब।

(कविवर स्व० सुजान। रामप्रसाद बुन्देला के सौजन्य से)

रानी चम्पावती की इस विनय से राजा जुझारसिंह को विश्वास नहीं हुआ और वे अपने पूर्व निश्चयानुसार रानी से हरदौल को विष देने का आग्रह करने लगे।

हरदौल विष दे द नारी।
पतिव्रता को जोई धरम है कर पती को क नारी।
हर प्रकार षट रस भोजन में घोर हलाहल ल नारी।

—(स्व. भगवानदास कृत हरदौल चरित्र पृष्ठ ४)

राजा जुझारसिंह के इन अप्रिय वचनों को सुन रानी की जो दशा हुई, उसका वर्णन तद्रूप अलंकार में कविवर बोधा ने इस प्रकार किया है

ग्रीष्म सो तन में लस अंसुवन मे बरसात।
रानी मधुरितु के सदृश पारो धरो लखात।
ग्रीष्म सी बानी सुनी पिय की,
तिय की गई सूखि क पान की बीरी।

कांत गई तन की कुम्हला,
अति हो गई इन्द्रिन की गति धोरी।
धीरज सोय गयो हिय सों,
गिरि भूमि परी अति हो गई सीरी।
देखति देखति—बोधा—जुझार के,
रानी बसंत सी ह्वै गई पीरी।

रानी की यह विह्वल अवस्था देख जुझारसिंह के हृदय मे और शंका पनप उठी, और वे कहने लगे

यदि साँचौ धर्म पतिव्रत है, तो तोय परीक्षा देनें है।
हरदौल लला को विष कै भोजन अपने हाथ जिमनें है।
सुनकें रानी र गई सन्न झकझोर झमासौ आन लगो।
धरती घूमत सी दिखन लगी नभ टूटत सो दरसान लगो।
कानन मे जसे सीसो पिघला कै भर दओ हो काऊ नें।
जरत अगारों आखन के ऊपर धर दओ हो काऊ नें।
हिरद मे उथल-पुथल मच गइ सारो सरीर झुरसान लगो।
पिंजरा मे जसे बंद सुआ बिन पवन के घबरान लगो।
आखन कों पुनरीं अधर टकों अँसुअन की हो गई जोत मंद।
ताल सें चिपकी जीभ और होंठन के तारे भये बंद।
सावन भादों सी लगी झरी अँसुअन सों आंचर गीलो भओ
कचनार-कली सौ रंग रानी को हरदी जसो पीरो भओ।

(श्रीन बिहारी त्रिपाठी लेखक, रा० भा० वि० पत्रिका पृष्ठ १६)

ऐसी अवस्था मे रानी धैर्य धारण कर और साहस बटोर राजा से विनती करने लगी

हाय दई कसी कहा होनी होत लखात।
कहा भ्रात नें भ्रात खों विष दय की बात।

धीर धरि बोली उठ पिय खों नवाय सीस,
जान कें अजान बन कुमति कमयौना।
सुमति सुजान गुन धान हौ बुंदेला वीर,
सूर सूय वंश खों कलंक लगवयौना।
'बोधा कवि' लाला हरदौल सो सलौनों भ्रात,
ताहि विष देबे की कुटेक अजमयौना।
चुगल चवायन के परिकें कुचक्र माहिं,
चंदन के धोकें कहूं मिरच चबयौना।

—(स्व० बोधा कवि)

इसी समसामयिक भाव पर लोक कवि स्व० दास की बुंदेली कल्पना का यह चमत्कार भी देखने योग्य है

> निरदोषी हरदौल लला खाँ विष भोजन करवाउत काय।
> पीतम पाप कमाउत काय।
> चुगल चबायन की बातन मे जान बूझ कें आउत काय।
> आज आपनई हाथन सों अपनी भुजा कटाउत काय।
> पुत्र समान लला हैं मेरे ताहि कलक लगाउत काय।
> सत्रु गव गारन कुल तारन बिना मौत मरवाउत काय।
> 'दास' कहैं पतिव्रता धरम कों जातरिया अजमाउत काय।
>
> — (हरदौल चरित्र पृष्ठ ४)

रानी पावती के समक्ष एक ओर पातिव्रत धर्म का प्रश्न था और दूसरी ओर वश मोह का। बडी विषम परिस्थिति का समय था। वह भगवान से प्रार्थना करने लगी

> एक ओर है पति की आज्ञा एक ओर देवर प्यारो।
> करो प्रभू अब निरवारो।
> पति की कही करों तो देवर बिना मौत जाव मारो।
> जो पति की आज्ञा ना पालों धरम बिगर जाव सारो।
> इत जाउ तौ कुआ उत पुखरी कों दल दल है मारो।
>
> (हरदौल चरित्र पृष्ठ ६)

रानी के इस अन्तर्द्वन्द्व युद्ध मे पातिव्रत धर्म विजयी हुआ और वश-मोह पराजित। उन्होंने अपने हृदय पर पति आज्ञा की वज्र शिला धारण कर विषमय भोजन तैयार किया। बुन्देलखण्ड के प्रमुख कवि आचार्य स्व० घनश्यामदास पाण्डेय ने लाटा अनुप्रास म अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इन शब्दों म किया है

> पति आज्ञा सिर पर धरी पतिव्रता थी नार।
> विष मय देवर के लिये भोजन किये तयार।
>
> कूट-कूट कालकूट कद औ कचौडियों मे,
> मालपुआ मोदक म माहुर मिलाया था।
> सागों और सक्कर मे सान दिया संखिया को,
> पूरी पय पापरों मे पन्नगी पिलाया था।
> विप्र 'घनश्याम' बालूशाहियों म बच्छनाग,
> हलुए म हरताल हल्दिया हिलाया था।

सेवों मे सिगिया अमतियों मे अहीफन,
गगाजल गडुये मे गरल गलाया था।
—( आग ण' २ -४ ६८ पृष्ठ

भोजन तयार होने पर भाभी स्वर हरदौल को बुलान क लिए दासी का भेजती है। हरदौल भावज का सन्देश सुनकर महल के लिए प्रस्थान करते है। तब अशकुन होन लगते हैं।

चलत भाग हरदौल के नाग काट गओ गल।
सामे सें नारी कडी धर कडन की हैल।
सिर प सें गागर गिरी घरघराय क बन।
छींक सामने ही भई जो होतइ दुख दन।
—(स्व० नोगल शायर)

अशकुन होने पर दीवान हरदौल ने मन मे कुछ सोच विचार किया क्योकि जिस भाभी को व मा-तुल्य समझते थे उसी ने भोजन के लिए स्नेहपवक बुलाया था। उन्होनें अपशकुनो की अवहेलना की और महल की ओर चल दिए।

इधर राजा जुझारसिंह अपनी विद्वेष भावना को फलीभूत होते दख उल्लसित थे। रानी अन्तर्द्वन्द्व म शोक सागर म डूबी जा रही थी। बुन्देली के कुशल गीतकार श्री भैयालाल व्यास न अपनी काव्य कल्पना द्वारा इसका चित्रण इस प्रकार किया है

बम-बडी-बम बजत नगारेते, उततो खुसयाली होरइती।
इत विष के भोजन थार सजा, रानी मनई मन रोरइती।
थारी विष के पक्वान भरी लख, अखियां डब डब डब रोवें।
मानों वरए परमाव वे असुआ निरमल जल सों धोवें।
रानी ठाडी सोच महलन दई! बुरी समओ अब आन परो।
राजा ने कठिन परिच्छा की, छाती प पथरा तान धरो।
है इत बावरो-कुआ उत विपता मे मैं पर गइ दया।
इत पती हुकम उत देवर की हत्या को दोष मरो मया।
देवर हू ऐसो उसो नई बाको सपूत बुन्देला है।
साचो सुदेस को सेवक है, सा गात धरम को हेला है।
री कुल देवी त बच बचा मों प पर गइ जा आफत है।
नारी की लाज बचावें खों नारी को तन मन कापत है।
हिरयो कपरओ है मेरो तो जो पाप कमाऊ में कसे!
जो नाई करों तो पतिव्रता को धरम गमाऊं में कसे!!
यो धरम सनो को धरम बडो जाखोंई होत रये जौहर।
जाके लानें मेरी कितनी माताएं मर गइ कसक कमर।

दाऊजू की सुपेत डाढ़ी म कारोंच गई मुनबहों मैं।
मर जहों प भैयाजू की नई बूँद म बाग लगहों मैं।
आग ओ छत्रानी गई छिन म बुन्देलखण्ड की जोग परो।
अग अग सों आपा फूट परो, मुख प रलामी सज भरो।
झट उठा लओ यो थार हाथ, चल चली अग प छम छम छम।
हरदौल की मूरत आंगन म आ गई, ठिठर गई छम-छम छम्।
वे लोट परीं धर दओ थार, धौंरा म धम सों बठ गई।
आंगन क मारग सों हिरद हरदौल की मूरत पठ गई।
मन म ये मथन लगीं करवे, जो कसो हुकम अजब धुन है!
निरदोषी की हत्या हू ४, दुनिया मन म का का गुन है!

(कवि भवानीदत्त व्यास)

दीवान हरदौल रानी चम्पावती के महल म प्रवेश करते हैं। परन्तु वहाँ की भयानकता को दृष्टिगत कर आश्चर्य म पड़ जाते हैं। भावज महल क अन्तःपुर स आती हैं, और देवर को सम्मान सहित ले जाकर भोजन गृह म प्रवेश करती हैं

महाराज लला आगये महलन दरम्यान।
राग रग जा ओन हते ता देखो अति सुन सान।
भइ खबर आइ भौजाइ लला ने झुक क सीस नवायो।
ग पाव परे जो भाव देख भौजी को जी भर आयो।
महाराज ले चलीं करक अत सम्मान।
चरन धोय चौकी बठारो आगे सुनो बखान।

—(स्व० जगाले शायर)

भावज जब देवर के सम्मुख विषमय भोजन का थाल परोस कर प्रस्तुत करती हैं तब उनका हृदय देवर क पवित्र प्रम स भर जाता है और उनके दृगो से अश्रुपात होने लगता है

विष भोजन को थार परस दओ, दोउ दृगन सो जल ढारो।
पूछत है हरदौल रुदन को कारन भौजी उच्चारो।
रानी कहत आज भोजन मे कूट कूट क विष डारो।
मोरे पती आपके भ्राता उनको पन पूरो पारो।

जब हरदौल अपने भाई की ही आज्ञा द्वारा विषमय भोजन का वृत्तान्त सुनते हैं तब वे अत्यन्त हर्षित हो बुन्देली आन-बान के साथ कहते हैं

अहो भाग्य धन धन्य भुजाई वचन न भया को टारो।
बड़े हर्ष की बात भ्रात को होय जगत में उजियारो।

धरक ध्यान भोग शकर को लगे लगाउन विषयारो ।
आओ प्रभु खाओ नइ खाओ, करने पर हैं निनवारो
—(लोक कवि स्व० दास)

दीवान हरदौल पचकौर (पच देवताओ का भोजन) तोड ज्यो ही ग्रास मुख म डालन लगे त्यो ही भावज उनके साथ भोजन करने के लिए विनय करने लगी

मैं विष भोजन करूँगी लला तुमारे सात ।
तात मरे माता जिये जो अन होनी बात ।
करम धरम जर जाय बो कर प्रेम सग घात ।
प्रेम रये तो सत रय सत मे ईस लखात ।
—(स्व० कवि दीन' भूपति सिंह के सौजन्य से )

दीवान हरदौल भावज के इस भावात्मक आग्रह स प्रभावित नही हुए । स्व० कविवर दीन ने अपनी काव्य कल्पना द्वारा भावी देवर के इस विषम प्रसग को अपनी प्रतिभा से अमर कर दिया है । बुदेली सस्कृति के इस प्रेरक प्रसग का तनिक अध्ययन कीजिए

श्री वृसिग बुदेल के वश मे पूरब—
पुन्य सो जाई घरी जो ।
भाग सौ 'दीन' मिलो विष हैं,
वडे भ्रात के प्रेमानुराग मे भोंजो ।
स्वग मे सग चले की कहै,
यह भूल क भौजी कलक न लीजो ।
कोटिन कष्ट पर जियरा प,
तऊ पति धम को नान न दीजो ।

गावन दीज नकीवन को जस,
कीर्ति खों आच न आवन दीज ।
नश्वर देहि को सोच कहा,
मरिक अमरत्व को पावन दीज ।
भ्रात जुझार जू फूल फल,
उनके जियरा खों जुडावा दीज ।
तब आपिन बेतवा धार वही,
तिहि मैं तरिक तर जावन दीज ।
—(स्व कवि र दीन भूपति सिंह के सौ- य )

इसी संदर्भ में कविवर नीरज जैन की यह सुबोधगम्य पंक्तियाँ भी पठनीय हैं—

स्वर्गीय स्नेह की पुण्य शीतल धारा सी,
भाभी ? तुम तो थी साक्षात वदेही।
तुमने महानता अपनी सदा निभाई,
मैं बन न सका देवर सौमित्र भले ही।
अपवाद आज मेरे हित हुआ तुम्हारा,
मेरे मन मे केवल संताप इसी का।
मैंने यह सब पहिले क्यों नहीं विचारा,
मेरे कारण तुम पर कलंक का टीका।
जीवन का तन डस चुके व्याल शंका के,
है मुझे उचित प्राणों की आहुति देना।
क्षण भर जीना श्रेयस्कर मुझे नहीं है,
बस मुझे उचित कालकूट पी लेना।

—(श्र० प्र राजा हरदौल, पृष्ठ २३)

पश्चात दीवान हरदौल ने हँसते हँसते विषमय भोजन ग्रहण किया। ज्यो ही उनकी देह विष गुण स प्रभावित हो शिथिल होने लगी तो अन्त पुर म कोला हल मच गया। क्षण भर म यह शोक-सम्वाद ओरछा राज्य म फल गया। स्नेही कर्त्ता कामदार और पशु पक्षी इस शोक म बिलख बिलख कर रुदन करने लगे। कितनो ने ही तो भावावेश मे अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। लोक कवि स्व० भगवानदास दास ने इस घटना का बडा ही मार्मिक वर्णन इस लोकगीत म किया है

घर घर मे हो गओ सोर लला हरदौल मरे विष खाक।
छायो सोक ओरछा भीतर मर गय सुनतन नौकर चाकर।
मरगओ भीतर जूठन खाकर। मरगओ स्वान, सिकारी
संग मे रय सब रुदन मचाक।

मरे संग के साथी बलवान तोता मना तज दय प्रान।
पिरना लगी हियँ बिलखान गज घोडा मर गये थान प।
गया मरों रमा क।

भावज सिर धुन धुन पछताव। नरपति जुझार हियँ दुख पाव।
बाहर आव भीतर जाव। अपनी करनी प पछताव।
जुन्याना सबर दरवाजें दइ है चिता लगा क।

लाला चिता सेज प सो गय। जग मे बीज सुजस को बो गय
मन को मल भ्रात को धो गय दास कहैं दइ पच
लकरिया उनवेई गुन गाक।

दीवान हरदौल की मृत्यु के पश्चात एक विलक्षण घटना घटी। उनकी बहिन कुजावति दतिया के निकटस्थ ग्राम मे विवाही थी। उनकी पुत्री का विवाह था। विवाह के अवसर पर बहिन भाई से भात माँगने जाती है।

राजा जुझार सिंह को दोष लग चुका था। हरदौल की मृत्यु हो चुकी थी। इस विषम परिस्थिति म कुजावति न भाइ हरदौल की जुग्याना दिक्त समाधि पर जाकर भात मागना उचित समझा और वे ओरछा जाकर हरदौल की समाधि के सम्मुख उपस्थित हो रुदन करती हुई भात मागने लगी। समाधि स गम्भीर स्वरा म स्नेह-पूर्ण भावा स युक्त एक आवाज गूजी। बहिन का पूर्ण विश्वास हो गया और वह जुहार कर अपन गृह वापिस लौट आई। मडप के दिन भ्रात हरदौल ने अत्र यत्र रूप से बहिन कुजावति को भात दिया। इस अमर क्षण को भी एक प्रसिद्ध लोकगीत म जीवित कर दिया गया है

महासोर भओ मरें हरदौल भात दओ। महासोर—
लाला की करनी कछु बरनी नईं जात।
मण्डप के नचे सामान ना समात।
दान दाय जो सुहात जडे गानें जवारात।
सब नओ नओ। महासोर भओ

—(हरदौल चरित्र, पृष्ठ ७)

दीवान हरदौल ने बुन्देलखण्ड की आन, बान और सस्कृति की रक्षा हेतु हसत हँसत अपने प्राणा का बलिदान किया। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक ग्राम और नगर म उनकी स्मृति म आज भी एक चबूतरा विद्यमान है। यही नही मद्रास और पजाब के बहुत से ग्रामों म हरदौल का चबूतरा विद्यमान हैं जिन पर नारी नर अपनी सकटकालीन अवस्था पर विजय पाने और विवाह-यज्ञ आदि म सफल होन की भावना म पुष्पाजलि अर्पित करते हैं।

महाराज बुंदेला नगर ओरछा स्थान।
जियत किये बहु पुन्य मरे प पुजे जगत मे आन।

# श्री पहाड़ सिंह बुंदेला

कहा है कि श्री वीर सिंह देव के आठ पुत्र थे। सम्पत्ति ओरछा राज्य के पक्ष में और आलोच्य ग्रन्थ में 'वीरसिंह देव चरित्र' में उनके बारह पुत्र होने का उल्लेख है—(१) जुझारसिंह (२) हरदौल (३) पहाड़सिंह (४) चन्द्रभान (५) माधोसिंह (६) भगवानराय (७) नरहरदास (८) बेनीदास।

ऐतिहासिक दृष्टि से जिस प्रकार वीरसिंह का जीवन बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा में सफल करने में व्यतीत हुआ है उसी प्रकार इनके सभी पुत्रों ने इस जन्मभूमि के गौरव के लिए समय-समय पर प्रतिद्वन्द्वियों से युद्ध करते हुए अपने प्राणों का बलिदान किया है। इनकी यशोकीर्ति आज भी यहाँ का प्रत्येक कण-कण गाता है।

यह आप पढ़ ही चुके हैं कि श्री वीर सिंह देव के द्वितीय पुत्र हरदौल ने हँसते हँसते विषपान करके यश के कीर्ति ध्वज को फहराया। इसी प्रकार श्री वीर सिंह के तृतीय पुत्र श्री पहाड़सिंह बुन्देला ने बुन्देलखण्ड की धर्मनिष्ठा की बेल को अपने शोणित से सींच कर हरित और पल्लवित किया।

जनश्रुति के अनुसार संवत १७०० वि० में जब पहाड़ सिंह बुन्देला ओरछा के अधिपति थे तब इनके दरबार में दया धर्म और करुणा सम्बन्धी प्रार्थनाओं को सर्वप्रथम प्रश्रय दिया जाता था।

एक बार की घटना है कि कविवर केशोराय ने गऊ रक्षा के निमित्त पहाड़ सिंह के दरबार में आकर गोंड़वाने की गायों की ओर से प्रार्थना की। वहाँ कृषि उत्पादन के कार्य में बैलों के स्थान पर गायों द्वारा कार्य लिया जाता था। यह प्रथा हमारे धर्म के प्रतिकूल थी। कविवर केशोराय ने पहाड़ सिंह से इस कवित्त द्वारा गायों की ओर से प्रार्थना की—

> परी हैं पिसाचन माहिं जुतती हैं आठों याम,<br>
> सुधहूँ न लेत पापी तृनन के खाने की।<br>
> काहू को कामधेनु करतीं विलाप रोय,<br>
> कपिला की जाति कहूँ भाग नहीं जाने की।<br>
> रोय करतीं हैं अरज उठ वीर भानुजू सू,<br>
> फौज चढ धाओ 'केशोराय' वीरवाने की।<br>
> वीरसिंह जू के कुवर प्रबल पहाड सिंह,<br>
> तेरी राय हेरतीं हैं गौएँ गौंडवाने की।

कवि ने पहाड सिंह बुन्देला को भानु नाम के प्रयोग द्वारा सम्बोधित किया है। यह प्रयोग उचित ही है क्योंकि इतिहासवेत्ताओं ने बुंदेला हमकरण का

उन्मद सूयवश से ही घोषित किया है। इन्ही हेमकरण ने 'विध्यावासिनी' की आराधना की थी, जिसके फलस्वरूप इस वश का नाम विध्येला और क्षेत्र का नाम विध्याचल खण्ड प्रचलित हुआ।

कवि केशोराय के निवेदन करते ही पहाड सिंह की भकुटी टेढी हो गई। ओष्ठ और भुजायें फडकने लगी। तुरन्त उनका दाहिना हाथ तलवार की मूठ पर गया, और वह साहसपूर्ण एव भावप्रवण वाणी से प्रतिज्ञा करके बोले – मैं अन्न जल अब जब ग्रहण करूँगा जब गाडवान को विजय कर वहा की गाया को मुक्त नही करा दूगा। उन्होने सेनापति को आदेश दिया कि चढाई के लिए सेना शीघ्र तयार करें।

मत्री बडे विचारशील व्यक्ति थे। उन्हें गाडवाने के वीरो और वहा के सुदृढ दुग का पूर्ण अनुभव था। उन्होंने विचार कर राजा पहाड सिंह से निवेदन किया कि 'महाराजा की आज्ञा सभी को शिरोधाय है, किन्तु जो आपने अन्न-जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की है उसमे मेरा यह अनुरोध है कि यहा एक गोबर का गाडवाना निर्माण किया जाय और महाराज उस पर विजय प्राप्त कर फिर सेना का विधिवत गठन करके गाडवान पर धावा बोलें। इस प्रकार महाराज और सनिको को सब प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो सकगी।"

मत्री का परामश मान कर पहाड सिंह न नगर के बाहर गोबर का एक गाडवाना प्रस्थापित करने का आदेश दिया। जिसका तुरन्त पालन किया गया। लेकिन जब उस गोबर निर्मित गाडवान पर पहाड सिंह ने धावा बोला, तभी आरछा सेना के एक गोंडवाने वीर न तलवार खीच कर रण म अपनी मातृ भूमि की रक्षा के लिए कूदने का दुस्साहस किया। उस वीर न दो घटे तक डट कर युद्ध किया जिसमे बुन्देली सनिको के छक्के छूट गये। यह देख कर पहाड सिंह को बडा आश्चय हुआ। अन्त म वह वीर पहाड सिंह द्वारा धराशायी हो वीर गति का प्राप्त हुआ।

गोबर का गाडवाना तो विजय हुआ किन्तु वह पहाड सिंह के साहस के सम्मुख एक सघष छोड गया। इस घटना से पहाड सिंह का अपने मन्त्री के प्रति बडी श्रद्धा हुई क्योंकि मन्त्री न पहाड सिंह के प्रतिज्ञा करन पर ही गोबर के गाडवाना पर विजय करने का सकेत किया था।

पहाड सिंह पुन मत्री को बुला कर गोण्डवाने को विजय करने पर विचार करने लगे। मत्री ने महाराज को गाडवाने दुग और व्यूह रचना क अनेक सुझाव दिये। इस योजना के अनुसार चढाई की गई और पहाड सिंह न अपने विपुल रण कौशल द्वारा गोडवाना-नरेश को परास्त कर विजयश्री प्राप्त की।

उसी काल क एक कवि द्वारा पहाड सिंह की विजय पर यह दोहा कहा गया।

सुनत बहादुर पहाड़ को भाग्यो गौंड़ नरेश ।
मुक्त भईं गउएं कहैं जय बुन्देल भूपेश ॥

पहाड़ सिंह ने गोंडवाने पर विजय कर वहाँ हल में गायों को जोतने की प्रथा को बन्द कर दिया। इसका वर्णन ब्रजभाषाचार्य सत्येन्द्र के इस कवित्त में हुआ है—

हार उपहार कीन्हों गोंडन पहार सिंह,
करिकें प्रहार जन्म भूमि मन लूट्यौ है।
'सियकेन्द्र' गौउन की करुन कहानी सुन,
उमड़्यौ दया को उर अम्बुधि अनूठ्यौ है।
करी बेग पारिवे में तेरी तेग आगिंसांधु,
कालिका-कृपान को बखान कयौ झूठ्यौ है।
बज्र बिझुरायौ, राम बान, निरबान रह्यौ,
चक्र चकरायौ है त्रिशूल शूल ऊठ्यौ है।

## वीर छत्रसाल

बुन्देलखण्ड के नरेशों में वीर छत्रसाल का स्थान अन्यतम है। बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य के इस प्रधान स्तम्भ का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल सम्वत १७०६ वि० में औरंगजेब की सेना से घिरी हुई महेवा ग्राम की मोर पहाड़ी पर बन्दूकों की सनसनाहट और तलवारों की खनखनाहट के मध्य हुआ था। इसकी पुष्टि में उसी काल के किसी अज्ञात कवि के सवैया की यह पंक्ति मिलती है

उत आन गर परी जागरे के इत फल उठी हिय मोर पहाड़ी।

वीर छत्रसाल बुन्देला के पिता वीर चम्पतराय बुन्देला को औरंगजेब ने बागी घोषित कर दिया था। औरंगजेब के आतंक से भयभीत होकर ओरछा दतिया और चन्देरी के राजाओं ने इनको सभी प्रकार से सहायता देना बन्द कर दिया था। किन्तु चम्पतराय बुन्देलखण्ड की संस्कृति और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपनी आन-बान पर अडिग और निर्भय रहने वाले वीर थे।

चम्पतराय जब महेवा की मोर पहाड़ी पर अपनी गर्भवती रानी को साथ लिए डेरा डाले पड़े थे तब शाहजहां की सेना ने महेवा ग्राम को चारों ओर से घेर लिया। चम्पतराय को चिन्तित हो गया और वह अपने विश्वासपात्र महाबली

नामक साथी को रानी की देख रेख का भार सौंप उस घेरे से कुशलतापूर्वक निकल गये। शाहजहां की सेना यह जान कर अवाक रह गई।

चम्पतराय के सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड में यह विलक्षण किंवदन्ती प्रचलित है कि उनमें एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर उड़ान भरने की प्रबल शक्ति विद्यमान थी। इसकी पुष्टि जनपद में प्रसिद्ध इस एक पंक्ति से मिलती है—

चम्पतराय सुवना भये उड़ उड़ लागे कान

यह उड़ान भरने की शक्ति चम्पतराय को एक योगीराज से प्राप्त हुई थी। एक समय चम्पतराय पन्ना छतरपुर के मध्य रोहरवन में भ्रमण कर रहे थे। उस समय उनको एक योगी के दर्शन हुए। इन्होंने प्यासी दृष्टि से योगी राज से जल पीने की जिज्ञासा प्रकट की। योगी ने शीघ्र ही समीप से एक जड़ी तोड़ी और उसका रस निकाल कमण्डल के जल में मिश्रित कर चम्पतराय के सम्मुख उपस्थित कर दिया। चम्पतराय ने इस भ्रम में कि यह कोई शाहजहाँ का गुप्तचर न हो जो हमें विष दे दे वह पानी पीना अस्वीकार कर दिया। योगी ने उस रस मिश्रित जल को उठा कर स्वयं पान कर लिया और पान करने के उपरान्त ही वह चम्पतराय के देखते-देखते उड़ कर अदृश्य हो गया। यह देख चम्पतराय आश्चर्य में पड़ गये और पश्चाताप करते हुये उस पात्र में से शेष बचे हुये रस को चाट गए उसके फलस्वरूप उनमें एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी तक उड़ान भरने की विलक्षण शक्ति आ गई।

शाहजहाँ की सेना जब असफल होकर महेवा ग्राम से चली गयी तब चम्पतराय मोर पहाड़ी पर आये। वहाँ उन्होंने महावली के संरक्षण में अपनी

---

आधुनिक युग में यह घटना कल्पना मात्र-सी ही प्रतीत होती है। किन्तु इस दृष्टि से सत्य हो भी सकता है कि इस भूभाग में आज भी अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ विद्यमान हैं जिनका अन्वेषण अभी होना है।

इसी प्रदेश में पंडवाहा जल प्रपात जहाँ पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास में कुछ काल तक घोर तपस्या की थी, शैलोत्पन्न के लिये विख्यात है। इस प्रपात के जल में लकड़ी को पाषाण के रूप में परिवर्तन कर देने की शक्ति विद्यमान है और इसकी शोध में भी यहाँ आपको अनेक भ्रमण करते हुये व्यक्ति मिलेंगे। जो व्यक्ति शैलोत्पन्न की शोध में भ्रमण करते मिलते हैं उनका यह दृष्टिकोण है कि यहाँ के प्रपात में कुछ स्रोत पत्थर भेदी और कुछ चर्म-भेदी हैं—और सर्व भेदी स्रोत की प्राप्ति तो अनेक व्यक्तियों को हुई है।

इससे यह सिद्ध होता है कि इस पंडवाहा जल प्रपात में जीवन शक्ति प्रदान करने के विशेष तत्व निहित हैं। जिनकी अभी तक मध्य प्रदेश सरकार द्वारा शोध नहीं की गई है।

इसी पंडवाहा जल प्रपात के समीप ही रोहरवन है जिस स्थान पर चम्पतराय को उस योगी के दर्शन प्राप्त हुए थे।

रानी और दो माम पूर जन्मे नव शिशु को अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा म देख कर हृदय म महाबली की प्रशसा की।

पुत्र का जन्म महाबली की छत्र छाया म हुआ था। इस कारण उन्होंने पुत्र का नाम छत्रसाल रखा जो आज भी बुन्देलखण्ड म छत्रसाल महाबली के नाम से विख्यात है। (आज भी इस प्रदेश म प्रत्येक व्यक्ति कोई शुभकार्य प्रारम्भ करते हुए छत्रसाल-महाबली नाम का स्मरण करता है।)

वीर चम्पतराय की मृत्यु बुन्देलखण्ड की संस्कृति और स्वतत्रता की रक्षा के लिए शाहजहाँ से निरन्तर युद्ध करते हुए वि० सवत् १७१८ म हुई। वह अपनी इस मातृ भूमि की गोद म चार पुत्रों (१ अगद २ रतन शाह ३ छत्रसाल और ४ गोपाल को) बुन्देलखण्ड की सेवा के लिए नि सहाय अवस्था म छोड गये।

वीर चम्पतराय की वीरता का वर्णन बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कवि गोरे लाल ने (जन्म सम्वत १७१४) अपनी पुस्तक 'छत्रप्रकाश' म इस प्रकार किया है

गनै कौन चपति की जीतैं
गनपति गनैं तऊ जुग बीतैं।
शाहजहाँ उमड्यो घन घोरा
चपति ससा पौन झकोरा।
शाहि कटक झकझोर भुलायौ
गिल्यौ बुंदेलखण्ड उगिलायौ।
धनि चपति फिरि भूमि बहोरी
सुजन पातसाही झकझोरी।
प्रल पयोद उमग मे ज्यौं गोकुल जदुराय।
त्यौं बूडत बुदेल कुल राख्यौ चपतिराय।

(बुंदेल वभव पृ० ३१३)

वीर चम्पतराय की मृत्यु के उपरान्त इनके बालकों को मुगल आतक के भय से बुन्देलखण्ड के किसी राजा ने आश्रय नहीं दिया किन्तु वीरों की कसौटी किसी की छाया म नहीं सकटों के पहाडो से सघर्ष करते हुए अपने शौर्य और पराक्रम द्वारा होती है।

वीर अगद और छत्रसाल ने भी इसी भाव से मिर्जा राजा जयसिंह की सेना म भर्ती होने का निश्चय किया और जाकर सेना म अपना नाम लिखा लिया। इस समय अगद १९ वष और छत्रसाल १६ वर्ष की अवस्था म पदार्पण कर रहे थे।

राजा जयसिंह इन दोनों वीर युवकों को देख अत्यन्त प्रसन्न हुए। होनहार बिरवान के होत चीकने पात। उन्होंने दोनों को सेना म उचित स्थान दिलाने का प्रबन्ध कर दिया।

इस समय राजा जयसिंह औरंगजेब की ओर से दक्षिण मे वीर शिवाजी के विरुद्ध चढाई कर रहे थे। यह बात वि० सम्वत १७२२ की है। राजा जयसिंह न वीर अगद और छत्रसाल को अपनी दृष्टि से पराक्रमी समझ पृथक पृथक रण वाहिनी सेनाओ का सेनापति बनाकर युद्ध के लिए भेज दिया।

वीर छत्रसाल ने इस सग्राम मे अपने रणकौशल का अपूव परिचय दिया जिससे प्रभावित हो राजा जयसिंह ने सम्राट औरंगजेब से छत्रसाल को सेना म उच्च पद से विभूषित करने की आज्ञा मांगी।

औरंगजेब के घाव जो शाहजहा के समय चम्पतराय द्वारा छाती म लगे थे अभी भरे नही थे। वह जानता था कि छत्रसाल उसी बागी का बेटा है जो कि मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध लडता रहा। पर था वह बडा कूटनीतिज्ञ। इस कारण उसने जयसिंह का समथन करके छत्रसाल को एक साधारण मनसब पद स विभूषित करने की अनुमति द दी।

राजा जयसिंह न तुरत वीर छत्रसाल को मनसब पद से विभूषित कर इनके रण-कौशल की प्रशसा करते हुए दरबार म हष प्रगट किया किन्तु छत्रसाल को इस मनसब पद से सतोष नही ग्लानि उत्पन्न हुई क्योकि उन्होने जो रण म पराक्रम दिखाया था उस दृष्टि स उनके लिए यह पद अनुकूल नही था।

छत्रसाल न इसके उपरान्त एक युद्ध और लडा जो कि दिलेरखा के सेनापतित्व म देवगढ म लडा जा रहा था। छत्रसाल ने उसम भी अपनी वीरता का साहसपूण पराक्रम दिखाया किन्तु फिर भी औरंगजेब न उनका उचित सम्मान नही किया। अब वे अपने पिता चम्पतराय जो बुन्देलखण्ड की संस्कृति और स्वतत्रता के लिए शाहजहा से जीवन भर लोहा लेते रहे उनका स्मरण कर अपने को मन म धिक्कारने लगे— अरे मैं तो वीर शिवाजी के विरुद्ध यह सग्राम लड रहा हू। वीर शिवाजी तो हिन्दू धम की रक्षा के लिए यह युद्ध लड रहे हैं।'

छत्रसाल न अपने मन की दुबलता को जीता और वह एक दिन शिकार का बहाना कर अपने भाई अगद सहित मुगल-सेना के खेमे से निकल भीम नदी को पार कर वीर शिवाजी स उनके शिविर म मिले।

छत्रपति शिवाजी को चम्पतराय के वीर पुत्र छत्रसाल और अगद की रण कुशलता के समाचार पहले ही प्राप्त हो चुके थ। इस कारण उन्होने छत्रसाल को हृदय से लगा कर अत्यत हष प्रगट किया और उनके शिविर म रहने का उचित प्रबन्ध कर दिया।

छत्रसाल ने शिवाजी के साथ रहकर श्रद्धापूवक गुरुभावपूर्ण व्यवहार किया। शिवाजी न भी प्रभावित हो छत्रसाल को युद्ध की अनेक व्यूह रचनाओ तथा शस्त्र प्रहार का प्रशिक्षण देना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय तक यही क्रम चलता रहा। बाद म एक दिन भावावेश मे छत्रपति शिवाजी न छत्रसाल को

प्रसन्न मुद्रा म गुरु मत्र दिया। कविवर गोरे लाल न इस का वणन करते हुए लिखा है

जो इतही हम तुमसों राय। तो सब सुजस हमारो भाय।
तातें जाइ मुगलदल मारो। सुनिये श्रवननि सुजस तिहारो।

वि० सम्वत १७२८ म छत्रसाल छत्रपति शिवाजी की आज्ञा का प्रतिपालन करके बुन्देलखण्ड को मुगल सत्ता स स्वतन्त्र कराने की भावना स चले आये और उन्होंने अपना सुदृढ संगठन करके औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

जब औरंगजेब को छत्रसाल का यह समाचार ज्ञात हुआ तब उसने तुरंत अपने सेनानायक को बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई करने की आज्ञा द दी। बुन्देलखण्ड की सुन्दर पहाडियों के मध्य संग्राम छिड गया। छत्रसाल न शत्रुओं की सेना पर अपनी तलवार द्वारा जो प्रबल प्रहार करके जौहर दिखाया उसे स्व० कवीन्द्र श्री नाथूराम माहौर न उपमा उपमेय द्वारा इस प्रकार लिपिबद्ध किया है

म्यान से उडान भर रन दरम्यान आन
दीप्तिवान बरनि के कठन कडी फिर।
अडी फिर अचल विशाल भाल भालन प
काल सी सबल जोति जाल उमडी फिर।
'नाथूराम' छत्रसाल कीर्ति करवाल कृत
बीरता बडाई महि मण्डल मडी फिर।
जडी फिर रत्न सम रत्नगर्भा के अक
अजहूँ अशक शेष शीसन चढी फिर।

सज्जित अरुण वस्त्र रत्न भूषणों से अग
अग की दमन दिव्य हीरक समान थी।
सुभग स्वभाव हाव भाव की प्रभाव भरी
विदित जहान बीच महिमा महान थी।
'नाथूराम' विद्युति सी नाचती रणागण मे
खन खन शब्द के सुनाती गान तान थी।
दल मुगलों के प्राण धन हरन के लिए
गणिका समान छत्रसाल की कृपान थी।

इस के अतिरिक्त महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि श्री निवाज (वि० सम्वत १७३६ स १७ ० वि०) न छत्रसाल की वीरता को इस भावोत्पादक कवित्त म अमर कर दिया है

डाढी की रखयन की दाढी सी रहति छाती
बाढी मरजाद अब हद्द हिंदुआने की।

मिटि गयो रयति क मन को कसक अरु
कढि गयो ठसक तमाम तुरकाने की।
भनत निवाज दिल्ली पति दल धक धक
हाक सुनि राजा छत्रसाल मरदाने की।
मोटी भयो चण्डी बिन चोटी के तिरन खाय
खोटी भयी सम्पत्ति चरत्ता के घराने की।

और इसी आतंक पर बुन्देलखण्ड के कविवर स्व० गौरेलाल तिवारी लाल ने भी अपने छत्रप्रकाश' में यह भावपूर्ण दोहा लिखा

चौंकि चौंकि सब दिसि उठ सूबर खान खुमान।
अब धौ धाव कौन प छत्रसाल बलवान।

छत्रसाल के पौरुष और पराक्रम से मुगल-सत्ता भयभीत होने लगी थी। उनका पराक्रम रूपी सूर्य चारों ओर देदीप्यमान होने लगा था। इस समय पन्ना में एक प्रेरक घटना घटी। इससे छत्रसाल के उत्कृष्ट चरित्र-बल पर प्रकाश पड़ता है।

मनीषियों का मत है कि वीरता रूपी किरणों का उदय सदैव चरित्र रूपी प्राची से ही होता है। छत्रसाल के वीरतापूर्ण रण कौशल से प्रभावित हो एक युवती ने अपने को समर्पित करते हुए छत्रसाल से यह प्रार्थना की कि मैं आपके द्वारा आप जैसे ही वीरपुत्र की इच्छा प्रकट करती हूँ।

इस बात पर छत्रसाल ने क्षणिक विचार किया। फिर वह उस युवती के चरणों में अपना मस्तक झुकाते हुए बोले—

'बाई मैं होतो तोरो लरका छत्ता''।

युवती का हृदय छत्रसाल के इन वचनों को सुनकर द्रवीभूत हो गया। उसमें वात्सल्य के सभी भाव जागृत हो उठे और उसके नेत्र नत्रों से लज्जा और संकोच भरे पवित्र स्नेह बिन्दु झलक उठे।

छत्रसाल ने उस युवती को मातृ सम्मान देते हुए रहने के लिए एक हवेली और पोषण के लिए एक तहसील की आमदनी दे दी। यह हवेली आज भी पन्ना राज्य में विद्यमान है जो बउआजू की हवेली के नाम से विख्यात है। यही हवेली आज भी उनके यश को उज्ज्वल करती है।

छत्रसाल के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण घटना इसी काल में और घटी थी। यह भारतीय संस्कृति और उसके प्रति श्रद्धा का अपूर्व आदर्श उपस्थित करती है। शिवाजी के पौत्र साहूजी वीर कवि भूषण के काव्य से प्रभावित थे जिसमें उन्होंने लाखों रुपया पुरस्कार में भूषण को भेंट किया था।

कवि भूषण जब विंध्याचल की यात्रा को निकले तब यह समाचार छत्रसाल

को ज्ञात हुआ। उन्होंने शीघ्र मन्त्री को आदेश दिया कि जब कविवर भूषण हमारी राज्य सीमा पर आयें तब मुझे तुरन्त सूचित करें।

मन्त्री ने उनके आने पर तुरन्त हल्कारा भेजकर महाराज छत्रसाल को सूचित कर दिया। समाचार प्राप्त होते ही छत्रसाल ने भूषण के स्वागत के लिए प्रस्थान किया और जैसे ही उन्होंने भूषण को पालकी में जाते देखा, तुरन्त अपना कन्धा उनकी पालकी में लगा दिया।

छत्रसाल के कन्धा लगाने पर पालकी ऊँचीनीची चलने लगी इसके कारण भूषण ने झाँक कर देखा और महाराज छत्रसाल को देख पालकी से उतर कर अपने हृदय से लगाते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो
गाजत गयन्द दिग्गज हिय साल कौं
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल कौं।
साजि सजि गज तुरी पैदरी कतार दीन्हे,
'भूषण' भनत ऐसे दीन प्रतिपाल कौं।
और राव राजा एक मन मे न ल्याऊँ अब --
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल कौं।

छत्रसाल का बल पराक्रम और वैभव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। बुंदेल भूमि अपनी गोद में वीर पुत्र को ले फूली नहीं समा रही थी। बुंदेलखण्ड में चारों ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य था।

छत्रसाल के यश सूर्य ने मुगल सत्ता को निष्प्रभ कर दिया। बुंदेलखण्डियों का प्रताप चारों ओर सूर्य की भांति देदीप्यमान हो रहा था। स्वर्गीय कवि स्व० मासीराम व्यास ने अपनी यशस्वी वाणी में इस घनाक्षरी द्वारा इस कीर्ति को लिपिबद्ध किया

खण्ड खण्ड हुआ मान दड़ियों पगड़ियों का
छुटा क्षिप्र मोह क्षुद्र छल छड़ियों का।
'व्यास' कहैं मुगल उदंड बरबड़ियों ने
तेरे त्रास किया बेग दूर दड़ियों का है।
धीर छत्रसाल तेरे भुजदंडों का
दख दिल हौंसिला घटा घमंडियों का है।
प्रबल प्रताप मारतण्ड सा अखण्ड तेज
तपत ब्रह्माण्ड में बुंदेल खड़ियों का है।

महाराज छत्रसाल ने अपनी तलवार के बल से बुन्देलखण्ड की भूमि के जितने क्षेत्रफल में अपना आधिपत्य स्थापित किया उसका वर्णन उसी

एक अज्ञात कवि ने इस दोहे में किया है

इत चम्बल उत नमदा इत जमुना उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की रही न काहू हौंस।

इतिहासवेत्ताओं ने महाराज छत्रसाल के तरह रानियों और बावन पुत्रों का होना सिद्ध किया है। चालीस पुत्रों को युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई। शेष बारह पुत्रों को वि० सम्वत १७७८ में छत्रसाल ने अपनी राज्य सीमा का भार पृथक पृथक् रूप मे इस दृष्टि से सौंप दिया था कि राज्य की व्यवस्था ठीक रूप से चल सके किन्तु फल विपरीत हुआ। अधिकार प्राप्त कर सभी पुत्र कर्तव्य त्याग कर विलासितापूर्ण जीवन बिताने लगे जिसके कारण बुन्देलखण्ड में प्रशासन व्यवस्था ढीली पड गई।

छत्रसाल की वृद्धावस्था देख इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मदखां बंगस ने बुन्देलखण्ड पर अपना धावा बोल दिया। वृद्ध राजा छत्रसाल ने डट कर मोर्चा लिया किन्तु सैनिक शक्ति कम होने पर छत्रसाल को मुहम्मदखां बंगस ने जतपुर के दुर्ग मे बन्दी कर लिया। डा० भगवानदास गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ में यह ऐतिहासिक वर्णन इस प्रकार किया है

मुहम्मदखां बंगस ने १७२६ ई० के अपने बुन्देलखण्ड के अभियान में विफल होकर जनवरी, १७२७ ई० में दोबारा प्रचण्ड आक्रमण किया। लगभग दो वर्ष के अनन्तर उसने दिसम्बर १७२८ ई० में ८० वर्ष के वृद्ध छत्रसाल को जतपुर के किले में घेर कर आत्म समर्पण करने को बाध्य कर दिया।

वह छत्रसाल को बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाना चाहता था किन्तु सम्राट् मुहम्मदशाह (१७१९ ४८ ई०) से तुरन्त ही कोई सन्देश न मिलने के कारण उसने छत्रसाल को उनके पुत्रों सहित अपनी निगरानी में रखा।

छत्रसाल ने इसी बीच में मराठों से सबन्ध स्थापित कर लिया। इस समय पेशवा बाजीराव प्रथम के अनुज चिमनाजी अप्पा ने मालवा के सूबेदार गिरिधर बहादुर को अमझरा के युद्ध (२९ नवम्बर १७२८) में पराजित कर उसके प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। पेशवा स्वयं देवगढ के राजा के विरुद्ध अभियान में व्यस्त था। पेशवा को छत्रसाल के विपदग्रस्त होने का समाचार मिल चुका था। उसने देवगढ का अभियान तुरन्त समाप्त कर बुन्देलखण्ड की ओर कूच करने का निश्चय किया। अपने २७ दिसम्बर १७२८ के एक पत्र में अपने इरादे सूचित करते हुए पेशवा ने चिमनाजी को लिखा —

'पुढे बुंदेलखंडा कडे जावा देवगढा वरून जावे असा विचार आहे तिकडे आल्यावरी तुम्हास लिहून पाठ उन। आगे बुन्देलखण्ड को जाता देवगढ होकर जाऊं ऐसा विचार है। वहां आने पर तुम्हें लिख भेजूंगा'।

एक सप्ताह पश्चात् बाजीराव ने चिमनाजी को एक और पत्र में लिखा

देवगढा चा तहरह जाहालियावरी आम्हो बुंदेलखण्ड प्राते सत्वरीच येत आहो आम्हा कडे मातबर काम पडले तारी लिहून पाठउन ते क्षणी येण (देवगढ की संधि हो जाने पर हम बुन्देलखण्ड शीघ्र ही आते हैं हम आवश्यक काम पड़ा तो लिख भेजें उसी क्षण आना।)

जनवरी १७२९ के अन्त में देवगढ के राजा से बाजीराव की संधि हो गई और उसने मण्डला और गढ़ा (जबलपुर) के प्रदेश से होकर बुन्देलखण्ड की ओर प्रस्थान कर दिया।

इधर छत्रसाल ने पूर्ण रूप मुगलसत्ता की अधीनता स्वीकार कर लेने का ढोंग कर बंगश को इतना आश्वस्त कर दिया कि उसने छत्रसाल को अपने पुत्रों सहित सहानियाँ जाकर होली का उत्सव मनाने की अनुमति दे दी। मुगल निगरानी से मुक्ति पाकर छत्रसाल ने अब तुरन्त ही पेशवा बाजीराव को शीघ्रातिशीघ्र बुन्देलखण्ड आने का आग्रह किया। कहा जाता है कि बाजीराव को उन्होंने सो दोहा का एक अत्यन्त मार्मिक पत्र लिख भेजा। इस पत्र के अंतिम दोहे से बुन्देलखण्ड का जन-साधारण परिचित है।

जो गति ग्राह गजेन्द्र की सो गति भई है आय।
बाजी जात बुंदेल की राखौ बाजी राय॥

फरवरी १७२९ ई० के अन्त में बाजीराव को यह पत्र मिला और वह बहुत ही तेजी से बुन्देलखण्ड की ओर बढ चला। जबलपुर के समीप खजूरी से ८ मार्च को उसने कूच किया और पवई विक्रमपुर राजगढ बसारी आदि होता हुआ १५० मील से भी अधिक की दूरी तय करके १२ मार्च को २५००० घुडसवारों सहित महावा आ पहुँचा। छत्रसाल ने पुत्रों सहित यहां पेशवा की अभ्यर्थना की और अब मराठों और बुन्देलों की संयुक्त सेना ने मुहम्मदखाँ बंगस को जैतपुर के किले में घेर लिया। बंगस ने जमकर लोहा लिया किन्तु शाही सहायता के अभाव में वह कब तक टिक सकता था। अन्त में उसे संधि करनी पडी और बुन्देलखण्ड पर कभी दोबारा आक्रमण न करने का वचन देकर ही वह जैतपुर के किले से सुरक्षित जा सका।'

मुहम्मदखाँ बंगस को इस पराजय से बडा धक्का लगा। लज्जावश वह तीन दिन तक दरबार में न जाकर हम्मामखाने में छिपा रहा। जब उसकी बेगम को यह विदित हुआ तब उसने बंगस को उलाहना दिया स्व० घनश्यामदास पाण्डेय ने इस घटना को यों चित्रित किया है

हार कर आये जब बंगश नवाब गृह
उन्हें हम्माम खाने में ये बेगम बताती हैं।
नाहक लडे थे पिया आप उस बुन्देले से
बदनामी हुई है न मुझ से सही जाती है।

विप्र घनश्याम मैंने ज ना था जईफ उसे
बन सुन बेगम यों बचन सुनातीं है।
जानते न हीं हो मिया मारू बम बाजते हीं
बूढे छत्रसाल प जवानी दौड आती है।
—(जाग ए २१४ १९५७ पृष्ठ ४)

छत्रसाल की यह विजय यद्यपि पेशवा बाजीराव के सहयोग से हुई थी किन्तु बु देलखण्ड की सस्कृति और स्वतन्त्रता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूण थी।
यह समाचार दिल्ली सम्राट को ज्ञात हुआ तब उन्होंने वि० सम्वत १७८२ म छत्रसाल को एक पत्र लिखा और उसम यह पूछा कि तुमको युवावस्था से निरन्तर बद्धावस्था तक युद्ध म विजय मिली इसका क्या कारण है ?

छत्रसाल ने शीघ्र विनम्र शब्दो मे बु दलखण्ड की आन बान और धार्मिक तथा सास्कृतिक भावना से दिल्ली सम्राट को पच्चीस कवित्तो म उत्तर देते हुए एक पत्र लिख भेजा। यह पत्र पन्ना राज्य म सुरक्षित है। हम इसका एक छद, जो बु दलखण्ड के सहस्रो जना को आज भी कठस्थ है, उद्धत करते हैं

सुदामा तन हेरो तब रक हू सौं राव कीनों
विदुर तन हेरो तब राजा कियो चरे स।
कूबरी तन हैरो तब सु दर सरूप दियौ
द्रोपदी तन हैरो तब चीर बडो टरे स।
भनत 'छत्रसाल' प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी
हिरनाकुश मारो नेक नजर हू के फेरे स।
ऐसे अभिमानी गुरु ज्ञानी भयें कहा होत
नामी नर होत गरुड गामी के हेरे स।

कठिन समय में बाजीराव पेशवा ने महाराज छत्रसाल की जो सहायता की थी उससे कृतज्ञ होकर छत्रसाल ने बाजीराव को अपना ततीय पुत्र मान लिया था। इसी मान्यता के आधार पर छत्रसाल के राज्य का ततीयाश मराठा को मिला। तब से ही बु देलखण्ड म विभिन्न स्थानों पर मराठो का शासन फलता गया।

छत्रसाल न आजीवन बु देलखण्ड की सस्कृति की रक्षा अपनी तलवार से और अपनी प्रिय वाणी से साहित्य की रक्षा की। यह पौष कृष्ण ३ वि० सम्वत १७८८ म मो क्ष को प्राप्त हुए। बु दलखण्ड सदैव उनकी कीर्ति के गीत गाता रहेगा।

# वीरांगना महारानी विजय कुँवरि

बुन्देला महाराज छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् बुन्देलखण्ड भूमि को वीर विहीन समझ नवाब बंगश ने अपनी संधि को तोड़ बुन्देलखण्ड पर पुनः चढ़ाई की। उसने जैतपुर (हमीरपुर जिला) पर अपना पड़ाव डाल कर युद्ध का बिगुल बजा दिया।

महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज ने जो अभी युवावस्था में पदार्पण कर रहे थे, जब रण का बिगुल सुना तब उनके हृदय में मातृभूमि रक्षा का भाव जागृत हो उठा और वह शीघ्र अपनी लघु सेना को साथ में ले युद्ध भूमि के मोर्चे पर पहुँचे। घमासान युद्ध हुआ, किन्तु वह घायल हो गये। यह सूचना जब उनकी रानी विजय कुँवरि को मिली तब वह घोड़े पर चढ़ युद्ध भूमि में पहुँची और अपने रण-कौशल द्वारा नवाब बंगश को परास्त कर अपने घायल पति जगतराज को साथ लेकर विजय श्री प्राप्त कर महल में लौट आई।

रानी विजय कुँवरि ने रण भूमि में अपना जो रण कौशल दिखाकर विजय प्राप्त की उसका वर्णन ब्रजभाषाचार्य सर्वेन्द्र ने इस प्रकार किया है

दौरि गई दामिनी-सी, आँगन में ताही समै,
घायल सुन्यो है नाह बारा सी उमर मे।
बानों मरदानों साजि आज नर सिंहनी नें
कठिन कृपानी कसी केहर कमर मे।
बाहिनी नसाहिनी विमद गद बंगस की,
नाम करयो धाम धाम नर मे अमर में।
काम कामिनी सी, गज गामिनी अरामिनी सी,
गाज-सी गरज धसी सामने समर मे।

देखि विष बूँदी कर कालिका करालिका सी,
बैरिन के वृन्द विष घूँट घूँटबे लगे।
आज गज गामिनी विराजि गजराज चली,
दिग्गज चिंघारे म्लेच्छ मुंड फूटबे लगे।
चन्द्र मुख भानु सौ प्रचण्ड भयो दीप्त मान,
बंगस के भाग्य के सितारे टूटबे लगे।
रानी जगतेस की रिसानी रन-चण्डिका सी,
पानी दार दृगन अंगारे छूटिबे लगे।

प्रबल प्रचंडिका प्रतापी जगदेस रानी,
देश भक्ति मंडिका सुचंडिका सी धाई है।
खंडिका खबीस वर बंडिका उदंडिन की,
मुंडिका अरी की हंडिका सी चटकाई है।
सुत्थन बहत्थन की फारि के पहार घसी,
ढूंढि पति साची सूर सगनी कहाई है।
छत्री त्रिय, छिति पै छनिक मे सवित्री भई,
हाल काल गाल सो पिया कौं खेंचि ल्याई है।

सम्हरि समर सौं लियाई पिय पार दीन्हौं,
परम पुनीति पद पदम सेइवे लगी।
बूडयो युद्ध अब्धितें उवारयौ निज नेह नाह,
प्रेम पूरि जीवन की नाव खइवे—लगी।
सेवकेन्द्र लेखि लेखि आपुनों सुफल जन्म,
जगती मे अमर सुकीर्ति लेइवे लगी।
पानी रख्यो चचल, दृगचल मे पानी रख्यो,
अचल को पौन प्रान पौन देइवे—लगी।

झारयौ, मन मौहमद खान को कृपान झारि,
जागी नन ज्वाल प्रल काल चन्द्र चूर की।
'सेवकेन्द्र लेखि लेखि आपुनो सुफल जन्म,
देश की दरिद्रताई दीनताई दूर—की।
नूर भयो चूर चूर, शत्रु मगरूर भयो,
भारत की भव्य भावना हू भरपूर की।
भाज लगे होय के पराज वीर वगस के,
गूंजो आसमान जति जति, जतपूर की।

## बुन्देलखण्ड के बलिदानी कवि

बुन्देलखण्ड के राजा परम्परा से ही साहित्य मगन हुआ करते थे। इस कारण वह कवियों को अपने दरबार में राज कवि की पदवियों से विभूषित कर आश्रय दिया करते थे।

पन्ना नरेश महाराज अमानसिंह के दरबार में चार कवि 'राज कवि' पद से विभूषित थे। ये थे - राम कवि, नाथ कवि, बोधा कवि और मल्ल कवि।

कालान्तर में महाराज अमानसिंह के लघुभ्राता हिंदूपति ने राज्य लिप्सा के कारण षडयन्त्र रचकर अपने श्रेष्ठ भ्राता अमानसिंह को मरवा दिया, और पन्ना की राजगद्दी पर अपना अधिकार कर लिया।

जब प्रजा को यह ज्ञात हुआ कि प्रजावत्सल राजा अमानसिंह का मरण षडयन्त्र द्वारा हुआ है तो विद्रोह की आग भड़क उठी। परन्तु हिंदूपति के दमन और आतंक ने उसे तत्काल दबा दिया। जब नया राजा गद्दी पर बैठता है तब विशेष दरबार होता है और उसमें प्रथानुसार राजकवियों को सिंहासनारूढ़ राजा की प्रशस्ति में काव्य पाठ करना होता है। महाराजा अमानसिंह के चारों राज कवियों का स्वाभिमानी अन्तर्मन इस बात के लिए तैयार न हुआ कि वे भ्राता घाती पापी हिंदूपति की प्रशस्ति में छन्द लिखकर कवित्व को कलंकित करें। निदान चारों ने निश्चय कर लिया कि हम दरबार में गोलोकवासी राजा अमान की ही प्रशस्ति गायेंगे और हिंदूपति के पाप को धिक्कारेंगे। परिणाम स्वरूप हिंदूपति का प्रकोप सहन कर कवियों का बन्दी होना सुनिश्चित था। फिर भी कवियों ने इस प्रण को प्राणों की गांठ में बांध लिया—कि अन्याय का समर्थन करने से अच्छा मर जाना श्रेयस्कर है।

राजा हिंदूपति का दरबार लगा। राज कवि उपस्थित हुए और प्रथानुसार उन्होंने अपना छन्द पढ़ा। हिंदूपति अपनी निन्दा सुन क्रोधित हो उठे और उन्होंने आदेश दिया कि चारों राज कवियों को बन्दी करके बन्दी गृह में डाल दो। किंतु राज कवियों ने बन्दी होने से पूर्व ही अपने हाथों दरबार में ही आत्मघात करके अनाचार के प्रति विद्रोह प्रगटकर साहस और शौर्य का परिचय दिया।

राज कवियों के इस बलिदान से राजा हिंदूपति का सिर सभा के बीच लज्जा से झुक गया और राज कवियों का भाल बुंदेलखण्ड की पावन संस्कृति और राजभक्ति की रक्षानिमित्त बलिदान करने से सदा के लिए उन्नत हो गया। इन चारों वीर कवियों के चारों कवित्त इस प्रकार है—

> बाजत नगारे अनियारे ये बुंदेलन के,
> आरती उतार रंभा रम्भा गीत गावती।
> नित दौर आसन गुविन्द गरुड़ासन को,
> धाय बकुण्ठ सुन यश को अघावती।
> दादर दिगन्त बुम मड़ सभा सिर जू की,
> जाचक निहाल किहें काटन की धावती।

'राम कवि' कहे कछु इन्द्र के 'कुताई भई',
तातें दन गयी है अमानो अमरावती ।
—(स्व० राम कवि)

सूरन को सत खोयो गत खोयो बरिन को,
कुल को मयक खोयो खोई मेड दान की ।
हिन्द को जहाज बोरो कामना को करतोरी,
राजन को खम फारो आसा थी जहान की ।
ऐसो लघुमत मारो स्यन्दन को सग मारो,
दानुन को साल टारो मेटी बाड बान की ।
कहें 'कविनाथ' तें अनाथ भयो 'हिन्दूपति
मारिके 'अमान' सान खोई हिन्दु आन की ।
—(स्व० नाथ कवि)

कौनें कामधनु क करो है रे करारो घाव
कौनें कल्पद्रुम को समूल तोर डारो रे ।
कौनें यह मटो सब शोभा है दुखारिन की,
को है पूण पापी पुन्य पुरवा उजारो रे ।
'बोधा' कहे कौने धौं सुधा को घट फोर दीनौं,
रम्भा को अरम्भक असोक वन जारो रे ।
कौनें तुम्ह मारो महाराज श्री अमान सिंह,
भिक्षुक क घर दुरभिक्ष कौन पारो रे ।
—(स्व० बोधा कवि)

आज महा दीनन को सूखिगो दया को सिन्धु,
आज ही गरीबन को गाथ सब लूटिगो ।
आज दुराजन को सकल अकाज भयो,
आज महाराजन को धीरज सो छूटिगो ।
'मल्ल' कहें आज मब मगन अनाथ भये,
आज ही अनायन को कम सब फूटिगो ।
पन्ना को 'अमान' सुरलोक को गुपाल भयो,
आज कवि जनन को कल्पतरु टूटिगो ।
—(स्व० मल्ल कवि)

इन प्रकार इन चारो राजकवियो ने अपनी अपनी कविता तथा महाराज अमानसिंह के प्रति राजभक्ति दिखाकर बुन्देलखण्ड की सस्कृति और साहित्य की रक्षा की ।

# वीरांगना मानवती का बलिदान

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भूमि ने जब-जब अपनी उर्वर शक्ति द्वारा जिसको जिस रूप में जन्म दिया, तब-तब पुरुष ने अपने अहंदल द्वारा उसको अनेक कुप्रयत्नों से आधीन करने की चेष्टा की है। भले ही चाहे उसको भविष्य में पराजित हो प्रकृति रूप नारी शक्ति के सम्मुख अपने मस्तक को झुकाना पड़ा हो।

ऐसा ही इतिहास वीरांगना मानवती के पवित्र जीवन में छिपा है। इस वीरांगना के सम्मुख समाज और पुरुष के पुरुषत्व ने अपना मस्तक टेका है।

स्व० श्री गुल्ली हमारे नाना थे। ये तालबेहट से आकर झांसी में राजा गंगाधर राव के खजांची दाऊ दौदरिया (जो नजाई बाजार में निवास करते थे) की बखरी के सामने वाले मकान में रहने लगे थे। ये बड़े ओजस्वी बलिष्ठ और पात्र निर्माण कला में पूर्ण दक्ष थे। नानी का नाम गौरारानी था। प्राचीन परम्परा की सुशील महिला और किस्से कहानियाँ सुनाने में बड़ी चतुर।

*भुजरियन का त्यौहार था नानी ने आल्हा ऊदल की वीर गाथाओं के पश्चात* अपने एक सम्बन्धी खुमान और उसकी पत्नी मानवती की अभूतपूर्व घटना सुनाई। घटना बड़ी रोचक और देश भक्ति पूर्ण थी।

सन १८४८ में झांसी राज्य के आस-पास डाकुओं का बड़ा जोर था। प्रधानमंत्री राघव रामचन्द्र पन्त के कठोर नियंत्रण के बावजूद डाकू काबू में नहीं आ रहे थे। खुमानसिंह नाम का एक सिपाही डाकुओं से मुकाबला करते हुए खेत आया था। खुमान की मृत्यु के पश्चात उसकी विधवा पत्नी मानवती समाज में मँजाई (महरी) के कार्य द्वारा अपने इकलौते पुत्र वीरसिंह सहित अपना जीवन निर्वाह करने लगी।

सन १८४८ में मानवती की साधारण सी भूल पर नागी की हैहय वंशीय क्षत्री समाज ने उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। इन्हीं दिनों राजा गंगाधर राव का द्वितीय विवाह उत्सव वाली कुआँ की हवेली में हो रहा था। दुखिन मानवती को लक्ष्मीबाई की जनप्रियता विदित हो चुकी थी वह रानी के प्रेम के सुनहरे स्वप्न देखने लगी। जब हृदय दुखी होता है तब वह अवसर नहीं देखता। मानवती सामाजिक बहिष्कार से अति दुखित थी। इस कारण उसने मंगल उत्सव का ध्यान नहीं किया और रानी को अपनी करुण व्यथा सुनाने के लिए महल के पास हाथीखाना में बैठ गई। रानी का डोला विदा होकर इसी मार्ग से आने वाला था।

बन्दीजन राजा गंगाधर राव और लक्ष्मी रानी की जय ध्वनि करते आ रहे थे। शहनाई की मधुर ध्वनि से राजपथ भर गया था। ऐसे आनन्द के समय

मार्ग में मानवती का करुण क्रन्दन सुन हलकारों ने उसको मार्ग से विलग हो जाने को ललकारा। परन्तु मानवती की वह करुण पुकार और उसके मार्ग से हट जाने की हलकारों की कठोर आज्ञा रानी को सुनाई दे चुकी थी। उनका हृदय नारी की करुण पुकार सुन द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त कहारों से अपना डोला रोकने को कहा। डोला रुका और रानी ने उस विधवा नारी को करुण व्यथा सुन अपने हाथों उसको शीतल जल पिलाकर धैर्य बंधाया और महल को प्रस्थान किया। (बुन्देलखण्ड में रुदन करते हुए को शीतल जल पिलाकर धैर्य बंधाने की प्रथा अभी भी प्रचलित है)।

कुछ समय व्यतीत होने पर विधवा मानवती स्त्री सेना में और उसका षोडश वर्षीय पुत्र वीरसिंह पुरुष सेना में भर्ती हो गया। बाद में जब झांसी पर विपत्ति के बादल उमड़े तब मानवती और उसके पुत्र वीरसिंह ने जो अतुलनीय बलिदान किया उसका वर्णन इन छन्दबद्ध पंक्तियों में आज भी सुरक्षित है। इनमें लक्ष्मीबाई का विवाह वर्णन और नत्थेखां से भीषण युद्ध का वर्णन हुआ है —

मंदिर मंदिर मन्द मन्द ध्वनि बाज उठी सहनाई।
द्वार द्वार पर नक्कारों की, घन गर्जन ध्वनि छाई।
कलित कंठ से कोकिल बयनी मृदुल गान उच्चारें।
रुन झुन, रुनझुन गूंज रही थीं नूपुर की झंकारें।
करहिं मंगलाचार लजावें कंठ कोकिला श्रेणी।
मोरोपन्त सुआगन में नव सुख की बही त्रिवेणी।
सुदिन साधना साध विदा की सुखदा बेला आई।
नाना साहब ने गिद्गद्‌ हो अनुजा हृदय लगाई।
सदन रुदन की झनक सुनत ही सुन्दर सुन्दर आई।
हो अति विकल हृदय सागर में नयन नीर झरलाई।
प्रियजन परिजन बाल वृद्धजन करुणा कर गुण गावें।
दें अशीष 'मनूबाई' को हृदय लगा बलि जावें।
मोरोपन्त सुभर गौरीसुत शिविका रुचिर सजाई।
विदा किया 'मनूबाई' को पुलकित कंठ लगाई।
देख विदा करुणा करके पिंजड़े का पंछी रोया।
तोता की यह दशा देख मना ने धीरज खोया।
किया प्रयाण बरात राव गंगाधर लक्ष्मी पाई।
युगल रूप लख नचे मोर मन हुलसन लगी अमराई।
मार्ग बीच इक बिलख बिलख कर विधवा बाला रोती।
जिसे देख कर करुणा भी करुणा कर धीरज खोती।

सकुन समय अपसकुन जान हलकारे ने ललकारा।
मानों मृगी जान घायल इक व्याध तीर फिर मारा।
तड़फ उठी वह बाल देख रानी का हृद भर आया।
उतर पड़ी डोला से नीचे भुज भर कंठ लगाया।
मानवती ने तब रानी से असह व्यथा उचारी।
पुरुष समाज बाण भेदित हूँ आहत विधवा नारी।
अपराधिन पापिन, दुर्भागिन कह भाग मे छोड़ा।
जो स्वार्थी स्वजन जन थे उन्हने भी नाता तोड़ा।
विधवा का सुन कर विलाप रानी का हृद भर आया।
नयनोंदक अपना मुख धोया उसको नीर पिलाया।
जीवन मिलते ही जीवन मे फिर नव जीवन आया।
प्रजा प्रेम का रानी ने यह अनुपम दृश्य दिखाया।
शीश झुका चरणों मे फिर अबला ने वचन उचारा।
जन्म जन्म मानूंगी रानी मैं अहसान तुम्हारा।
प्राणदान दे चलीं आप रह गई भावना मेरी।
चुका सकगी क्या इसका बदला चरणों का चेरी।
किन्तु विनम्र प्रार्थना है यह रानी जो सुन लेना।
भेजे पतिता भेंट कभी चरणों म आश्रय देना।
देकर धन चली विधवा को झांसी की महारानी।
हृद-अचल मे करुण भाव ले दृग अचल मे पानी।

राजा गंगाधर राव के विवाह के पश्चात सन १८५१ माघ शुक्ल एकादशी को उनके यहां एक पुत्र का जन्म हुआ किन्तु तीन माह पश्चात ही उसकी मृत्यु हो गई। रनवास और प्रजा को इससे अत्यन्त दुख हुआ। लेकिन ये विपत्ति के बादल इतने पर ही विलीन नहीं हुए। वे तो और सघन होने गये।

महाराज गंगाधर पुत्र शोक म चिन्तित रहने से रुग्ण हो गए। इनका इलाज राजवैद्य प्रतापशाह बड़ी सावधानी से कर रहे थे किन्तु उनकी दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही गई।

यह समाचार जब ब्रिटिश एजेन्ट एलिस को ज्ञात हुआ तब वह झांसी को अंग्रेजी कम्पनी के अधिकार म मिलाने और राजा का दत्तक पुत्र गोद न लेने देने का षड्यन्त्र रचने लगा। इसके लिए उसने लार्ड डलहौजी को जबलपुर पत्र भेजा। साथ ही वह डाक्टर एलन से गंगाधर राव का इलाज कराने की दृष्टि से कोरी सहानुभूति दिखाने के लिए महल म आया। परन्तु महाराज ने अहिन्दू द्वारा दवा खाना स्वीकार नहीं किया।

सन १८५३ ता० २१ नवम्बर (फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा) को होलिका पूजन के उपरान्त महाराज गंगाधर राव का स्वर्गवास हो गया। रानी ने हृदय पर वज्र की शिला रखकर रात्रि में राज्य की दुरावस्था पर विचार विमर्श किया और चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को प्रातः लक्ष्मी सरोवर के प्रकोष्ठ में उनका विधिवत् दाह संस्कार किया। इसका सूक्ष्म वर्णन निम्न पंक्तियों में उपलब्ध है

बीती प्रिय युग वय नेह सर में सरसिज था फूला।
किन्तु भाग्य विपरीत हुआ था विधि विधान था भूला।
नभ में हुआ विलीन इन्दु था, राज्य निशा ने पाया।
किन्तु धैर्य धर रानी दुख सुख मूल मान अपनाया।

स्व० महाराज गंगाधर राव की समाधि अब भी अपनी जीर्ण शीर्ण दशा में अवस्थित है। झांसी की जनता अपने जनप्रिय राजा की पुण्य स्मृति में आधुनिक युग में भी प्रतिपदा को होलिकोत्सव नहीं मनाती। झांसी का हैहय-क्षत्रीय समाज भी अभी तक अपने जनप्रिय राजा के शोक में प्रतिपदा को सब उद्योग धंधे बन्द कर पूर्ण हड़ताल मनाता है और द्वितीया को ही फागोत्सव खेलता है ?

जिस इमारत में आजकल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का कार्यालय है उस समय इसमें अंग्रेजों का क्लब था और एलिस तथा मार्टिन दोनों में रहते थे। एलिस ने राजा गंगाधर राव के निधन का समाचार लार्ड डलहौजी के पास भेज दिया। समाचार प्राप्त कर वह झांसी राज्य को अंग्रेज कम्पनी में विलय करने का प्रयत्न करने लगा। यह वर्णन पद्मभूषण डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी झांसी की रानी पुस्तक में किया है। इसमें ओरछा से नत्थे खां ने झांसी पर जो आक्रमण किया उसमें अलीबहादुर और पीरअली द्वारा जो भूमिकाएँ निभाई गईं उनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है

ओरछा के राजा धमपाल का देहान्त होने पर उनकी विधवा रानी लड़ई तावदार हुई। सुजानसिंह उक्त राजा के भतीजे थे। उनका रानी लड़ई से झगड़ा था। सुजानसिंह के देहान्त के बाद सन १८५४ में रानी लड़ई को गोद लेने की अनुमति मिल गई और उन्होंने हमीरसिंह को गोद लिया। सन १८५७ के विप्लव के समय रानी लड़ई हमीरसिंह की ओर से अभिभावक थी और नत्थे खां मंत्री था। इधर उधर से कुछ अंग्रेज अफसर भाग कर टीकमगढ़ आये। राज्य ने उनको शरण दी।

इन लोगों की सलाह से अली बहादुर की चिट्ठी जबलपुर भेज दी गई और एक खास दूत द्वारा इनको कहला भेजा कि झांसी में अपने अनुकूल एक गिरोहबन्दी कर लो एकाध झगड़ा बखेड़ा हो जाय तो और भी अच्छा हम ठीक मौके पर टीकमगढ़ से सेना लेकर आते हैं। नत्थे खां ने तैयारी शुरू कर दी। इत्यादि वृत्तान्त के पश्चात नत्थे खां २० सहस्र सेना ओरछा से आया, और

अनन्त चतुर्दशी (तीन सितम्बर) के दिन दूत द्वारा उसने रानी को सन्देश भेजकर झांसी राज्य को टीकमगढ़ में मिलाने को कहा। इसी बाद विवाद में युद्ध का होना घोषित किया गया। किन्तु स्व० कवि मदनमोहन दुबे 'मदनेश' कृत "झांसी रायसो" में जो बुन्देली में है यह वर्णन कुछ भिन्न है।

श्री मदनेश जी ने नत्थेखां का झांसी जवारा के मेला के अवसर पर आना और मुरली मनोहर के मन्दिर के मैदान में उनके हाथी के बिगड़ जाने से मेले का रंग भंग होना बताया है और रानी लक्ष्मीबाई का भी मुरली मनोहर के मन्दिर के समीप मेले का दृश्य देखने के लिए तख्त पर बैठना बताया है। मदनेश जी ने यह भी कहा कि जब रानी ने मेले का ऐसा हाल देखा तब उन्होंने जांच पड़ताल कर नत्थेखां को मेले से बाहर होने का आदेश दिया। इससे दीवान नत्थेखां क्षुब्ध हो रानी से विवाद कर टीकमगढ़ चला गया। श्री मदनेश का वर्णन नीचे उद्धृत है

दोहा—मुरलीधर मंदिर विसद डारो तखत सुथान।
श्री महारानी लक्ष्मीबाई विराजी आन।

कवित्त—ताइ समै खरक गज द्वै पठान आन,
घुसो घमसान आन देत है उठला को।
हाथी कौ महावतो ने बीच बिचलाय रायो,
चारो ओर झूमे झुके हल्ला भयो रेला को।
कवि मदनेश आय बाई के अगाड़ी अड़ो,
हटत न फौज लखो कारन झमेला को।
भगे नर नार भीर छटके मदान भई,
महा रंग भंग कर दयो भरे मेला को।

दोहा—बाई ने दीनों हुकम को यह का कौ आय।
कहौ बेग ले जाय गज, ऊधम रयौ मचाय।

कवित्त—दीनों हुकम जायकें सिपाई समझाय कई,
फोहो आय कासें नई नई सरमात हौ।
मेला माय कभौ तुम ऊधम मचाय राखो,
देख के परायो सुख नेक ना सिहात हौ।
कवि 'मदनेश' जान रानी जू विराजी यहां,
तिनकौ हिये में भय तनक न ल्यात हौ।
मान लेव जाओ न घटाओ मान मान कहौ,
मौत के बनाओ अब जान के न जात हौ।

रानी का यह आदेश सुनकर नत्थेखां मन में क्रोधित हो अभिमान भरे शब्दों में यों बोला—

दोहा—नत्थेखां बोलौ तबै वचन सहित अभिमान।
टीकमगढ़ दीवान हम सुन अबला नादान।

कवित्त—जानें न बुंदेलखण्ड मंडल महीपत खाँ,
महीइन्द्र जासौ जो महेन्द्र नाम पायौ है।
छाजत छिती प छत्र धारन मे नाम बडौ,
क्षत्रिन के वंश मे बुंदेला नाम गायौ है।
कवि 'मदनेश' जगत रानी महारानिन में,
रानी लडई जू को प्रताप जग छायौ है।
ताके दीवान हम न जाने को जहान बीच,
जान कहौ कौन जौ कहां स कौन आयौ है।

नत्थेखा क्रोधित हो टीकमगढ चला आया और मन ही मन बदला लेने की भावना से षड्यंत्र रचने लगा। इधर रानी लक्ष्मीबाई को दत्तक पुत्र न लेने देने को डल्हौजी भी षडयंत्र रचने लगा। इसका प्रमाण इन पंक्तियों में मिलता है—

चलने लगीं क्रूर डलहौजी की थी कुटिल प्रथाएँ।
चहुँदिशि से झांसी पर घिर घिर आई विपति घटाएँ।

इधर अंग्रेज रानी लक्ष्मीबाई के प्रति षडयंत्र रचने लगे और उधर नत्थेखा ने टीकमगढ़ की रानी लडई को अपनी वाक्यपटुता से फुसला कर झांसी पर बीस सहस्र बुंदेले सैनिकों को लेकर धावा बोल दिया। यह लोक गीत इसका साक्षी है—

गल्ला बीस हजार को हल्ला करो न एक।
छ महिना मल भये झांसी पाइ न देख।
झांसी पाइ न देख मचाओ कोरो हल्ला।
दइ पगारन मार बिथुर गओ सबरो गल्ला।

इस युद्ध में मानवती ने अपना शौर्य दिखाया। उसके पुत्र ने भी बलिदान देने में कसर न रखी। वीरांगना मानवती के वीर पुत्र वीरसिंह ने अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए भवानीशंकर तोप पर स्वयं की बलि चढ़ाने के लिए प्रस्तुत कर दिया। इससे द्रवित हो रानी ने वात्सल्य भाव से उस सैनिक को रोका

चतुरंगनी सेन सज करके नत्थेखा चढ़ आया।
डेरा डाल दिया झांसी पर रण का बिगुल बजाया।
दुर्ग द्वार पर बुंदेलों की चमक उठीं तलवारें।
कर्ण भेद कर हृदय गूंजती वीरों की हुंकारें।

यह बुन्देलखण्ड सीमा है यहाँ न घुस पाओगे।
हासिल हुक्म करो राजा का तब भीतर जाओगे।
राजा का आदेश हमारे कभी न टल सकता है।
कोई भी अग्रज न भीतर जाकर मिल सकता है।
लोंगमन ने ऐड़ लगाकर घोड़ा तनिक बढ़ाया।
डेमफूल पीटरसन बोला और जरा मुस्काया।
नहीं सहन हो सकी सिंह से उस घोन्ड की बोली।
बुन्देला न पीटरसन की गदन झपट टटोली।
झटका देकर पीटरसन को घोड़े पर से डाला।
लोंगमन ने इधर तमचा अपना शीघ्र निकाला।
सुमेरसिंह पीछे से झपटा देखा नहीं किसी ने।
दोनों के झटके रिवाल्वर कारतूस सब छीने।
घोड़े छीन लिए दोनों के बन्द किया थाने मे।
ज्वार, बाजरा की रोटी फिर दी उनको खाने मे।

वीर सुमरसिंह ने अपने को मनानायक बताने हुए लोंगमन, और पीटरसन को बुन्देली सीमा म घुसने की बहादुरी से ललकारा तुम राजा की बिना आज्ञा लिए प्रवेश नहीं कर सकते। परन्तु अंग्रेज अफसरों ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की और उन्हें कुछ अपशब्द कहते हुए अपने घोड़े जम ही बढ़ाये कि सुमरसिंह ने अपने पराक्रम द्वारा पीटरसन की गर्दन लपककर पकड़ ली और उसे घोड़े से नीचे गिरा दिया। यह देख शीघ्रातुर लोंगमन ने जसे ही रिवाल्वर ताना कि सुमरसिंह ने शीघ्र साहस के साथ उसका रिवाल्वर छीन लोंगमन और पीटरसन को पकड़कर थाने में बन्द कर दिया तथा जेल खाने की परम्परानुसार उन दोनों को ज्वार बाजरे की रोटियाँ खाने के लिए दीं।

लोंगमन और पीटरसन के बन्दी होने पर अंग्रेज फौज भाग खड़ी हुई। तदुपरान्त ब्रूम फील्ड और स्टिफन जान के संरक्षण में दो सहस्र गोरी पल्टन ने कानपुर से आकर राठ को फिर चारों ओर से घेर लिया। इसका वर्णन भी कविता में किया गया है —

तोपें अपने साथ भयंकर कानपुर से लाये।
जमना नदी पार कर गोरे राठ नगर पर छाये।
ब्रूम फील्ड मेजर था भारी निर्दय अत्याचारी।
आता था नौगाव छावनी पल्टन लेकर भारी।

यहा आनकर अटक गया वह पाला विकट पडा था।
श्री सुमेरसिंह झट सीमा पर सिंह समान अडा था।
होकर क्रुद्ध जौन ने झूठी तोप एक छुडवा दी।
जिसने अंग्रेजों के ऊपर महा प्रलय ही ला दी।
इधर राठ पर सजग सभी थे ठाकुर वीर निराले।
झूम रहे थे प्राण निछावर करने को मतवाले।
इस बुन्देलखण्ड के प्रहरी वीर बहादुर बांके।
अपनी मातृभूमि रक्षाहित बांध खडे थे नाके।
देखा रजपूतों ने सीमा तोड घुस रहे गोरे।
टूट पडे खेतों में जसे माघ मास के ओरे।
जौनसेन को मार गिराया मिलकर सब वीरो ने।
भेज दिया सीधा सुरपुर को प्रण के रणधीरो ने।
हैमिलटन ने जौनसेन को देखा गिरते नीचे।
दौडा उसे बचाने को अपनी कृपाण को खींचे।
उसको वड वरजोरसिंह ने रण कौशल से मारा।
इधर बुन्देले रजपूतों ने गोरा दल सहारा।

सुमेरसिंह और उसके वीर सिपाहियों ने जब देखा कि गोरी पल्टन राठ की सीमा में घुसने लगी है तो वह उन पर साहस के साथ टूट पडे और जौनसन का वध कर दिया। तदनन्तर हैमिलटन जो जॉनसन की रक्षा के लिए आगे बढा था वरजोरसिंह ने अपने रणकौशल द्वारा मार गिराया। यह देख बुन्देले सैनिकों का साहस बढा और उन्होंने अपने प्रहार द्वारा सकडो अंग्रेजों को मार गिराया और जो शेष बच वह अपने प्राण लेकर समर भूमि से भाग खडे हुए।

लेकर भागे प्राण फिरंगी कुल पहाड मे आये।
रेजीडेंट इकसन को आ सारे हाल सुनाये।
सुनकर हाल इक्सन का भी धडका सुदृढ कलेजा।
थोडी देकर फौज कप्तिन हडरसन को भेजा।
हडरसन ने 'पनवारी' पर आकर डाला डेरा।
और सुमेरसिंह को आकर चार तरफ से घेरा।
डरा नहीं तो भी नर नाहर मन को सुदृढ बनाया।
छापा मार युद्ध करना ही श्रेयस्कर ठहराया।

सुमेरसिंह ने अपने को अंग्रेजी फौज द्वारा घिरा जान कर सैनिकों से छापामार युद्ध का परामर्श किया और यत्र तत्र अंग्रेज फौज पर छापा मार

# महारानी लक्ष्मीबाई

'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी' यह शब्द हैं झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के, जिसने बुंदेलखण्ड ही नहीं अपितु पूर्ण भारतीय संस्कृति और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अंग्रेजों से जबरदस्त मोर्चा लिया था।

झांसी की वीर वसुन्धरा अपने चारों ओर फैले हुए सैनिक विद्रोह का सन्देश सुनकर अपने वक्षस्थल पर खड़े हुए गगनचुम्बी विशाल दुर्ग को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने को प्रोत्साहित कर रही थी। झांसी का सुदृढ़ दुर्ग भी अपने अडिग बुर्जों पर घनगर्जन करने, बिजली जैसी प्रलयकारी कड़क उत्पन्न करने वाली तोपों से गोलों की घनघोर वर्षा करने को समुद्यत था।

धन्य धन्य झांसी की धरती
धन्य धन्य वह पानी।
धन्य दुर्ग जिससे दुर्गा सम—
प्रगटी लक्ष्मी रानी।
जिसने भारत के कण कण में
जीवन ज्योति जगाई।
करने को स्वतन्त्र भारत
रणभेरी प्रथम बजाई।

जनरल सर ह्यू रोज भारत के अनेक विशाल एवं समृद्ध नगरों पर ब्रिटिश राज की विजय पताका फहराकर वहाँ के राजाओं को कम्पनी के अधीन कर चुका था। अब उसकी बर्बर विजयलिप्सा की क्रूर दृष्टि झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के सुख-साम्राज्य पर पड़ी क्योंकि उसको यह जानकारी थी कि झांसी ने अंग्रेजों के विरुद्ध न केवल विद्रोह को प्रोत्साहन दिया है बल्कि उसकी नींव ही झांसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा पड़ी है।

१८ दिसम्बर सन १८५७ को उसने जबलपुर से झांसी की रानी को कम्पनी के अधीन हो जाने के लिए एक पत्र लिखा किन्तु रानी की ओर से उसे जो स्वाभिमानपूर्ण उत्तर प्राप्त हुआ उससे वह विक्षुब्ध हो गया। इस कारण उसने २० मार्च सन १८५८ को अपनी सेना लेकर झांसी की ओर कूच किया और २३ मार्च के प्रातःकाल झांसी की 'कमानिन पहाड़ी' के मैदान में अपने खेमे गाड़ दिए।

इधर रानी भी पहले से ही सतर्क थी। अपने नगर की रक्षा के लिए उसने प्रथम ही सुदृढ़ व्यूह रचना करके किले के बुर्जों पर विशाल तोपों को चढ़ा दिया था। इसके अतिरिक्त नगर के देशभक्त नौजवान और समीप के ग्राम निवासी भी अपना सुदृढ़ संगठन करके अंग्रेजों से लोहा लेने को तत्पर थे।

रानी को जब ज्ञात हुआ कि जनरल ह्यू रोज ने झाँसी आकर अपना मोर्चा कमासिन पहाड़ी के मैदान में पूर्व और दक्षिण के मध्य लगा लिया है, तब उसने तुरंत दुर्ग की बुर्ज पर से देखा और तोपची गुलाम गौस को भी दिखाया। इस समय रानी के मुख मण्डल पर था अंग्रेजों से युद्ध करने का अगम्य उत्साहपूर्ण तेज और तोपची के हृदय में थी रानी के नमक की अदायगी की अपूर्व अभिलाषा।

तभी बानपुर नरेश श्री राव मर्दनसिंह ने रानी को यह सन्देश दिया कि ह्यू रोज ने युद्ध का बिगुल बजा दिया है आप किले पर तोपों का प्रबन्ध करें मैं सेना लेकर युद्ध के मैदान में जाता हूँ।

अब क्या था, दोनों ओर से सेनाओं में युद्ध के बादल गरज उठे और छोटे मोटे हमले होना प्रारम्भ हो गये। इन हमलों का निरीक्षण तोपची गुलाम गौस बुर्ज पर से दूरबीन द्वारा कर रहा था। सन्ध्या काल हो चुका था, इस कारण सेनानायकों ने युद्ध बन्द करने का सन्देश सुना दिया, किन्तु जैसे ही प्रातःकाल हुआ कि युद्ध का बिगुल फिर बज उठा।

तोपची गुलाम गौस, जो कल सन्ध्या में हमलों का निरीक्षण मात्र कर रहा था आज उसने २४ मार्च की स्वर्ण-वेला में रानी की आज्ञा लेकर घनगर्जन करती तोपों से लक्ष्य साधकर ऐसे गोले फेंकना शुरू किए कि पहले वार में ही ह्यू रोज की सेना के छक्के छूट गए।

ह्यू रोज ने सैनिकों को बहुत प्रोत्साहित किया किन्तु असफल रहा। इससे उसके हृदय को बड़ी ठेस लगी। वह सेना को वापस ले जाकर अपने तम्बू में शोकातुर हो विचार करने लगा कि क्या मेरी पिछली विजय इस विधवा रानी की युद्ध भूमि में बह जाएगी। प्रथम हमले में ही पराजय! ह्यू रोज की इस पराजय का चित्रण स्व० राष्ट्रकवि घासीराम व्यास की लेखनी द्वारा इस प्रकार किया गया है —

> पातन में कलकत्ता लियो अरु—
> पातन में पटना छपरे को।
> लातन लूट लहौर लई
> मदरास लई मदरास घरे को।
> व्यास कहैं छिन बम्बई सूरत
> औध लई छिन औध करे को।
> झाँसी नहीं पर साँचो कही
> यह झाँसी भई उन्हें फाँसी गरे को।

२५ मार्च सन् १८५८ को प्रातःकाल होते ही ह्यू रोज ने अपनी फौज को फिर हमला करने का हुक्म सुना दिया। फौज अभी कूच कर भी नहीं पायी

थी कि गुलाम गौस ने किले की बडी बुर्ज से भवानी शंकर तोप दाग दी। धांय की आवाज बडे जोर से हुई और गोला ठीक अंग्रेजी सेना के बीच आ गिरा जिससे तीस घुडसवार और पचास पैदल सनिक खेत आ गये। खलबली मच गई, किन्तु इस घटना से अंग्रेज सनिकों का उत्साह भंग नही हुआ। वे शीघ्र ही हमले के लिए अग्रसर हुए। खूब घमासान युद्ध मचने लगा।

तोपची गुलाम गौस ने मध्याह्न के समय जब अंग्रेजी सेना को दक्षिण के फाटक की ओर बढ़ते देखा, तब उसने लक्ष्य साध घनगजन तोप द्वारा भीषण गोलाबारी करना प्रारम्भ कर दिया जिसकी विकट मार से अंग्रेजी सेना भाग खडी हुई और ह्यू रोज ने भी प्राणो के भय से अपना घोडा मोडा ही था कि रानी ने उसके सीने पर बर्छी द्वारा ऐसा प्रहार किया कि वह मूर्छित हो घोडे पर से भूमि पर गिर लोटने लगा और जब वह होश मे आया तब रानी की प्रशंसा करने लगा। इस प्रसंग को यो पद्य बद्ध किया गया है —

घन गजन ने गोले उगले
ह्यू रोज बचाने लगा प्राण।
घोडा मोडा जब तक उसके—
सीने मे बर्छी लगी आन।
आहत हो गिरा उठा मन ही मन
शीश झुकाया रानी को।
मुख बोल उठा बरबश होकर
धन धन झासी के पानी को।

लडाई बन्द हो चुकी थी। रात्रि भीग उठी थी, किन्तु आज ह्यू रोज की आँखो मे शराब पी लेने के पश्चात भी नीद नही थी। वह अपनी पराजय और रानी की इस अजस्र विजय पर शोकातुर हो विचार करने लगा। लेकिन कुछ समझ मे नही आ रहा था। उसके सामने रानी की रणकुशलता और युद्ध प्रबंध के चित्र एक के बाद एक आँखो मे झूल रहे थे। बहुत विचार करने पर उसको एक युक्ति सूझी कि केवल अंग्रेज सनिकों को पीछे और हिन्दुस्तानी सिपाहियों को आगे फौज मे बढाकर हमला करूंगा।

२६ मार्च के प्रातःकाल फिर युद्ध का बिगुल बज गया। हिन्दुस्तानी सनिक जुझाऊ बाजा बजाते आगे बढ रहे थे और उनके पीछे थे अंग्रेजी सनिक। मोर्चा जम गया। वीर योद्धा वार करने को अति आतुर हो रहे थे।

आज झासी की सेना का नेतृत्व राजा मर्दनसिंह कर रहे थे। उन्होने देखा कि आज ह्यू रोज की सेना के आगे मराठा और बुंदेला सिपाही हैं। वह क्रोधित हो मन ही मन कहने लगा— इन्ही देशद्रोहियो ने देश को गुलाम बनाया है। राजा मर्दनसिंह ने शीघ्र ही रानी के पास यह नवीन समाचार भी भिजवा दिया। रानी

तुरत श्वेत घोड़े पर सवार हो युद्ध के मैदान मे आ धमकी और मराठा तथा बुन्देला सैनिकों को झाँसी के विरुद्ध युद्ध म बढ़ने देख ज्वालामुखी की तरह धधक उठी। उसके नेत्र अंगारों के सदृश अरुण हो गये। श्री वियोगी हरि न लिखा है—

इक अचरज हमने लख्यौ झाँसी दुग द्वार।
कर कमलन करवाल धौ दृग कमलन अगार॥

राजा मर्दनसिंह से गंभीर शब्दों म कहने लगी— कोई भय नहीं हमको केवल झाँसी के लिए ही नहीं पूर्ण भारत को स्वतन्त्र करने को युद्ध लड़ना है।'

यह पहला मोर्चा था जब कुछ हिंदुस्तानी सैनिक अपनी मान्य लिप्सा के लिए और कुछ अपने देश को स्वतंत्र करने का संग्राम कर रहे थे।

कुछ घोर बाकुरे बुंदेले चरखारी औ' टीकमगढ़ के।
कुछ शूर सिंधिया के रण मे कर रहे वार थे बढ़-बढ के।
इन देशद्रोहियों को लखकर रानी मन मे कुछ सहम गई।
हो गये लाल थे नेत्र भृकुटि बदली बर्छी को हाथ लई।
जो भिद जाता था बर्छों से मुख आह न करने पाता था।
निज देश द्रोह का फल पाकर वह चला स्वर्ग को जाता था।

रानी की इस भीषण मार से शत्रुओ के पर उखड़ गये। युद्ध भूमि त्यागने वाले ही थे कि ह्यूरोज दो सौ घुड़सवार लेकर आ धमका। ह्यूरोज को देख रानी मानो रणचण्डी के रूप म परिणित हो गई। उनके दोनों हाथों म थी बिजली की तरह चमकती हुई तलवारें और दातों म दबी हुई थी श्वेत घोड़े की लगाम। उसने ललकार कर ह्यूरोज से कहा— 'मेरी झांसी दूँगा नही।" उन्होंने अपने मन मे यह प्रण किया कि जीते जी झासी को परतंत्र नही होने दूगी तथा अंग्रेजों को यह सिखा दूगी कि भारत की रानिया केवल रनवास ही की शोभा नही होती, वे समय पर रणाङ्गण म महाशक्ति का रूप धारण कर शत्रुओ का दपदमन करने की भी शक्ति रखती हैं।

बोली दृढ हो गम्भीर वचन मेरी झांसी मेरा स्वदेश।
मेरा तन-मन धन कण कण पर अर्पण होगा यह वीर वेष।
कटि से चमकी कढ के कृपाण कमलों ने शोणित दान किया।
लक्ष्मी स्वरूप भैरवी बना कुल का स्वदेश का मान किया।
डट गया मोर्चा अरिदल मे चमकी रानी की चन्द्रहास।
दमकी दामिनि सी कुछ क्षण को देकर सहस्र को स्वर्गवास।
फिर तमका तेज तीव्र भाला सरदारों के सर काट-काट।
पहनाई चण्डी को माला रुण्डों से रण को दिया पाट।
अरियों की शोणित धारा से धरती का रंग था लाल लाल।
करवाल लाल, कर लाल-लाल, रानी के दृग थे लाल-लाल।

'झाशी प्रवास' के लेखक श्री विष्णु भट्ट गाडसे न जो कि उन दिनो झासी म ही थ अपनी यशस्वी लेखनी द्वारा लिखा है—२५ माच से ३ अप्रैल तक गहरा सग्राम हुआ जिसम रानी ने जनरल सर ह्यू रोज के छक्के छुडा दिय, इसीलिए ह्यू रोज ने स्वय अपनी लेखनी द्वारा इतिहास म लिखा है कि रानी युद्ध के प्रब ध मे तो दक्ष थी ही वह रण करने म भी पूण कुशल थी।

आगे रण की भीषण ज्वाला बढती ही गई और अन्त मे रानी लक्ष्मीबाई ने बुदेलखण्ड की सस्कृति और स्वतन्त्रता की रक्षा के निमित्त हसते हँसते अपन प्राणो की बलि चढा दी। रानी के त्याग से आज न केवल भारतवप मे प्रत्युत विश्व भर म बुदेलखण्ड का भाल ऊँचा है।

धय धय झासी की रानी धय धय तेरा बलिदान।
तन मन धन योछावर करके रक्खा मातृ भूमि का मान॥

## लोहागढ का स्वतन्त्रता-सग्राम

इतिहास के स्वण पृष्ठ कायर कपूत नही वरन वीर सपूत अपनी मातृभूमि की रक्षा के निमित्त शत्रु से लडते लडते अपने रक्त स लिखते हैं। एस ही वीर सपूत लोहागढ (साकिन लुहारी) के गूजर राजा हिदूपति थे।

सन १८५७ की बात है झासी पर सर ह्यू रोज न अपना आधिपत्य जमा लिया था और झासी के चारो ओर बसी हुई रियासतो के राजाओ को अपने आतक से प्रभावित करन के लिए खरीते (पत्र) भेजे जा रह थे। इसी दृष्टिकोण को लेकर सर ह्यू रोज ने एक पत्र लोहागढ के राजा हिन्दूपति को लिखा, जो अग्रेज जान जज लेकर पहुँचा।

राजा हिदूपति पत्र पढ़कर क्रोध स लाल हो गए और उन्होंने जान जेज को साहस क साथ चुनोती दी। एक तत्कालीन लोक-कवि ने 'लेद' म इसका वणन इस प्रकार किया है—

लोहागढ़ कठिन मवास फिरगी झासी भरोस ना रह्यो।
जहा तोप चल गोला चल भालन की हूय मार।

जान जेज ने राजा हिन्दूपति को अग्रेजो क अधीन होने के लिए अनेक प्रलोभन दिए। परन्तु वे नही माने। अन्त म युद्ध छिड गया। राजा हिन्दूपति ने डटकर मोचा लिया। कवि देवीराव न बुदेली कृजान छद म इस युद्ध का वणन इस प्रकार किया है—

भई भोर से लराई अधिकाई मन भाई,
भारी भीर भुरकाई भये थकित रथ मान।
उमड घुमड दल, बद्दल के साथ चल,
चले फड़ाबीन मार तोप अगवान।
पदर से पदर लर सूरन से सूर लर,
कायर कपूतन के मुल कुम्हलान।
'देवीराम' यो बखान सो लखत देवतान
भई जाहिर जहान लोहागढ़ की कृपान।

लोहागढ म उस समय अन्य जातियो की अपेक्षा पठान अधिक रहते थे। युद्ध के समय एक मार्मिक घटना घटी जिसको यदि बुंदेलखण्ड के युद्ध इतिहास म प्रथम स्थान दिया जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी

*एक पठान जिसका नाम रज्जब बेग था अपनी शादी करके बीवी को* साथ लेकर घर आया। माँ ने बडी हँसी-खुशी के साथ बुंदेलखण्डी परम्परा नुसार उसका तिलक किया, घी-गुड खिलाया और परिछन (आरती) कर यह सन्देश दिया— बेटा ! तेरा बाप शेरखा पहले लडाई म बुन्देलखण्ड की रक्षा करते हुए राजा चम्पतराय के साथ युद्ध म मारा गया था। तू जरा आँख खोलकर देख अंग्रेजो ने लोहागढ पर धावा बोल दिया है इसलिए तुझे अपना कदम घर मे नही युद्ध भूमि म रखना है।

रज्जब बेग मा के इन वचनो को सुन पहले तो कुछ गभीर हो गया फिर शीघ्र उसकी त्यौरी चढी बाहे फडकी और हाथ दाहिनी मूछ पर गया। वह मा के चरणो म अपना शीश झुकाकर फिर अपनी नव परिणीता वधू से बोला— तुम्हारे हाथो को अब तभी चूमूगा जब युद्ध से विजयी होकर लौटूगा।

पत्नी ने *नत मस्तक हो अपने साहस का परिचय देते हुए कहा— पठान* कुल की सदा से यही परम्परा रही है कि वे पहले तलवार का चुम्बन करते हैं बाद म पत्नी का।

रज्जब बेग युद्ध भूमि म लौटे पावन चला गया और उसकी नव विवाहिता पत्नी घर म सास के साथ चली गई।

रणभूमि म अनेक वीर खेत आये परन्तु पठान रज्जब बेग मल्लयुद्ध म विजयी हुआ। उसका वर्णन उसी काल के किसी कवि ने इन चार दोहो म इस प्रकार किया है—

जान जेज अगरेज की को ओटें रनधीर।
लोहागढ़ को धन्य है कटे बराबर बीर।
चारक कटे भदौरिया, रज रखन रजपूत।
दो किसनातिल बग के साबित कटे सपूत।

छ पठान साबित कटे मगर लुहारी खेत।
जाफरखां औ नूरखां, मिरजा जस के हेत।
रज्जब बेग बखानिये मल्ल जुद्ध जेहि कीन।
पकर शत्रु के टटआ डार खास मे दीन।

पहले युद्ध म लोहागढ और अग्रेजो के बराबर बराबर वीर मारे गये। इसमे लोहागढ के वीर योद्धाओ म चार भदौरिया, दो कृष्ण वश (यादव वश) के वीर छ पठान और जाफरखा, नूरखा तथा मिरजा खेत आये। परन्तु इस युद्ध मे पठान रज्जब बेग न मल्लयुद्ध द्वारा अग्रेज सनिको को पछाड पछाड टेंटुओ (गले का अग्रभाग) को पकड पकडकर खासें (अनाज भरने की बारिया) भर दी।

सन्ध्या होने पर युद्ध बद हो गया। वीर योद्धा अपने अपने खेमा म चले आये, और विजयी वीर पठान रज्जब बेग ने घर आकर अपनी मा के चरणो मे शीश झुकाकर आदाब बजाया। तदनन्तर अपनी नवविवाहिता पत्नी को भुजपाश मे बाध आलिगन किया। उसकी पत्नी ने भी उसको स्नेह से गले लगा लिया। फिर प्रात काल युद्ध का नगाडा बजते ही जस ही युद्ध के मैदान म सैनिक पहुँचने लगे रज्जब बेग भी अपनी कमर मे कटार कस राजा हिदूपति के सम्मुख हाजिर हो गया। एक कवि ने इसका वणन दोहो मे इस प्रकार किया है—

सजा होतन क भओ जुद्ध फिरे सब ज्वान।
रज्जब ने तब आन घर मा के परसे पान।
बीवी ने हस गरे सौं पिय खौं लयो लगाय।
पाय पलोटे रात भर प्यिला सेव जराय।
बजो नगाडौ जुद्ध को ऐन होतनईं भोर।
चले खेत खौं सूरमा बाद बाद सिर मोर।
रज्जब ने उठ कमर मे अपने कसी कटार।
हिंदूपति के सामुहें आकें करी जुहार।

एक ओर अग्रजी और दसरी ओर लोहागढ की सना मोर्चों पर डट गइ और युद्ध का बिगुल बजते ही दोनो ओर के योद्धा जूझ पडे। इस युद्ध मे अग्रेजो के झिल्मटोपा और बख्तरो को लोहागढ के वीर योद्धा दुर्गासिह और मुकुदसिह तथा पठाना ने अपन वारो से धराशायी कर दिया। इसका वणन लोक कवि नदकिशोर ने कृवान छद म इस प्रकार किया है—

झार झार परत झिलन बख्तर टोप,
ओप दे किले को लोहागढ़ बलवान।

मई मोर से लराई अधिकाई मन भाई,
मारी मीर मुरवाई भये थकित रथ मान।
उमड धुमड दल, बहल के साथ चल,
चले कडाबीन मार तोप अगवान।
पदर से पदर लर सूरन से सूर लर,
कायर कपूतन के मुख कुम्हलान।
'देवीराव' यो बखान सो लखत देवतान
भई जाहिर जहान लोहागढ़ की कृपान।

लोहागढ़ म उस समय अय जातियो की अपक्षा पठान अधिक रहते थे। युद्ध के समय एक मार्मिक घटना घटी जिसको यदि बुदेलखण्ड के युद्ध इतिहास म प्रथम स्थान दिया जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी

एक पठान जिसका नाम रज्जब बग था अपनी शादी कराकर बीवी को साथ लेकर घर आया। माँ ने बडी हँसी खुशी के साथ बुदेलखण्डी परम्परानुसार उसका तिलक किया घी गुड खिलाया और परिछन (आरती) कर यह सन्देश दिया— बेटा! तेरा बाप गेरखा पहल लडाई म बुदेलखण्ड की रक्षा करते हुए राजा चम्पतराय के साथ युद्ध म मारा गया था। तू जरा आँख खोलकर देख, अंग्रेजो न लोहागढ़ पर धावा बोल दिया है इसलिए तुझे अपना कदम घर म नही युद्ध भूमि म रखना है।

रज्जब बेग माँ के इन वचनो को सुन पहले तो कुछ गभीर हो गया, फिर शीघ्र उसकी त्योरी चढी बाँहें फडकी और हाथ दाहिनी मूँछ पर गया। वह माँ के चरणो म अपना शीश झुकाकर फिर अपनी नव परिणीता वधू स बोला— तुम्हारे हाथो को अब तभी चमगा जब युद्ध से विजयी होकर लौटूगा।

पत्नी न नत-मस्तक हो अपन साहस का परिचय दते हुए कहा— पठान कुल की सदा से यही परम्परा रही है कि वे पहले तलवार का चुम्बन करते हैं, बाद म पत्नी का।

रज्जब बेग युद्ध भूमि म लौट पावन चला गया और उसकी नव विवाहिता पत्नी घर म सास के साथ चली गई।

रणभूमि म अनक बार सैन आए परन्तु पठान रज्जब बग मल्लयुद्ध म विजयी हुआ। उसका वणन उसी काल के किसी कवि न इन चार दोहो म इस प्रकार किया है—

'जान जेम अगरेज की को ओटे रनधीर।
लोहागढ़ की धप है कटे बराबर बीर।
चारक कटे भदौरिया रन रचन रजपूत।
दो किसनातिल बग के साहिब कटे सपूत।

छ पठान सावित कटे नगर लुहारी खेत।
जाफरखां औ नूरखां, मिरजा जस के हेत।
रज्जब बेग बखानिये मल्ल जुद्ध जेहि कीन।
पकर गनु के टटुआ डार खास में दीन।

पहले युद्ध म लोहागढ और अग्रेजा के बराबर बराबर वीर मारे गये। इसम लोहागढ के वीर याद्धाओ म चार भदौरिया, दो कृष्ण वश (यादव वश) के वीर, छ पठान और जाफरखा, नूरखा तथा मिरजा खेत आये। परन्तु इस युद्ध म पठान रज्जव बेग ने मल्लयुद्ध द्वारा अग्रेज सनिकों को पछाड पछाड टेंटुआ (गले का अग्रभाग) को पकड-पकडकर खासें (अनाज भरने की बोरिया) भर दी।

सन्ध्या होने पर युद्ध बद हो गया। वीर योद्धा अपन अपने खेमा मे चले आये, और विजयी वीर पठान रज्जव बेग न घर आकर अपनी माँ के चरणो में शीश झुकाकर आदाब बजाया। तदनन्तर अपनी नवविवाहिता पत्नी को भुजपाश मे बाध आलिंगन किया। उसकी पत्नी ने भी उसको स्नेह से गले लगा लिया। फिर प्रात काल युद्ध का नगाडा बजते ही जसे ही युद्ध के मैदान मे सैनिक पहुँचने लगे रज्जव बेग भी अपनी कमर म कटार कस राजा हिन्दूपति के सम्मुख हाजिर हो गया। एक कवि न इसका वणन दोहो म इस प्रकार किया है—

सजा होतन बन्द भओ जुद्ध फिरे सब ज्वान।
रज्जब ने तब आन घर मा के परसे पान।
बीवी ने हस गरे सौं पियु कौं लयो लगाय।
पाय पलोटे रात भर दियला नेव जराय।
बजो नगाडौ जुद्ध को ऐन होतनई भोर।
चले खेत कौं सूरमा बाद बाद सिर मोर।
रज्जब ने उठ कमर मे अपने कसी कटार।
हिन्दूपति के सामुहें आकें करी जुहार।

एक ओर अग्रेजी और दूसरी ओर लोहागढ की सना मोर्चों पर डट गइ और युद्ध का बिगुल बजते ही दोनो ओर के योद्धा जूझ पडे। इस युद्ध मे अग्रेजा के झिलमटोपा और बख्तरो को लोहागढ के वीर योद्धा दुर्गासिह और मुकुर्दासिह तथा पठाना ने अपन वारा मे धराशायी कर दिया। इसका वणन लोक कवि नन्दकिशोर न कृवान छद मे इस प्रकार किया है—

झर झर परत झिलन बख्तर टोप
ओप दे किले को लोहागढ़ बलवान।

साहिन लुहारी तरवार को बखान कर,
दुरग मुकुंद से हठीले — हनुमान।
प्रबल पठान मौंक राखी सिरे जाफरान
राखी मुगलानी मिरजा ने भलो मान।
राजा महाराज हिंदूपति को प्रताप बढ़ो
'नन्दकिशोर' भुक कारो किरवान।

जब घनघोर युद्ध हो रहा था तब चन्द्रवंश के वीर योद्धा हर्रसिंह और खेतसिंह ने जो रणकौशल दिखाया वह इस प्रकार वर्णित है—

चन्द्रवंश में अवतरौ हर्रसिंह अनूप।
जाकी बान कृपान की समता कर न भूप।
गिरे फील से बीर दो पील बीर।
घने भुण्ड गोरण्ड के मुंड मार।
सुनाम निधान बखाने सुता के।
बड़े खेत सिंह सुभग बीर बाके।

लोहागढ़ के मैदान में सात दिन तक भीषण युद्ध हुआ जिसमें 'जान जेज' के छक्के छूट गए। मुकुन्द और नन्दकिशोर कवि ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

सात दिना लौं जुद्ध भओ, लोहागढ़ दरम्यान।
फिरे फिरंगी बचाउत अपने अपने प्रान।
जुद्ध अंगरेजन विरुद्ध कियो गुज्जर सौं।
छूटत अराब धुआं छायो आसमान।
तोप की तड़प गरज सुन गोलन की,
छूटत बड़े मुनीस सिद्धन के ध्यान।
भनत मुकुंद इते काधिल तमक लरौ,
काट काट काढ लीहैं गोरन के प्रान।
राजा महाराज हिंदुवेश को प्रताप बढ़ो
'नन्दकिशोर' भुवझारी किरवान।

'जान जेज' का लोहागढ़ के इस युद्ध में जब अपनी पराजय मालूम होने लगी तब उसने धामी हरकारा भेजकर सर ह्यू रोज से और फौजी मदद माँगी।

सर ह्यू रोज ने शीघ्र तीन सौ घुड़सवार और सात सौ पैदल सैनिक लोहागढ़ के मोर्चे पर भेज दिये। घनघोर युद्ध होने लगा लोहागढ़ की भूमि रक्तरंजित हो गई।

राजा हिन्दूपति और उनके वीर योद्धा तथा सिपाहियों ने अपनी स्वतंत्रता

और मातृ भूमि की रक्षा हेतु अपने प्राणों को लड़ते-लड़ते होम दिया, परन्तु पराधीनता स्वीकार नहीं की—

कटे सूर सामंत वर हिंदूपति की बान।
प्रान दान द राखलइ लोहागढ की सान।

# बुन्देला वीर मर्दनसिंह

बुंदेला वीर मर्दनसिंह बानपुर के राजा थे। बानपुर बुंदेलखण्ड का एक छोटा राज था, जो झांसी से पश्चिम मे बेतवती नदी के समीप बसा हुआ था। प्राचीन संस्कृति की दृष्टि से मर्दनसिंह ने बुंदेलखण्ड की आजीवन युद्ध करते हुए रक्षा की।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई मर्दनसिंह को अपना ज्येष्ठ भ्राता मानती थी। यही मुख्य कारण था कि मर्दनसिंह ने सिपाही विद्रोह में लक्ष्मीबाई के साथ झांसी कोच और काल्पी तक ह्यु रोज से टक्कर लोहा लिया। इसका प्रमाण कविवर 'रतनेश' के इस प्राचीन छंद मे भी मिलता है—

सुमिल सरूपी शुद्ध सरस सुढार ढरीं,
मानों विधि विधि सों बनाती सब राती हैं।
श्रवन सुनें तें शब्द अस्त्रन को डार सब,
शत्रुन की चमू चहुँ ओर भर्भराती हैं।
कहैं 'रतनेश' बेध तिनकी अवाजें सुन
सकल अचेतन की छाती घघराती हैं।
तोपें वीर मदन महीप महाराज तेरी
घन के समान ये धरा प गगराती हैं।

श्री वासुदेव गोस्वामी ने बुंदेला वीर मर्दनसिंह के पराक्रम को एक शोध पूर्ण लेख में चित्रित किया है। उसी लेख के कुछ अंशों से हमारे कथन की पुष्टि हो जाती है।— सन १८५७ ई० भारत में सिपाही विद्रोह के लिए प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम १० मई को मेरठ में विद्रोह की चिनगारी उठी। ८ जून को बानपुर में और ८ जून को झांसी में इस विद्रोह ने अपना रौद्र रूप प्रगट किया। तदुपरान्त उत्तरी भारत में स्थान-स्थान पर अंगरेजी सेनाओं के सिपाही विदेशी शासकों पर टूट पड़े और देश में क्रांति की एक भयंकर ज्वाला जलने लगी। क्रान्ति के अग्निकुण्ड में समिधा आह्वान में स्वतंत्रता के अनेक पुजारियों का—

हाय था जो वर्षों स्वतन्त्रतापूर्वक विदेशी सत्ता के विरुद्ध राजनीतिक वातावरण का निर्माण करने में लगे थे। अंग्रेजी सरकार के कोप से बचने के लिए इन्हें अपने कार्य-कलापों को बड़ी सतर्कता के साथ सम्पन्न करना होता था। तथापि भी सन्देह होने पर उन राजाओं की गतिविधियों पर अंग्रेजों की तीक्ष्ण निगाह रहा करती थी।

बानपुर के राजा मर्दनसिंह के प्रति अंग्रेजी सरकार का रुख विश्वासपूर्ण नहीं था। राजा भी इस स्थिति को जानते थे। वे अपनी शक्ति की वास्तविकता को नहीं भूले थे। उन्हें इस बात का पता था कि अंग्रेजों की वक्र-दृष्टि होने पर उनकी छोटी सी रियासत एक दिन भी नहीं ठहर सकेगी।

'अतः उन्होंने कूटनीति का अनुसरण किया। अंग्रेजी सरकार के प्रति उन्होंने अपनी वफादारी प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। राजा के व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन पाकर अंग्रेज अधिकारियों को जो आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई उससे स्पष्ट हो जाता है कि गदर से १२ वर्ष पूर्व ही राजा मर्दनसिंह अंग्रेज अधिकारियों की नजर में बुरी तरह खटकने लगे थे। मर्दनसिंह बुद्धिमान नीतिकुशल तथा अत्यन्त निर्भय व्यक्ति था। अन्त तक अंग्रेजों ने इनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की है।'[1] तुलसी साँच सूर को बरी करत बखान वाली उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है।

सन् १८५७ के गदर का आँखोंदेखा हाल पूना के एक मराठा ब्राह्मण श्री विष्णु भट्ट गोडसे ने लिखा है। गदर प्रारम्भ होने के पूर्व उक्त गोडसे जीविकोपार्जन हेतु ग्वालियर एवं बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने यात्रा का वर्णन लिखा है जो माझा प्रवास के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के साथ भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

इस पुस्तक के एक विवरण अनुसार मार्च सन् १८५७ ई० में भारत के देशी राज्यों के राजाओं की एक सभा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अंग्रेजी सरकार ने कलकत्ता में आमन्त्रित की थी। अंग्रेजों का उद्देश्य हिन्दू एवं मुसलमानों की कतिपय सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं में परिवर्तन करने का था। अंग्रेज ८४ रूढ़ियों में सुधार करने के लिए राजाओं को सहमत कराना चाहते थे।

---

[1] मालथौन के द्वितीय सेना के डिप्टी कमिश्नर कैप्टेन जा० डब्लू० हैमिल्टन द्वारा २८। १। १८४४ को सागर के प्रथम सेना के डिप्टी कमिश्नर कैप्टेन ब्राउन के नाम भेजे गये एक पत्र की अंश लिपि —

*I have much pleasure in bringing to your notice the improvement which has taken place in the conduct of Raja of Banpur*

विष्णुभट्ट ने लिखा है कि उस सभा में सिन्धे, हाल्कर गायकवाड़, धुलपुवार, विजयसिंह का राजा, शनिया, ओरछा तथा बानपुर के राजा तो आमंत्रित किए गए थे किन्तु नाना साहब पतवा, झ्यनऊ की बेगम, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा दिल्ली के फीरोजशाह को नहीं बुलाया गया था। जो राजा महाराजा बुलाए गए थे उनका उचित सत्कार किया गया था। जब बन्दगी की उस सभा में उपयुक्त ८४ विषयों की वह सूची पढ़ी गई तो उसमें अनेक ऐसी बातें पाई गई जो हिन्दुओं और मुसलमानों की भावनाओं पर चोट पहुँचाने वाली थी। विष्णु भट्ट गोडसे ने लिखा है कि उस सभा में बानपुर नरेश मर्दनसिंह इसको सहन नहीं कर सके। उन्होंने तुरन्त ही खड़े होकर निर्भयतापूर्वक इन शब्दों में अपना विरोध प्रकट किया—

यह हिन्दुस्तान भारत खण्ड जम्बू द्वीप है। इस कर्मभूमि कहते हैं। इस भूमि से लगे हुए बाकी सब सिंघल आदि द्वीप हैं। परन्तु हिन्दुओं का मुख्य यही है। अत जिनका अपने देवी-देवताओं पर श्रद्धा न हो उनके लिए साहबों द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग है नहीं तो फिर जो होना है वह होगा। यदि एक सार्वभौम राजा भी प्रजा को अधम आचरण की आज्ञा दे तो भी प्रजा उसको स्वीकार नहीं कर सकती। इसलिए इन चौरासी कर्मों को अमल में लाने का यदि सरकार का उद्देश्य होगा तो धार्मिक विप्लव अवश्यंभावी है।

(द्रष्टव्य 'माझा प्रवास' पृष्ठ १५ १६)

फलत अंग्रेजों की यह चेष्टा असफल रही और जो राजा-महाराजा उस सभा में भाग लेने के लिए गए थे वे सभी असन्तुष्ट होकर लौटे। 'माझा प्रवास' का उक्त वर्णन यह बताने के लिए पर्याप्त है कि गदर की पहली चिंगारी में प्रकट होने के पूर्व राजा महाराजा अंग्रेजों की कुटिल नीति के विरुद्ध बड़े जोर से अपने विचार व्यक्त करते थे। राज सत्ता से विरोध करने का स्पष्ट संकेत भी उन्होंने दे दिया था। अंग्रेज इतिहासकारों ने भी इसे स्वीकार किया कि अंग्रेजी फौज के सिपाहियों को भड़काने का काम मदनसिंह गदर के पूर्व से ही कर रहे थे।

इन सूचनाओं से सिद्ध होता है कि बानपुर के राजा मदनसिंह भारत के उन क्रान्तिकारी नेताओं में थे जिन्होंने गदर की घटना से पूर्व ही भारतीय सैनिकों में स्वदेश के प्रति राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का सफल प्रयास किया था। महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता करने में इन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। महारानी लक्ष्मीबाई के साथ इन्होंने 'ह्यू रोज' की सेना से युद्ध किया। अन्त में मुंगर में यह गिरफ्तार हो गए और आजन्म बन्दी बनाए जाकर सन १८५८ ई० में ही लाहौर भेज दिए गए।

१५ वर्ष लाहौर में नजरबन्द रहने के उपरान्त सन १८७३ में इन्हें व दावन वास करने की अनुमति मिल सकी। २२ जुलाई सन १८७८ ई० को यहीं इनका

दहान्त हो गया। जिस स्थान पर वे शहीद हुए थे, वहाँ आजकल गुरुकुल है, वहाँ इनकी समाधि बनी हुई है। (महार अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ११)

वीर मदनसिंह बुन्देलखण्ड की संस्कृति के लिए जिए और मरे। बुन्देलखण्ड उनका सदा ऋणी रहेगा।

> का कइए वानपुर वारे की, मर्दनसिंह नपत जुझारे की।
> सेना सजन बजन रनतूला चोटें समर नगारे की।
> अगरेजन के गर उतर गइ पनी धार दुधारे की।

# स्वतन्त्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड के क्रान्तिकारियों का रक्तदान

झाँसी से सात मील दूर ढिमरपुरा ग्राम के निकट बाबेर करील और करधई की बियाबान वनस्थली में एक छोटी सी नदी सातार कलकल निनाद करती हुई प्रवाहित होती है। श्री चन्द्रशेखर आजाद ने अपने अज्ञातवास में ब्रह्मचारी साधु वेष में इसी सरिता के तट पर निवास किया था, क्योंकि यह स्थल उनके लिए सभी दृष्टियों से सुरक्षित था।

> कलकल करती अविरल गति से,
> बहती है निमल सातार।
> गूंज रही है स्वर लहरी में,
> भौंरों की मादक झंकार।
>
> महावीर विक्रम शाली का,
> तट समीप पावन सुस्थान।
> झूम रहा है गगन विचुम्बी
> ऊपर जिसके लाल निशान।
>
> 'मित्र' चन्द्रशेखर डमरू का—
> होता है, नित डिम डिम नाद।
> सिंह सपूत जागते सुन कर,
> कायर करते हृदय विषाद।

(सरसी पृष्ठ १०१)

सन १९२३ के लगभग की बात है। झाँसी में एक मजदूर कान्फ्रेंस हुई थी, जिसमें मुझे 'मजदूर'[1] शीर्षक कविता पढ़ने का अवसर मिला था।

कविता से प्रभावित हो सभामंडप करतल ध्वनि से गूंज उठा। प्रात जब मैं अपने निजी काम के लिए पात्र निर्माण में संलग्न था तब एक भद्र पुरुष आये और नमस्कार करते हुए उस कविता की प्रशंसा करने लगे जो मैंने रात्रि में पढ़ी थी।

श्री चन्द्रशेखर आजाद को इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था, परन्तु उनके रहन-सहन और आकृति के सम्बन्ध में स्व० श्री रतन हयारण और श्री अयोध्याप्रसाद से अवश्य सुना करता था। (अयोध्याप्रसाद उस समय हमारे पड़ोस श्री बुच्ची मोदी की हवेली में रहा करते थे।) मैंने अनुमान किया और प्रणाम कर बैठने के लिए निवेदन किया। विलक्षण बात तो यह थी कि उन्होंने मेरे ऊपर एकबारगी कैसे विश्वास कर लिया, जबकि मैं उनकी पार्टी का सदस्य भी नहीं था। इससे उनकी निर्भयता और आत्मबल का परिचय मिलता है।

मेरे आग्रह करने पर उन्होंने भोजन किया। मैं उस समय पीतल-तांबे के पात्र निर्माण का काम करता था। उन्होंने मुझसे तांबे के कुछ खोल बनाने को कहा जो मैंने स्वीकार कर उनके बताये हुए स्थान 'सातार' पर भेजने का वचन दिया। उनके चले जाने पर मैं उनकी सेवा में यथासमय दे आया।

इसके पश्चात उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे मऊरानीपुर में जल बिहार के कवि सम्मेलन में पुनः मिला। इस समय उनके साथ एक युवक था, जिसका उन्होंने छत्रसाल नाम से मुझसे परिचय कराते हुए कहा—'यह आपको झाँसी में कुछ सामान दे आया करेंगे। क्या आप उसे हमारे पास तक पहुंचाने का कष्ट किया करेंगे?'

आजाद के बोलने में वह आकर्षण था कि मैं 'हां' के सिवाय और कुछ न कह सका। छत्रसाल द्वारा समय-समय पर मुझे जो भी सामान सातार भेजने

---

[1] तप पूत औ शील सिन्धु औ सत्याग्रह के मन्त्र।
महाकाल औ महाप्रलय औ विप्लव के वर-यन्त्र।
तरुण तपस्वी औ त्यागी औ शक्ति सजीव सपूत।
इस निष्ठुर निर्मम जग में तुम कहलाते मजदूर।
निबल करों पर लिए चल रहे निखिल विश्व का भार।
तीन तीन दिन के फाके यह शोषण का प्रतिकार।
उथल पुथल हो और महा तुम ऐसा छेड़ो राग।
मिट जाय यह भारत का दुख-दैन्य दासता दाग।

(सरसी पृष्ठ ७०)

को मिला उसे मैं उनके स्थान पर सुरक्षित पहुँचाता रहा। यह प्राय पेटिया म बन्द होता था।

एक बार मुझे वर्षा होने हुए भी सातार जाना पडा। रात्रि क नौ बजे थ। बादलों की गर्जना और बिजली की चकाचौंध म मेरी साइकिल एक पेड स टकरा गई मैं गिर पडा। परन्तु पेटी सुरक्षित थी उठकर चल दिया। सातार पहुँचा। देखा आजाद विचार मग्न बठे थ। पास म एक युवक, जिसका नाम उन्होंने गुडि ा बताया था क्षत विक्षत पडा था। उन्होंने विचारकर उसका शव जलाने क बजाय गाढ दना उचित समझा। उन्होंने स्वय उस अपनी पीठ पर लादा और नदी के उस पार गाढ दिया।

इन पक्तियो क लिखते समय आज भी मेरी आँखो के सामने उस युवक का वह चित्र सजीव हो आया है। श्री चन्द्रशेखर आजाद क अतिरिक्त उसके उस बलिदान को शायद किसी ने नही जाना होगा। इस प्रकार न जाने कितने नवयुवको का बलिदान इन क्रान्तिकारियो क साथ व्यक्तिगत जीवन म हुआ होगा। ऐसे वीरो के नाम क्रान्तिकारी इतिहास म सवदा के लिए विलुप्त रहेंगे। परन्तु मेरा दृढ विश्वास है कि ऐसे बलिदानी युवक हो स्वतन्त्र भारत के उच्च भव्य मदिर के स्वर्ण-कलश न सही लेकिन नीव के पत्थर सदृश अवश्य सम्मानित रहेंगे।

स्वतन्त्रता सग्राम म बुन्देलखण्ड क जिन क्रान्तिकारियो और राजाओं ने अपना योगदान दिया है उनके सम्बन्ध म हम यहा कुशल लेखक श्री देवेन्द्र शिवानी एडवोकेट के एक लेख का कुछ अश उद्धृत कर रहे हैं—

साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयो क सशस्त्र क्रान्ति प्रयास के इतिहास म झासी का नाम अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद के नाम से सलग्न है। यद्यपि झासी तो आजाद की न जन्मस्थली है और न शहादत की जगह। चन्द्रशेखर आजाद का जन्म राज्यो के एकीकरण के पूव अलीराजपुर राज्य के एक ग्राम भावरा म हुआ था जो आज मध्य भारत की भाबुआ तहसील के अन्तगत है और उनकी मृत्यु सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के नेता के रूप मे पुलिस की भली प्रकार शस्त्र सज्जित और बख्तरबन्द गाडी से लैस टुकडी के साथ अपने रिवाल्वर से एकाकी युद्ध करते हुए इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क म हुई। फिर भी क्रान्तिकारियो के इतिहास म झाँसी का नाम अन्य किसी स्थान के नाम की अपेक्षा अधिक निकटता से सलग्न है और ऐसा होना ठीक है। कारण यह है कि सुप्रसिद्ध काकोरी षडयन्त्र केस के फरार अभियुक्त घोषित किय जाने के बाद स आजाद ने अपना अज्ञात क्रान्तिकारी जीवन झासी के समीप ही बिताया। सरदार भगतसिंह और उनके अन्य साथियो क साथ वे प्रसिद्ध लाहौर षडयन्त्र केस के फरार अभियुक्त भी घोषित किय गये। ब्रिटिश

सरकार ने उनको गिरफ्तार करने के लिए बड़े बड़े इनामो की घोषणा की थी। ब्रिटिश सरकार का जासूस और पुलिस विभाग खोजू सूंघा कुत्ता की तरह सरगर्मी से उनका पीछा करता रहा परन्तु झांसी म अज्ञातवास कर रहे चन्द्रशेखर आज़ाद और उनके साथी व मित्र ब्रिटिश सरकार के सभी प्रयत्नो को विफल करते रहे। सरकार का आतक, प्रलोभन, अत्याचार आदि सारे कुत्सित साधन व्यर्थ रहे। झांसी ने न तो आज़ाद को जन्म दिया, न शहादत की शानदार मृत्यु दी परन्तु झांसी मे आज़ाद को मिला सक्रिय सुरक्षित क्रांतिकारी जीवन दृढ सहायक पक्के मित्र और साथी। झांसी ने आततायी सरकार द्वारा आज़ाद पर अपना फन्दा फलाने के सारे प्रयत्नों को विफल किया है। इलाहाबाद का महत्त्व है कि वहाँ आज़ाद को शहीद की 'शानदार मौत' मिली झांसी को अभिमान है कि उसने आज़ाद को प्रेम पूर्ण सुरक्षा के साथ ही सक्रिय क्रान्तिकारी 'जीवन प्रदान किया।

झांसी म १८५७ म सशस्त्र क्रांति की जो आग प्रात स्मरणीय रानी लक्ष्मीबाई ने सुलगाई थी उसको अंग्रेज़ो ने झांसी की जनता के खून से बुझाने का प्रयास किया और ऊपरी तौर पर वह बुझी सी दिखी परन्तु इतिहास साक्षी है कि स्वातन्त्र्य युद्धो की आग इस प्रकार कभी बुझाई नही जा सकी। झांसी म कहा-न-कही वह छिपी हुई धुधुआती रही। सन् १९१४ के विश्व युद्ध के समय जब भारतीय क्राति के पुन विस्फोट का समय आया और सेना के पुन सशस्त्र क्रान्त्यात्मक विद्रोह के प्रयास भारतीय क्रान्तिपथिको ने किए तो उस समय बुंदेलखण्ड की तरफ का प्रतिनिधित्व उन क्राति प्रयासो म झांसी के श्रीयुत परमानदजी ने किया। वास्तव म परमानन्द झासी के न होकर ज़िला हमीरपुर के ग्राम राठ के थे। परन्तु वे 'झांसी के परमानन्द नाम से ही विख्यात हैं क्योकि उक्त आन्दोलन की अखिल भारतवर्षीय व्यवस्था म झांसी की ऐतिहासिक रूप मे अधिक ख्याति रही। श्रीयुत परमानन्द ने समुद्र पार जापान अमेरिका मलाया आदि देशो की यात्रा भी अपने क्रान्तिकारी कार्य-कलाप के अतर्गत की और जहाँ गये वहा जनता और सिपाहियो का ब्रिटिश साम्राज्य वादियों के विरुद्ध सघर्ष करने को प्रेरित करते रहे। सन १९१२ म वे टोकियो पहुचे और क्रातिकारी सूफी अम्बिका प्रसाद के साथी मौल्वी बरकत उल्ला— जो भोपाल (म० प्र०) के निवासी थे—और जापान-वासदा विश्वविद्यालय म शिक्षक थे के निवास-स्थान पर जाकर ठहरे।

यहा प० परमानन्द ने टोकियो के सेनापति काउट ओकूमा से भेंट की और एक क्रातिकारी एशिया पार्टी बनाई। इसके चेयरमन थ काउट ओकूमा। पार्टी म सारे एशिया के प्रतिनिधियो को गठित किया गया। इसम भारत का प्रति निधित्व कर रहे थ प० परमानन्द। क्राति की व्यूह रचना बनाई गई। इसका

जाता जावार और जमनी म प्रतिनिधियों ने प्रस्तुत किया जो सर्वसम्मति स स्वीकार हुआ।

सन् १९११ म प० परमानन्द को अमरिका मे लाला हरदयाल का पत्र मिला और व अमरिका चले आय। वहाँ उन्होंने लालाजी के सहयोग स दस सहस्र नौजवानों को संगठित कर कैलीफोर्निया म एक सभा की। इस सभा म १० जुलाई १९१४ को पं० रामचन्द्र पेशावरी ने एक क्रांतिकारी कविता पढ़ी। (१९६३ का स्वय प० परमानन्दजी द्वारा संकलित) जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

> हिन्द की तारीख मे है आज का दिन यादगार।
> गदर की जबतक लहर चलती थी पतन के आर-पार।
> शोर था हरसूँ प पदा थी शहादत आखिरकार।
> था हर इक हिन्द वाला आजादी पर परवाना वार।
> गूँज उठती थी उठो मारो फिरंगी आज तुम।
> कौम का झंडा उठा लो से लो तख्तो ताज तुम।
> दुख भरी आवाज से वादेसबा ने यों कहा।
> गदर का पयाम लेकर हिन्द भर मे कूद जा।
>
> × × ×
>
> इसलिए उठो औ ले लो कसम, अपनी जान से।
> दूर कर देंगे गुलामी जल्द हिन्दुस्तान से।
>
> × × ×

प० परमानन्द दस सहस्र शस्त्र-सज्जित नौजवानो को लेकर लौटे, और उन्होंने उनको भिन्न भिन्न केन्द्रो म क्रान्ति-योजना म सलग्न कर दिया।

अत म वे पुलिस के द्वारा पकड लिए गय और उन पर बहुत से साथियो के साथ लाहौर म राजद्रोह और सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के अभियोग म मुकदमा चला, जिसम अमर शहीद करतारसिंह सरावा पिंगले और अन्य साथियो के साथ उनको भी फाँसी की सजा सुना दी गई। परन्तु बाद म उनकी फाँसी की सजा आजन्म काले पानी की सजा म बदल गई और उनको १९१७ मे अण्डमान भेज दिया गया। वहाँ उन्होंने जेल मे कितने ही विद्रोहो और भूख हडतालों का नेतृत्व किया और जेल-जीवन क सभी प्रकार क अत्याचारों को उन्होंने २० साल निरन्तर भोगा। वहाँ क दुष्ट कुख्यात जेलर बारी साहब को ठोंकने के लिए एक बार उनको तीस बेंत भी लगाए गए थे। अतत सन १९३७ म कांग्रेस द्वारा प्रान्तीय स्वराज्य सरकारें स्वीकार किए जाने के समय वे जेल से छोडे गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उ हें पुन नजरबन्द कर लिया गया।

युद्ध समाप्त होने पर ही उन्हें छोड़ा गया। सौभाग्य से श्री परमानन्दजी अभी भी जीवित हैं और अमृतसर में सिख मिशनरी कालिज में प्राध्यापक हैं।

'युद्धोत्तर काल में सुप्रसिद्ध क्रांतिकारियों अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, स्वर्गीय शचीन्द्रनाथ सान्याल और जोगेशचन्द्र चटर्जी आदि के नेतृत्व में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन के रूप में इन प्रयासों को पुनरुज्जीवित किया। इस क्रांतिकारी संगठन में झांसी को भी विधिवत जोड़ लिया गया था। श्री जोगेशचन्द्र चटर्जी ने झांसी के स्व० श्री रामचरण कक्कड़ से संपर्क स्थापित किया। परन्तु दुर्भाग्य से उनकी अकाल मृत्यु हो गई। इसके पूर्व कुछ लोगों के आस पास छुट-पुट क्रांतिकारी दल संगठित होते ही रहते थे। ये किसानों, उत्पीड़ितों और उनका उत्पीड़न करनेवालों के विरुद्ध क्रांतिकारी व आतंकपूर्ण कामों के लिए आवश्यक धन और शस्त्रों का संग्रह करते रहते थे। झांसी में ऐसे स्वतः उद्भूत छुट-पुट प्रयासों में सर्वश्री कृष्णगोपाल शर्मा, मथुराप्रसाद गंधी, छैलीलाल और अयोध्याप्रसादजी के प्रयासों का उल्लेख किया जा सकता है। ये सभी शस्त्रास्त्र कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिए गये थे। श्री कृष्णगोपाल शर्मा को साढ़े चार साल और छैलीलाल और मथुराप्रसाद गंधी को डेढ़-डेढ़ साल का कठोर कारावास का दण्ड मिला था। श्री अयोध्याप्रसाद इस मुकद्दमे में छूट गये थे। सजा भोगकर छूटने के बाद श्री कृष्णगोपाल मुख्यतः कांग्रेस संगठन के ही कार्य में लग गए। श्री अयोध्याप्रसाद का संपर्क कम्युनिस्टों से हो गया और वे झांसी के एक अन्य उत्साही कार्यकर्ता श्री लक्ष्मणराव कदम के साथ सुप्रसिद्ध मेरठ षड्यंत्र केस में पकड़ लिए गये। इसमें दोनों को सजा दी गई और वे कुछ साल जेल में रहे।

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन ने १९२३ में श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी को झांसी शाखा संगठित करने के लिए नियुक्त किया था। श्री बख्शी ने झांसी में आकर मास्टर रुद्रनारायणसिंह से सम्पर्क स्थापित किया जिन्होंने झांसी के नौजवानों को आकृष्ट करने के लिए एक अखाड़ा सा खोल रखा था। क्रांतिकारी दल के लिए नौजवानों का चुनने के लिए यह अखाड़ा बहुत ही उपजाऊ सिद्ध हुआ और इसी अखाड़े से क्रांतिकारी दल को श्री सदाशिवराव मलकापुरकर, विश्वनाथ गंगाधर वैशम्पायन और भगवानदास माहौर (साहित्य महोपाध्याय—डा० भगवानदास माहौर) जैसे क्रांतिकारी मिले। दर्जनों नौजवान इस अखाड़े के माध्यम से मास्टर रुद्रनारायण के आस पास जमा हो गए और फिर उनका परिचय श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी से कराया गया। इस प्रकार उपयुक्त नौजवानों द्वारा झांसी में क्रांतिकारी दल की एक दृढ़ शाखा स्थापित हो गई।

'श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी के द्वारा रुद्रनारायणसिंह का सम्पर्क रामप्रसाद

सिम्मिलित न हुआ। इनमें चन्द्रशेखर आजाद भी थे। सन १९२४ में श्री आजाद पार्टी के काम से झांसी आए और वे दल में शामिल ही न प्रविष्ट नौजवानों से भी मिले। इन नव प्रविष्ट नौजवानों में से जो बाद में थे बहुत प्रभावित हुए। अब रुद्रनारायण से उनका घनिष्ठ मित्रता का सम्बन्ध हो गया।

"क्रांतिकारियों ने काकोरी रेलवे स्टेशन के निकट एक गाड़ी को खड़ा करके सरकारी खजाना लूट लिया था। इस सिलसिले में १९२५ में धरपकड़ हुई और उक्त दल के प्राय सभी सदस्य पुलिस द्वारा पकड़ लिए गए। इनके विरुद्ध मुकदमा चला जो काकोरी षडयंत्र केस के नाम से विख्यात है। फिर कुछ लोग पुलिस की पकड़ में आने से बचे, परन्तु अन्त में चन्द्रशेखर आजाद को छोड़कर शेष सब पुलिस की पकड़ में आ गए। इस प्रकार अवशिष्ट दल के नेतृत्व का भार स्वाभाविक रूप से श्री चन्द्रशेखर आजाद के कंधों पर आया। वे एक फरार क्रांतिकारी अभियुक्त के रूप में छिपे हुए झांसी आये। जैसा कि *हम पहले लिख चुके हैं कि कुछ समय तक झांसी ओरछा के बीच झांसी से लगभग* ७ मील दूर ओरछा राज्य में ढिमरपुरा ग्राम के नजदीक एक छोटी नदी सातार के तट पर एक कुटिया में ब्रह्मचारी साधु वेष में रहे।

"सदाशिव क्रांतिकारी दल की झांसी शाखा के नेता थे और इस काम में इनके सहायक थे, श्री विश्वनाथ गंगाधर वैशम्पायन और भगवानदास माहौर। आजाद ने झांसी के आस-पास व देशी राज्यों जैसे दतिया, खनियाधाना आदि में भी अपने मित्र और सहायक बना लिए थे, जिनमें दतिया के दीवान नाहरसिंह और खनियाधाना राज्य के भूतपूर्व राजा श्री खलकसिंह जू देव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दीवान नाहरसिंह ने आजाद को कुछ समय तक अपने यहां रखा और झांसी दल के सदस्यों को हथियारों का प्रयोग सीखने के लिए सुविधा प्रदान की। ऐसा ही खनियाधाना के राजा खलकसिंह जू देव ने किया। इस 'अपराध' के लिए उन्हें बाद में शासनाधिकार से वंचित किया गया।

"हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना ने लाहौर में देश के वयोवृद्ध नेता लाला लाजपतराय पर पाशविक लाठी प्रहार को अपने राष्ट्रीय सम्मान के विरुद्ध घोर अपमान की बात समझा और उसे लगा कि उसे जनता और सरकार को भी अपने अस्तित्व का प्रमाण देना चाहिए। क्रांतिकारी दल की केन्द्रीय समिति ने निश्चय किया कि लाला लाजपतराय पर लाठी प्रहार और इस प्रकार राष्ट्र का अपमान करने के लिए जो जिम्मेदार हैं उनको दिन दहाड़े गोली मारी जाय और इस प्रकार अपने राष्ट्रीय सम्मान की क्षतिपूर्ति की जाय। इस काम में झांसी का योग यह था कि भगवानदास माहौर को (जो उस समय ग्वालियर

मे बी० ए० के विद्यार्थी थे) इस काय म भाग लेने क लिए बुलाया गया और उन्होंने चन्द्रशेखर, भगतसिंह सुखदेव, राजगुरु विजयकुमार सिनहा के साथ इस काय को सम्पन्न करने म भाग लिया। लाहौर के असिस्टेंट सुपरिन्टेण्डेन्ट मि० सान्डस को लाहौर के पुलिस कार्यालय के सामने ही दिन दहाडे गोली स मार दिया गया। जिन्होंने इस काय म भाग लिया था वे घटनास्थल स साफ बचकर लाहौर म अपने गुप्त स्थानों को लौट आए। भगवानदास माहौर झासी वापस आ गए और आज़ाद भी। कुछ समय बाद पुलिस कुछ धरपकड करने म सफल हुई और वह प्रसिद्ध मुकद्दमा—'लाहौर षडयत्र केस' प्रारम्भ हुआ जिसके अभियुक्त थे भगतसिंह और उनके अन्य साथी।

"बाद म श्री सदाशिव और भगवानदास दोनो सितम्बर १९२९ म भुसावल स्टेशन पर हथियारो और बमो के साथ गिरफ्तार कर लिए गये। उन पर अलग से जलगाव की सेशन अदालत म मुकदमा चल रहा था तो सदाशिव और भगवानदास न वासी के शकरलाल मलकापुरकर (सदाशिव के बडे भाई) और श्री र० वि० धुलेकर की सहायता स, जो यहा मुकदमे की पैरवी करते थे, आज़ाद से एक और पिस्तौल पुलिस की हिरासत म होने पर भी प्राप्त कर ली। यह पिस्तौल लाहौर षडयन्त्र केस के अभियुक्तों के खिलाफ गवाही देने वालों को जान से मार डालने के लिए थी। ये इकबाली गवाह थे—फणीन्द्रनाथ घोष और जयगोपाल। इनको भगवानदास और सदाशिव के विरुद्ध गवाही देने के लिए जलगाव सेशन अदालत मे हाजिर होना था। भगवानदास माहौर ने उन पर भरी अदालत म गोली चलाई। वे दोनो माफीखोर इकबाली गवाह घायल हो गए, परन्तु मरे नही। इसके लिए श्री भगवानदास माहौर को १९३० म आजन्म काले पानी की सज़ा और सदाशिव को पन्द्रह वर्ष के लिए काले पानी की सजा हुई। ये दोनो बम्बई की काग्रेस सरकार द्वारा १९३८ म छोड दिए गए। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इन दोनो को भारत रक्षा कानून के अतगत १९४० मे पुन नजरबन्द कर लिया गया और सन् १९४५ म युद्ध की समाप्ति पर ही छोडा गया।

इसी प्रकार एक अन्य क्रांतिकारी दल के सदस्य श्री राममेवक रावत श्री नित्यानन्द और श्री रतन हयारण थे। ये लोग ऐसी बम बना रहे थे। बनाते समय बम फट गया जिसमे रामसेवक रावत का बाया हाथ उड गया और नित्यानन्द की एक आख मारी गई। उन पर विस्फोटक पदार्थों के कानून के अतगत मुकदमा चला और उसमे उन्हें सजा हुई।'

(इंदौर अभिनन्दन ग्रथ, पृष्ठ १०)

# रुस्तम-ए जहां गामा पहलवान

मल्ल विद्या में भारतवर्ष ऐतिहासिक दृष्टि से अपना सबसे में एक विशेष स्थान रखता आया है। महाभारत काल में भीम और कीचक का मल्ल युद्ध इसका प्राचीन प्रमाण है। द्वापर में राजा कंस के समय में मल्ल विद्या का प्रमुख प्रशिक्षण केन्द्र मथुरा रहा है और किष्किंधा के वीर हनुमान, बालि और सुग्रीव तो मल्ल विद्या में अग्रणीय रहे ही हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में मल्ल विद्या के महत्त्वपूर्ण संस्थान प्रतिष्ठित रहे हैं। इस मल्ल विद्या की प्रशस्ति में उरई के स्व० काली कवि रचित 'हनुमत पताका' का यह कवित्त हम उद्धृत करेंगे—

> बठकर बायें तर बगल तरें हो पठ,
> कमर समेट कर बल भरपूर में।
> काली कवि गोट पर पकर लगोट पट,
> पींड कर भीड़त मिलायें देत घूर में।
> घूम कर चक्कर की निकर तरें सा वीर,
> भूमि पर चाहत पछारो कपिशूर में।
> झूमकर झपक झपेटत भुजान बीच,
> लूमकर लपक लपेटत लगूर में।

इससे यह ज्ञात होता है कि मल्ल विद्या का प्रभाव परम्परागत गंगा, यमुना सिंध बेतवती और पुष्पावती आदि सरिताओं के तट पर बसे हुए नगरों के राजाओं पर अत्यधिक रहा है जिन्होंने अपने अपने नगरों में मल्ल विद्या के संस्थानों को प्रस्थापित कर यहां के पहलवानों को प्रश्रय दे प्रोत्साहित किया है।

इस शती में विश्व प्रसिद्ध पहलवान गामा का जन्म सन १८३६ में पुष्पावती सरिता के निकट बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक नगर दतिया के गोरीपुरा में अजीज पहलवान के घर हुआ था। अजीज के दो लड़के और दो लड़कियां थीं बड़ा लड़का गामा और छोटा इमाम बक्स।

गामा और इमाम बक्स के पिता गरीब थे इस कारण इनका भरण पोषण इनके नाना नौन पहलवान के प्रश्रय द्वारा चलता था।

नौन पहलवान दतिया के महाराज भवानी सिंह के प्रमुख अंगरक्षक थे। इस कारण वे बड़ी ठसक के साथ रहते और कभी कभी शान में आकर नाग रिकों के साथ अभद्र व्यवहार भी कर बैठते थे उनका यह व्यवहार सम्मानित व्यक्तियों को बड़ा खटकता था।

एक बार दतिया के एक प्रमुख व्यक्ति लाडिले पण्डा के साथ उन्होंने एक सभा म अभद्र व्यवहार किया। यह पण्डा के अन्तम म खटक गया। पण्डा बड़े चतुर थ मौन रहे। दशहरा के दिन जबकि राजा द्वारा पडा (भसा) मारा जाता है तब सरदार और सैनिक पडा पर अपने तल्वार के हाथ दिखाने के लिए उपस्थित रहते हैं। राजा के भाले म आहत होकर जब पडा भागता है, तब सरदार और सनिक उसका वध करते है। आहत पडा जब प्राण बचाने का आविन हो भागा तब लाडिले पण्डा ने अपना बर चुकाने क लिए नौन पहलवान पर तल्वार द्वारा एसा जनेवा (जनेऊ सदृश) वार किया कि वह एक ही वार म ढर हो गया। उस भगदड म कौन किसको देखता था। पडा अपन प्राण लेकर इधर उधर भाग रहा था और सनिक अपनी अपनी तलवार द्वारा बहादुरी दिखाने क लिए उसके पीछे पीछे चल रह थे।

नौन पहलवान के निधन के पश्चात अजीज का भी देहावसान हो गया। बेचारे गामा और इमाम बक्स पर बडे सकट का सामना आ गया था। इस समय गामा तरह और इमाम बक्स दस वष की अवस्था म पदापण कर रह थ। किंतु य दोना थे बड़े सुडौल गार नार और होनहार। इस कारण मल्ल विद्या म रुचि रखन वाले पडासी इन दोना को कसरत करन को प्रोत्सा हित करत और स्नेहवश इनसे एक पस म सौ दण्ड बठकें लगवाते और यह भी पाच पाच सौ दड बठकें आराम से लगा लेते। इस कारण इन दोना का पाच पाच पसे मिल जात। उस समय दूध तीन पस सेर बिकता था। इस कारण दोना का व्यायाम के पश्चात डेढ डेढ सेर दूध पीने को मिल जाता था।

गामा के मामा छुट्टू पहलवान महाराज गुलाबसिंह रीवा के अखाडे क उस्ताद थे। जब उन्हें गामा का हाल ज्ञात हुआ, तब वे उसे अपन साथ रीवा ले गए। उनकी देख रेख म ही गामा के बदन म गठन और भुज दण्डो म बल आया और यहीं से इनका दगल म कुश्तो का लडना प्रारम्भ हुआ। सवप्रथम गामा ने टीकमगढ क दगल म वहा के प्रख्यात पहलवान घगाड को पराजित किया। गामा की इस कुश्ती स प्रभावित हो महाराज प्रतापसिंह न उसका राजकीय सम्मान किया और स्वण के चूरा, मेला और बीस हजार गजासाई रुपय उसे पुरस्कार म भेंट किय। इस सम्मान स गामा की ख्याति पूरे बुन्देलखण्ड म फल गई। तदुपरान्त गामा रीवा स अपनी जन्मभूमि दतिया वापस चले आय और महाराज भवानीसिंह के अखाडे मे, जो माधीबाग म है व्यायाम करने लगे। महाराज गामा की कुश्ती और दावा की प्रखरता को देख अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने सरकारी भण्डार मे पाच सेर दूध और ढाई सेर मवा बाध दिया।

सन १८९१ म इलाहाबाद की प्रदर्शनी म एक विशाल दगल का आयोजन किया गया था। इस दगल म विजयी पहलवान को गगा जमनी (सोन चादी)

गुर्ज पुरस्कार में देने की घोषणा की गई थी। इस दंगल में गामा ने चिक्का नामक प्रसिद्ध पहलवान को हराकर गुर्ज का पुरस्कार प्राप्त किया।

गामा की इस कुश्ती से पं० मोतीलाल नेहरू भी अत्यधिक प्रभावित हुए। वे गामा को अपने साथ इंग्लैंड ले गए और वहां भी गामा ने सरकस में होने वाले धरपटक वाले दंगल में बिना किसी मल्ल विद्या की कला द्वारा जिबिस्को नामक पहलवान को धर पछाड़ा। इस जीत पर गामा को ढाई हजार पौण्ड पुरस्कार में प्राप्त हुआ। अब तो गामा को विदेशों में भी महत्वपूर्ण सम्मान प्राप्त होने लगा।

जिबिस्को अपनी इस पराजय से अत्यन्त लज्जित हुआ और वह भारत आकर अपने साथ दो पहलवानों को ले गया तथा सन १९२४ में उसने भारतीय मल्ल विद्या में प्रवीण होकर सन १९२६ में फिर भारत के गामा पहलवान को ललकारा। *यह चैलेंज जिबिस्को ने पोलैण्ड से दिया था।* इस समय गामा पचास वर्ष की अवस्था में पदार्पण कर रहे थे और वे पटियाला नरेश भूपेन्द्रसिंह के यहां मल्ल विद्या के प्रशिक्षण केन्द्र में नियुक्त थे।

गामा ने जिबिस्को की चुनौती को स्वीकार किया और यह कुश्ती पटियाला में ही होनी निश्चित हुई। मल्ल विद्या का यह प्रदर्शन बड़ा महत्वपूर्ण था जिसमें पोलैण्ड का पहलवान जिबिस्को और भारत का पहलवान गामा भारतीय मल्ल विद्या में एक-दूसरे से विजय प्राप्त करने के लिए अखाड़े में उतरने वाले थे।

इस नामी कुश्ती का अवलोकन करने के लिए देश और विदेश से सहस्रों व्यक्ति एकत्रित हुए। पटियाला नरेश ने इसका समुचित प्रबंध दायित्व के साथ निभाया।

दोनों पहलवान बड़े दर्प के साथ अखाड़े में उतरे, हाथ मिलाए। गामा थे ठिगने कद के और जिबिस्को थे वजन में कुछ भारी और लम्बे। अपार जनसमूह के सम्मुख अखाड़े में जब दोनों भिड़े तब बिजली सी कौंधी और गामा ने धोबी पछाड़ दांव लगाया, क्षण में जिबिस्को चारों खाने अखाड़े में चित आया, जिसकी छाती पर सवार थे गामा पहलवान। करतल ध्वनि से आकाश मण्डल गूंज गया।

पटियाला नरेश भूपेन्द्रसिंह के हर्ष की सीमा न रही किन्तु वे थे बड़े चतुर। वे सर्वप्रथम जिबिस्को से गले मिलते हुए बोले— मैं तुमको धन्यवाद देता हूं कि तुमने भारतीय मल्ल विद्या को सीखा और भारत के प्रमुख पहलवान से कुश्ती लड़ी। इस प्रसन्नता में मैं तुमको पचीस हजार रुपया भेंट करता हूं।

बाद में वे हर्षित हो बड़ी आत्मीयता के साथ गामा को गले लगाते हुए बोले— मांगो क्या मांगना चाहते हो?

गामा महाराज के सामने मस्तक झुकाते हुए बोले— 'महाराज, आपका

ही नमक खाता हूँ। —हा, यह इच्छा है कि आज पाच मिनट के लिए जेल का फाटक खोल दिया जाय। महाराज ने स्वीकार किया। तदुपरान्त दरबार मे महाराज ने गामा को गगा जमना गुज और रुस्तम ए जहा की उपाधि से अलकृत किया।

सन १९५१ के पश्चात गामा लाहौर चले गए जहा सन् १९६२ म छियासी वष की अवस्था म उनका देहावसान हो गया।[1]

बुदेलखण्ड की हिन्दू मुस्लिम एकता को जीवित रखने वाले इस रुस्तम ए जहा गामा की कब्र लाहौर मे है और उनका मकान आज भी स्मृति रूप म दतिया (म०प्र०) के हारीपुरा म विद्यमान है जो गामा की महानता और मल्ल विद्या मे उनकी अमर कीर्ति को आज भी जीवित रखे हुए है।

## हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचन्द

श्री ध्यानचन्द का जन्म सन् १९०५ म विन्ध्याचल की हरित भरित मनोरम तलहटी के निकटस्थ तीर्थराज प्रयाग म हुआ। जहा विन्ध्यपुत्री वत्रवती ने यमुना को सौहार्द्रपूर्ण विनोद भाव से अपने पावन अचल म समेट गगा की गोद म भेंट किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मा विन्ध्यवासिनी और वत्रवती, इन दोनो शक्तियो की कठिन तपस्या से ही विश्वविजयी ध्यानचन्द का जन्म हुआ हो, जिन्होने बुन्देलखण्ड का कीर्ति केतु विश्व भर म फहराया। ध्यानचन्द आज भी देश विदेश म 'बुन्देलखण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है।

ध्यानचन्द की हाकी म कलात्मक जादूगरी के सम्बन्ध म भारतीय और विदेशी लेखको द्वारा समय समय पर अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओ म प्रकाशित हुए हैं।

हाकी क्षेत्र म विश्वविजयी ध्यानचन्द का अतुलनीय मनोबल, त्याग और श्रम की साधना द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

ध्यानचन्द का विद्याध्ययन फतेहगढ छावनी कालिज म हुआ। जब वे पन्द्रह वष की अवस्था मे पदार्पण कर रहे थे, तब दिल्ली पल्टन म भर्ती हुए। तत्पश्चात वे अपने भाई रूपसिंह सहित झासी म निवास करने लगे।

---

१ गामा का यह वृहत वृत्तान्त लेखक ने गामा के प्रसिद्ध पहलवान भवानी दुबे के विवरण के आधार पर तैयार किया है। श्री दुबे गामा के प्रमुख मित्र थे और उनके साथ वर्षों पटियाला और अन्य स्थानों में रहे थे।

आजकल ध्यानचन्द एन० आई० एस० सस्था मोतीबाग, पटियाला के हाकी प्रशिक्षण केन्द्र के प्राध्यापक पद पर नियुक्त हैं, लेकिन उनका परिवार आज भी झाँसी में निर्मित उनके निवासस्थान में ही रह रहा है।

मैंने जब सन १९५८ में 'बुन्देली संस्कृति और साहित्य' पर कार्य का निश्चय किया तब श्री ध्यानचन्द पर लिखने की भी तीव्र अभिरुचि उत्पन्न हुई किन्तु मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। मेरा शोध कार्य जैसे जैसे पूर्ण होता जा रहा था वैसे वैसे श्री ध्यानचन्द के जीवन पर लिखने की लालसा भी प्रबलतर होती जा रही थी।

३० जून १९६८ के झाँसी के दैनिक जागरण में यह समाचार प्रकाशित हुआ—'मेजर ध्यानचन्द मैक्सिको ओलम्पिक के लिए आमंत्रित'—मन पत्थर प्रफुल्लित हो उठा और मैं उनकी खोज में प्रात हो सीपरी बाजार स्थित उनके निवासस्थान पर जा पहुँचा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि—'वे भीतर हैं—आप बैठिए—शीघ्र आ रहे हैं।'

श्री ध्यानचन्द अविलम्ब आए और अत्यन्त हर्षित भाव से मुझसे बैठने का आग्रह करने लगे। श्यामल गठीला बदन, विशाल मस्तक और कोमल मधुर वाणी। मैं अपना परिचय देने को हुआ, तो कहने लगे—'मिश्रजी, मैं आपको राष्ट्रीय आन्दोलन से जानता हूँ। आपकी राष्ट्रीय रचनाओं का भी स्मरण है' और तुरन्त अपनी पत्नी, पुत्री और पुत्र को बुलाया। मैं आश्चर्य में पड़कर सोचने लगा कि हॉकी के खिलाड़ी का भी काव्य से इतना प्रगाढ़ प्रेम। मेरे मनोभाव को समझ वे हँसते हुए बोले— मैं जब झाँसी आता हूँ तब वीर कवि अम्बिकेशजी द्वारा कविताएँ अवश्य सुनता हूँ।

काव्य के प्रति उनकी भावुकता की बात सुन मैं अत्यन्त प्रभावित हो उन्मुक्त कण्ठ से उन्हें अपनी सरस, सरल और भावोत्पादक बुन्देली रचनाएँ सुनाने लगा जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे— अब कहिए मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

मैंने निवेदन किया—'हाकी सम्बन्धी गतिविधियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।' वे बड़ी गंभीर मुद्रा में अपने अध्ययन के माध्यम से कहने लगे— भारत हाकी की खान है और इसमें विशेष गुण यह है कि यहाँ का खिलाड़ी अपने अथक परिश्रम और ध्यान द्वारा जितना अभ्यास करता है उतना किसी देश का खिलाड़ी नहीं कर पाता, क्योंकि वह उसे केवल खेल की दृष्टि से खेलता है।

हाकी-व्यूह के सम्बन्ध में वे अपने विचार प्रकट करते हुए बोले— हाकी फेडरेशन की चयन समिति में आमूल चूल परिवर्तन होना चाहिए। केवल ख्याति प्राप्त और सीनियर सदस्य होने की दृष्टि से ही चयन समिति में सदस्या

को नही लेना चाहिए।"

मेरे यह प्रश्न करने पर कि "क्या हाकी के खेल में मल्ल विद्या की भांति शक्ति बल से सफलता प्राप्त करने की उम्मीद रहती है?" उत्तर में उन्होंने अपने शाश्वत अनुभवों द्वारा कहा— "शक्ति तो प्रमुख होती ही है परन्तु खेल के मैदान में खिलाडी को विजय की प्राप्ति उसके मनोबल द्वारा होती है।"

इस प्रसंग में वे एक महत्वपूर्ण संस्मरण सुनाते हुए बोले—"भारत के राष्ट्रपति ने बुन्देलखण्ड के तीन प्रसिद्ध कलाकारों को उनकी भिन्न भिन्न कलाओं पर मुग्ध हो 'पदम भूषण' की उपाधियों से अलंकृत किया है यह गौरव एक साथ किसी अन्य राज्य को प्राप्त नही है। इस गौरव से विभूषित है प्रथम राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त डा० वृन्दावनलाल वर्मा और मैं।"

इस वृत्तान्त से मुझे ज्ञात हुआ कि मेजर ध्यानचन्द बुन्देलखण्ड ही नहीं प्रत्युत पूरे भारत की यश कीर्ति के लिए हृदय से प्रयत्नशील हैं क्योंकि हाकी के प्रत्येक खिलाडी को ज्ञात है कि ध्यानचन्द सन १९२८ में एम्सटरडम आलम्पिक में भाग लेने वाली भारतीय टीम के सदस्य थे, जिसमें भारत का सर्वप्रथम ओलम्पिक स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ था।

सन १९३२ में लासएन्जल्स आलम्पिक में भारत को स्वर्ण पदक प्राप्ति के पश्चात सन १९३६ में बर्लिन ओलम्पिक में ध्यानचन्द ने विजयी भारत टीम को स्वयं अपने कुशल करों द्वारा सम्हाला था।

विदेश भ्रमण में एक बार खेल के समय कुछ खिलाडियों ने ध्यानचन्द पर यह आरोप लगाया कि इनकी स्टिक में हो सकता है कि चुम्बक शक्ति का प्रयोग हुआ हो। कारण यह था कि मैदान के मैदान में गेंद इनकी स्टिक की अक्सर संगिनी हो बनकर चला करती थी। जब इनको यह बात ज्ञात हुई तब इन्होंने इस भ्रम के निवारण के लिए हँसते हुए अन्य खिलाडी से एक जीर्ण स्टिक प्राप्त कर अनेक गोल कर दिखाए। जनसमूह यह देख मुग्ध हो तालियाँ बजा उठा। यहीं से ध्यानचन्द को —हाकी का जादूगर—की उपाधि से विभूषित किया गया।

श्री ध्यानचन्द के खेल से प्रभावित हो देश और विदेश ने इनका जो सम्मान किया है उसका ब्यौरा संक्षेप में इस प्रकार है

अभिनन्दन पत्र—दिनांक ११ अगस्त १९५६ हीरोज क्लब झांसी

अभिनन्दन पत्र—दिनांक २८ ८६ डी० एम० ए० मेरठ सदस्य वैस्टन कचहरी रोड मेरठ

पदम भूषण उपाधि—मैं भारत का राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद व्यक्तिगत गुणों के लिए आपको सम्मानार्थ—पद्म भूषण—प्रदान करता हूँ।

दिनांक ६ अक्तूबर १९५६ राजेन्द्र प्रसाद

नई दिल्ली राष्ट्रपति

पलायाम वोटटाई
अभिनन्दन पत्र—दिनाक १० ४ ५८

प्रेसीडेण्ट एण्ड मेम्बर कोंसिल
अभिनन्दन पत्र—दिनाक ११ ४ ५८ पट्टी-पचायत

वालि यग एसोसियेशन
अभिनन्दन पत्र—दिनाक १३-६-६८

वास्तव म पद्मभूषण मेजर ध्यानचन्द ने हाकी की कुशल कला से बुन्देलखण्ड का ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण भारत का गौरवान्वित किया है।

द्वितीयोन्मेष

# वैभव खण्ड

# बुन्देलखण्ड का कीर्तिगान

इतिहासवेत्ताओं ने बुंदेलखण्ड को भारतवर्ष का हृदय कहा है तो भूगोल शास्त्रियों ने विन्ध्याचल को हिमालय से भी पुरातन बताया है। विन्ध्याचल की तलहटी में एक विशाल बीहड़ वन है जो विन्ध्य श्रेणियों से घिरा है जहां उच्चतम शृंगों से मनोरम झरने और प्रपात प्रवाहित होते रहते हैं। इस स्थान को विन्ध्य क्षेत्र कहते हैं। क्षेत्र में जाने का मार्ग श्री अष्टभुजी के मंदिर से दक्षिण की ओर गया है।

पौराणिक कथाओं में विन्ध्य क्षेत्र को अगस्त, अंगिरा विश्वामित्र आदि ऋषियों की तपोभूमि बताया गया है। बुंदेलखण्ड को जिस प्रकार तपोभूमि की मान्यता प्राप्त है उसी प्रकार वीरभूमि, कवि भूमि और प्राकृतिक छटा से सज्जित सौन्दर्य भूमि को भी सहज ख्याति मिली है।

आरम्भ से ही बहुत से कवियों ने बुंदेलखण्ड के सम्बन्ध में अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा सुंदर भाव प्रकट किए हैं। हम यहां कुछ अंश उद्धृत कर बुंदेलखण्ड के सर्वतोमुखी वैभव का दर्शन कराना चाहेंगे

## वन्दना

विन्ध्याचल अचल क्षमा की क्षमता को लिये,
विश्व को सिखा रहा है मानवी परम्परा।
मान में मान्यता का विमुता का वर वीरता का,
पाठ पढ़ा रहा, छत्रसाल रण बाकुरा।
सुर वृन्द, लज्जित हो करता सराहना है
कानन यहां का देख देख के हरा भरा।
बेतवा धसान, सिन्ध, केन करतीं कलोल
वन्दौं 'मित्र' विमल बुन्देल की वसुन्धरा।

('मित्र')

कविवर श्री रहीमखानखाना ने बुन्देलखण्ड पर अपने विचार प्रकट करते हुए यह भाव व्यक्त किया था कि यह वही प्रदेश है जहां औरों की क्या कहें अवधनरेश श्री रामचन्द्र ने भी संकट आने पर शरण ली थी।

जिहि पर विपता परत है सो आवत यह देश।
चित्रकूट में रम रहे 'रहिमन' अवध नरेश।

हिन्दी के प्रथम आचार्य कवीन्द्र श्री केशवदास ने बुंदेलखण्ड के प्रमुख स्थान ओरछा नगर का वर्णन करते हुए लिखा

चहूँ भाग बाग वन मानहु सघन, घन,
सोभा की सी साला हंस माला सो सरितवर।
ऊंचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की सी गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत नरिन्द और,
घर घर देखियतु देवता से नारि नर।
'केसोदास त्रास जहाँ केवल अदृष्ट ही की,
वारिये नगर और ओरछे नगर पर।

(विज्ञान गीता, प्रथम प्रभाव छन्द ।)

गोस्वामी श्री तुलसीदास ने रामचरित मानस में बुंदेलखण्ड के प्रमुख तीर्थ स्थान चित्रकूट का यों वर्णन करते हुए लिखा

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग विहग विहारू।
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते।
विन्ध्य मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिन विपुल बड़ाई पाई।

चित्रकूट के विहग मृग बलि विटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिनराति।

मऊरानीपुर निवासी संस्कृत हिन्दी ब्रजभाषा तथा उर्दू के विद्वान स्व० [illegible] श्री घनश्याम पाण्डेय ने बुंदेलखण्ड की प्राकृतिक छटा का वर्णन इन शब्दों में किया

प्राकृत गढ़े हैं गढ़ सुदृढ़ पहाड़ियों के,
झाड़ियों के कुसुम मरीचो मारतण्ड की।
सिंह शावकों के साथ अंगज मिला के हाथ,
खेलें जहाँ होनों क्षत्री बालक उदण्ड की।
सघन अरण्य है शरण्य फल वन्य स्वाद
विप्र घनश्याम घन घरणि घमण्ड की।
विधि की विभूति मूर्तिमान सी हुई है जहाँ,
परम पवित्र भूमि है बुंदेलखण्ड की।

(जागरण २० ६ ६८ पृष्ठ ४)

इसी प्रकार मऊरानीपुर निवासी राष्ट्रकवि स्व० श्री घासीराम व्यास ने अपनी यशस्विनी लेखनी द्वारा बुंदेलखण्ड पर अनेक भावपूर्ण कवितायें लिखी हैं उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत हैं

जाके शीश जमुन दुलाब चौंर मोद मान,
नर्मदा पखार पाद पदम पुण्य पेखो है।
कटि कल केन, किंकिणी सी कलधौत कान्ति,
बेतवा, विशाल मुक्त माल कर लेखो है।
व्यास कहैं सोहै शीश फूल सम पुष्पावति,
पायजेब पावन पयस्विनी परेखो है।
ऐहो मनि साची कहो, सांची कहो सांची कहो,
दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहुं देखी है।

चित्रकूट, ओरछो, कालिंजर उन्नाव, तीथ,
पन्ना, खजुराहो, जहां कीर्ति झुकि झूमी है।
जमुन पहूज, सिन्ध, बेतवा, धसान, केन,
मंदाकिनि, पयस्विनी, प्रेम पाय घूमी है।
चम्पत, वीरसिंह, राव चम्पतराय छत्रसाल,
लाला हरदौल भाय चाव चित चूमी है।
अमर अनन्दनीय, असुर निकन्दनीय
वन्दनीय विश्व मे बुन्देल खण्ड भूमी है।

वंदित विश्व मे खण्ड-बुन्देल है
और नहीं जिसका कहीं सानी।
हो गया धन्य धरा मे वही,
जिसने कभी जो यहा का पिया पानी।
खेलें सदा नृत्ति आंगन मे जहाँ
वीरता संग स्वतन्त्रता रानी।
आज भी शान से ऊँचा किये सर,
गा रहे हैं गिरि शृंग कहानी।

बाकुरे बुन्देलन के खगन के खेल देख,
मसक समान शत्रु होत रन बौना से।
धन्य भूमि जहां वीर आनत न शक मन,
तन्त्र से न मन्त्र से न जादू से, न टौना से।
छीने छत्र म्लेच्छन सलौने कर लीने यश,
कीने काम कठिन अनेक अनहोना से।
जाके सतहौना सुठि लौना मगराजन कौं
हस हँस बाँध लेत मंजु मगछौना से।

(प्रेमी—अभिनन्दन ग्रंथ पृष्ठ ६०२)

काल्पी निवासी कविवर स्व० श्री रसिकेन्द्र ने बुंदेलखण्ड की पावन भूमि के सम्बंध में अपने भावों को व्यक्त करते हुए गाया

उवरा भव्य धरा हैं यहाँ की,
छिपे पड़े रत्न यहाँ अलबेले ।
मुण्ड चढ़े यहीं चण्डिका पै,
उठ रुण्ड लड़े हैं यहीं असि लेले
खण्ड बुंदेल की कीर्ति अखण्ड,
बना गये वीर प्रचण्ड बुंदेले ।
झेल के मकट खेल के जान पै,
खेल यहीं तलवार से खेले ।

(प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ५८३)

उरई निवासी राष्ट्रीय कवि स्व० बेनीमाधव तिवारी ने बुंदेलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवियों और वीरों को एक साथ ही स्मरण किया है

जन्म औ निवास व्यास जी का काल्पी के पास,
रचे गये जहाँ धर्म ग्रंथ ज्ञान मारतण्ड ।
भूषण, औ मतिराम केशव का क्रीड़ा धाम
तुलसी बिहारी आदि कवि प्रकटे प्रचंड ।
लक्ष्मीबाई, नाना, आल्हा ऊदल का वीर बाना,
छत्ता का जमाना है विभूति जिसकी अखण्ड ।
परम पुनीत जम्बू द्वीप में भरत खण्ड,
पुण्य खण्ड उसका है अपना बुंदेलखण्ड ।

और कविवर प० श्री द्वारिकेश मिश्र ने बुंदेलखण्डी में ही इस प्रदेश की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया है

जाकी मांग सुहाग सजोउत जमुना, श्याम सुहाउन ।
नचत नरमदा, रुच रुच माउर रुचिर रचाउत पावन ।
गमकत गान गढ़त बीन, व्यारमा, सुनार, सुधारत ।
चम्बल टौंस, हौंस-हुलसी, जुग नुगन कंगन सिंगारत ।
गहि गहगहे गुदाउत गुदना सौंन सिंधु, गुदनारी ।
केन, कुंवरी कसत किंकिन धारत धसान, धंधसारी ।
पुलक पहूज जामुन, पसुनि, गर हार पहिराउत ।
महानदी, बागन, सिंधु, सरमाला सी सरसाउत ।
कंचन बरन बनाउत बहु, कलि गंगा-बेत्रवती, सी ।
उमगत बहत पहारन हारन, तारन तरन सती सी ।

चित्रकूट, चित चेत देवगढ़, दूनी देत दिमानी ।
खजुराहो, कालिजर गौरव की जगमगत निसानी ।
हिमगिरि से ऊँचो विन्ध्या को सीस झुको अवनो है ।
परहित हेत निहू परब कौ जतन जित सवनो है ।
सतगुन भरो खरो निखरो जा के शुभ रज पानी मे ।
बन्दों वर बुंदेलखण्ड, वर बुंदेली बानी मे ।

(विपिन-वाणी पृष्ठ ४)

ओरछा नरेश स्व० वीरसिंह जू देव द्वितीय के राजकवि स्व० मुंशी अजमेरी जी थे । उन्होने अत्यन्त आह्लादित हो बुंदेली-साहित्य को अपनी अमर साधना द्वारा समृद्ध किया । अपनी यशस्विनी लेखनी से श्री अजमेरी ने बुंदेलखण्ड की कीर्ति को यो सजाया

चंदेलों का राज्य रहा चिरकाल जहा पर,
हुए वीर नप गण्ड मदन, परमाल, जहा पर,
बढा विपुल बल विभव बन गढ दुर्गम दुर्जय,
मंदिर महल मनोज्ञ सरोवर अनुपम अक्षय,
वही शौर्य सम्पत्ति मयी कमनीय भूमि है ।
यह भारत का हृदय रुचिर रमणीय भूमि है ॥
आल्हा ऊदल सदृश वीर जिसने उपजाए,
जिनके साके देश विदेशो ने भी गाए,
वही जुझौती जिसे बुंदेलों ने अपनाया,
इससे नाम बुंदेलखण्ड फिर जिसने पाया,
पुरावृत्त से पूर्ण परम प्रख्यात भूमि है ।
यह इतिहास प्रसिद्ध शौर्य सघात भूमि है ॥
यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अचल,
पूर्व ओर है टोस पश्चिमाचल म चम्बल
उर पर केन धसान वेतवा सिंध बही हैं
विकट विन्ध्य की शैल श्रेणियां फल रही हैं,
विविध सुदृश्यावली अटल आनन्द भूमि है ।
प्रकृतिच्छटा बुंदेलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है ॥
अडे उच्चगिरि और सघन वन लहराते हैं,
खडे खेत निज स्टा छबीली छहराते हैं,
जरख, तेंदुए, रीछ, बाघ स्वच्छन्द विचरते,
शूकर सावर, रोज, हिरन चीतल हैं चरते,

जिन्हें देख कर वीर उपासक कविवर भूषण,
भूल गये थे शिवाबावनी के आभूषण,
यह स्वतन्त्रता सिद्ध हेतु कटि बद्ध भूमि है।
सगराथ बुंदेलखण्ड सन्नद्ध भूमि है॥
यहा वीर महाराज देव से जग जोड़ना,
काल सर्प की पूछ पकड कर था मरोड़ना,
मानो प्रान अमान आन पर बिगड पडे थे,
बना राछरा शूर सुभट जिस भांति लडे थे,
रजपूती मे रगी सदा जो सुभट भूमि है।
वीर मयी बुंदेलखण्ड यह विकट भूमि है॥
लक्ष्मीबाई हुई यहाँ झासी की रानी,
जिनकी यह विख्यात वीरता सबने मानी,
महाराष्ट्र का रक्त यहा का था वह पानी,
छोड गया ससार मध्य जो कीर्ति कहानी,
अबला सबला बने यही वह नीर भूमि है।
वीरागना बुंदेलखण्ड वर वीर भूमि है॥
तुलसी, केशव, लाल, बिहारी श्रीपति, गिरधर
रसनिधि, रायप्रवीन पजन ठाकुर पदमाकर,
कविता मदिर-कलश सुकवि कितने उपजाए
कौन गिनाव नाम जाय किससे गुण गाए,
यह कमनीय काव्य कला की नित्य भूमि है।
सदा सरस बुंदेलखण्ड साहित्य भूमि है॥
ग्राम गीत ग्रामीण यहा मिलकर गाते हैं,
सावन, सरे, फाग, भजन उनको भाते हैं
ठाकुर द्वारे यहा अधिकता से छबि छाज,
मदिर के अनुरूप जहाँ सगीत—समाज,
यह हरिकीतन मयी प्रसिद्ध पुनीत भूमि है।
स्वर सकलित बुंदेलखण्ड सगीत भूमि है॥
यहाँ समय अनुसार सभी रस हम पाते हैं,
वन उपवन, बूटियाँ, फूल फल उपजाते हैं,
गिरि-वन भूमि प्रदत्त द्रव्य मिलते मन मानें,
गुप्त प्रकट हैं यहाँ हेम हीरन की खानें,
यह स्वतत्र महिपाल वृन्द मय मान्य भूमि है।
वसुन्धरा बुंदेलखण्ड धन धान्य भूमि है॥

यहां सोंयडा सिन्ध मध्य सनकुआ जहा है,
वह विस्तृत ह्रद स्वत सुनिर्मित हुआ जहा है,
इधर दुर्ग उत्तुंग उधर विंध्याचल ऊपर,
वर्षा मे वह दृश्य विलक्षण है इस भूपर
सनकादिक की तीव्र तपस्या स्थली भूमि है।
मध्य हृदय बुंदेलखण्ड वह भव्य भूमि है ॥
चित्रकूट गिरि यहा जहा प्रकृति प्रभुता है अद्‌भुत,
वनवासी श्रीराम रहे सीता लक्ष्मण युत,
हुआ जनकजा स्नान नीर से जो अति पावन,
जिसे लक्ष्य कर रचा गया धारा धर धावन,
यह प्रभु पद रजमयी पुनीत प्रणम्य भूमि है।
रमे राम बुंदेलखण्ड वह रम्य भूमि है ॥
यहा ओरछा राम अयोध्या से चल आये,
और उनाव प्रसिद्ध जहा बालाजी छाये,
वह खजुराहो तथा देवगढ अति विचित्र है,
त्यों सोनागिरि तीर्थ जनियों का पवित्र है,
तीर्थमयी जो सफल साधना साध्य भूमि है।
अति आस्तिक बुंदेलखण्ड आराध्य भूमि है ॥

(प्रेमी अभिनदन ग्रन्थ पृष्ठ ५६५)

मैंने भी अपनी पावन जन्म भूमि पर कुछ श्रद्धा सुमन अर्पित किए है।
दो छन्द प्रस्तुत है

हीरक की यहीं खान प्रसिद्ध है
लोह मे दीखता है यहीं पानी ।
दान मे पुण्य प्रमाण अमान सा,
वीर वृसिंग सा कौन है दानी ।
'मित्र' जगी कविता की कला यहीं,
है तुलसी ने सजी-वर-वानी ।
राघव शांति की ये पग दण्डिका,
चण्डिका थी यहीं लक्ष्मी रानी ।
यह वीर-बुंदेल वसुंधरा है
तृण सा यहां बान प जीवन सारा ।
गुरु आन प विन्ध्य तुला अभी भी,
सब पर्वतों मे जो पुराना-प्यारा ।

प्रिय 'मित्र' विवेचना पूण यहीं,
ऋषि व्यास ने वेद का भेद निखारा।
शुचि नमदा चम्बल, केन, धसान,
मा बेतवा की बहती यहीं धारा।

## बुन्देलखण्ड की जीवनदायिनी नदियाँ

बुन्देलखण्ड की पावनभूमि वीरों की गौरवगाथाओ से गर्वीली और भारतीय स्वतन्त्रता एव लोक-सस्कृति की अभेद्य रक्षापक्ति रही है। किन्तु इस वीरभूमि को यह गौरव प्रदान करने म यहा की अविरल गति से कल्कल प्रवाहमान नदिया ने भी पूरा योगदान किया है। बुदल्खण्ड के कवियो ने इन नदिया का माहात्म्य बडे ही भावभरे हृदय से गाया है। इन जीवनदायिनी विन्ध्यगिरि पुत्रियो तथा उनकी सहगामिनी सरिताओ म से कुछ के चित्र यहाँ प्रस्तुत हैं

### बेतवा

विनय विनम्र मात बेतवे हमारी सुनों,
कुकृत कतार तार तार कर देना तुम।
अधिक मलीन मन, वारि वर धोय धोय,
उज्ज्वल अमूल्य शुक्ति सार कर देना तुम।
मित्र' तुम्हें परम पवित्र करने को ध्यान,
सुमति सभारि, गुणागार कर देना तुम।
हार कर देना रामचन्द्र चरणों का देवि,
पाप के पहार छार छार कर देना तुम।

(मेंत्र पृष्ठ १८)

है राजधानी ता दिसन जो विदित विदिशा नाम की।
तहँ भोगि है रूरी कला तू सरस पूरी काम की।
पी है जब करि धुनि मधुर जल बेतवन्ती को खरो।
भ्रू व भग भूषित मुख समान तरग रजित रस भरो।

(अनुवाद—कवि कुल गुरु कालिदास)

ओढ़दे सीर तरंगनि बेतवे,
तारि तरे नर कमव का है।
अंजन याहु प्रवाहु प्रबोधित,
रेवा ज्यों राजन की रज मोहै।
ज्योति जग जमुना सी लग नग
लाल विलोचन पाप विछोहै।
सूर-सुता शुभ संग उतंग तुरंग-
तरंगिनि गंग सी सोहै।

([illegible] प्रभाव [illegible] ५)

वैत्रवती तीर पर और धन्य जिसका,
गंगा सी पुनीत जो सहेली यमुना की है,
किन्तु रखती है छटा दोनों से निराली जो
जिसमें प्रवाह हैं प्रपात और ह्रद हैं,
काट के पहाड़ मार्ग निज बनाये हैं
देवगढ़ तुल्य तीर्थ जिसके किनारे हैं।

([illegible] राष्ट्रकवि डा० मैथिलीशरण गुप्त)

बेतवे मंजुल मोतिन माल सों,
विन्ध्य की भाल सजावतीं हौ तुम।
'मित्र' की मंजु मयूखन में नव—
पुण्य प्रभा प्रगटावतीं हौ तुम।
साज समारि के राग प्रवीन की—
बीन सुरीली बजावतीं हौ तुम।
भोर सों सांझ लौं, सांझ सों भोर लौं,
केशव को जस गावतीं हौ तुम।

एक गिरती है उठती है बेतवा की धार,
प्रकृति प्रिया का एक सदन सजाती है।
'मित्र' किरणों से प्रिय करती कलोल एक,
साध स्वर सरस सुरीला राग गाती है।
एक चन्द्रचूड़ की भुजाओं में भुजायें डाल
लोल लहराके मुख चूम चूम जाती है।
एक मोतियों का मंजु हार पहनाती एक—
चन्दन चढ़ाती एक चमर डुलाती है।

('सरसी', पृष्ठ ४६)

कृत युग माँहि कृति कृत्य को विलोक्यो तत्व,
  भूपति भगीरथ सुरथ चक्रपानी कौं।
त्रेता माँहि राम अभिराम ने बतायो दिव्य,
  पावन प्रभाव सरि सरयू सयानी कौं।
'सेवकेन्द्र' द्वापर में द्वार-द्वार गूंज्यो गान,
  धन्या रुक्मिनया हरिमन्या पटरानी कौं।
पानी रह्यो पावन परन्तु कलिकाल हू में,
  विन्ध्य सुता, बेतवा भवानी बीन पानी कौं।
बेत्रवती विदित सुविन्ध्य गिरि नन्दिनी है,
  बेत्रवन पावन की नेत्र निधि अथ में।
पूरब कौं बहति अपूरब करत रव,
  विदिशा सों लीनी दिशा उत्तरीय पथ में।
उमरत भृंगन सौं लरति करति रन,
  जीवन भरति धरनी की धाय श्लथ में।
जामिन, धसान, कों समोद निज गोद आनि,
  जाह्नुजा सों भेंटो चढ़ी भानुजा के रथ में।
(व्रजभाषाचार्य-सेवकेन्द्र, विपिनवाणी, पृष्ठ ५७)।

पुण्यप्रद बेतवा की महिमा महान पेखि,
  धूर में मिली है करतूत कलिराज की।
सुखदा त्रिवेनी के समान गुन ऐसी भई
  स्वर्ग की नसनी भई पातकी समाज की।
'माहुर सुकवि' कवि कोविद कवीन्द्र आदि,
  कहि-कहि हारे यश कीर्ति सुख साज की।
अक बक भूली फिर सारे जमदूतन की,
  धक धक छाती होत हेरो जमराज की।
धारना धरै है ध्रुव अधम उधारबे की,
  जलरासि घाट घाट हाट कों लगाव है।
कठिन कराल कलिकाल की कुचालता कों,
  कुचल कुचल सदा धार में बहाव है।
'माहुर सुकवि' सुख रासि बेतवा को हृदय,
  होय हुलसाव अंग अंग सियराव है।
कंचन तें सौगुनों बनाव तन कंचन कौ,
  एक बार घाट कंचना के जो नहाव है।
(कवीन्द्र नाथूराम माहुर माहौर अभिनन्दन ग्रंथ पृष्ठ ६)

### केन

यह मौन किया किसके लिए भग ?
किसे कलगान सुना रही हो ?
किसके पगों मे जल बिंदु भला—
मुकताहल से बिखरा रही हो ।
गिरि गह्वरो मे गिरती कभी हो,
कभी पवतों से टकरा रही हो ।
कहो 'केन, कहो कहा ? आज यों—
आकुल सी किसे खोजने जा रही हो ?

विश्व विभूतिया पावन भावन—
भाव से भावरिया भरती हैं ।
वीर—बुन्देल वसुधरा की वह—
रातें भली हिय को हरती हैं ।
तारिकाए अवगुंठन टारके
देखने को उछली परती हैं ।
'केन' मे केलि कलाधर की—
किरणें—कल—किन्नरियाँ करती हैं ।

नाच उठी वन श्री हरी हो नव—
पल्लवों ने शुभ साज सवारा ।
है सुमनों ने कहा—'जय हो,'
विहगों ने समागत गान उचारा ।
चेतनता जड मे हुई जाग्रत
जीवन जीवन को मिला प्यारा ।
धन्य धरा हुई 'केन की धार क
धन्य हुई यहाँ केन की धारा ।

(राष्ट्रकवि स्व० घासीराम 'व्यास' मधुकर बुन्देलखण्ड प्रान्त—निर्माण अंक पृष्ठ १६०)

### पहूज (पुष्पावती)

फूलन फूल पलास रहे यहाँ—
साध समाधि रहे मुनि मानो ।
पावन अंचल म 'अनगोरी रहो—
सुख सेल विनोद भुलानी ।

'मित्र' प्रसिद्ध दसों दिशा मे यहीं—
'ब्रह्मजूदेव' महा वरदानी ।
कचन काया मिली उसी को,
जिसने पिया पुण्य 'पहूज' का पानी ।

## सिन्ध

कानन मे सोते हुए सिहों को जगाती हुई,
भूधर भुजाओं मे लपेटे चली आती है।
प्रकृति प्रिया का 'मित्र' करने शृगार मजु,
स्वण रश्मियों को उर भेंटे चली आती है।
सुमन दलों के दल कोमल खिलाती हुई,
क्रूर-काही-कण्टक, चपेटे चली आती है।
सुयश प्रसारने बुंदेलखण्ड का ये सिन्ध,
अचल मे सुषुमा समेटे चली आती है।

आसन हिलाती हुई बडे-बडे पवतों का,
गजना से दिल दहलाती चली आती है।
धोकरी करील, काकेर हुलसाती हुई,
कलित करोदी को खिलाती चली आती है।
'मित्र स्वण प्रतिमा अमोल भरे अचल मे,
जीवन की ज्योति को जगाती चली आती है।
पद-अरविन्द सनकादि के पखारने को,
सेवडा मे सिन्ध लहराती चली आती है।

(सरसी पृष्ठ १०८)

## धसान

मौन तपस्वी बने खडे हैं गिरि
शृग किए कर छत्र सहारा।
आपस म मिलने का पढा रहीं—
बेलिया प्रेम का पाठ हैं प्यारा ।
पल्लवों मे लिख मित्र रहे
शुचि स्वर्णिम है इतिहास हमारा ।
आज यहाँ प विलासिता को,
धसने नहीं देती 'धसान की धारा ।

(सरसी पृष्ठ ९७)

## नमदा

मेकल कुमारी कहूँ तरल तिहारी धार,
ताप त्रय मोचन के लोचन ललाय है।
कहूँ रन रंगिनी सी बनि समरांगन मे,
'दुर्गावति' मध्य वीर भाव उमगाय है।
'मित्र छत्रछाया करि कहूँ छत्रसाल जू की–
वीरता के विपुल गुनानवाद गाय है।
कहूँ भारती की दीन दासता के काटिबे कों,
रानी की सुकण्ठि कृपान बनि जाय है।

## यमुना

मोहन के मोहिबे कों ब्रज मे विहार करि
फूलन कदंबन मे मोद भरिबो कर।
'मित्र जाह्नवा सों करि नेह तीरथराज माहि
ऋषि मुनि वृन्दन की ताप हरिबो कर।
विमल बुन्देलन मे जीवन जगायबे कों
मारि कर बुन्दन पियूष झरिबो कर।
विन्ध्य गिरि नन्दिनी कों भुजन समेटि भट,
भानुजा की लहर कलोल करिबो कर।

## सरिता-माला

सुखनई सखदे हर्षाती हम,
पय-पान करा रही 'बेतवा' प्यारा।
'प्रियमित्र' सुना कल गान रही ये
'सतार' सितार के तार के द्वारा।
कर 'केन' कलोल कला विकला
सिखला रही है कला कौशल सारा।
दुख द्वन्द्व विपत्तिया काटने को
बनती असि धार 'धसान की धारा।
बेडी काट देती है बबेडी की प्रखर धार,
तीव्र जमदाढ 'यमडार' दर देती है।
'मित्र कहूँ प्रबल प्रचण्ड 'नमदा' की धार,
फूले पाप पुंज के उखाड तरु देती है।

दुमत दुरूह दुग 'खडर' खडेर कर,
स्वण सुखसार सुखनई भर देती है ।
'सिंध सिंधुजा की सुख सम्पति अपार देती,
'पारवती' शकर समान कर देती है ।

सखद स्वतन्त्र करने को ये बुन्देलखण्ड,
'बेतवा' ने पावन प्रतिज्ञा पूण पाली थी ।
सबज सुरग सजा 'केन ने तुरग 'मित्र
चम्बल ने चूम चतुरगिनी सम्हाली थी ।
गूजती 'धसान की धुकार ध्वनि धौंसा देत
'नमदा' न बाध दी भुजाओ मे भुजाली थी ।
ब रियो का गव सव-खव करने को 'मित्र',
मन्थन कर सिंध' वीर लक्ष्मी निकाली थी।

(रामचरण हयारण 'मित्र )

## बुन्देलखण्ड के वन-उपवन

बुन्देलखण्ड के वन उपवनो के सम्बन्ध म जब हम विशष रूप से विचार करते हैं तब हमारी दृष्टि म वह मान चित्र उपस्थित होता है जिस हम राजनतिक दृष्टिकोण से बुन्देलखण्ड कहत हैं । इस भू भाग की सीमाएँ अठारहवी शताब्दि के मध्य अथवा उसके पूव समय स ही शासको द्वारा अपनी सुख-सविधा की दृष्टि से निश्चित कर दी गई थी । इनम एक सांस्कृतिक और दूसरी प्राकृतिक परम्परा स आवष्टित हैं । बुन्देलखण्ड की सास्कृतिक मान्यता का स्वरूप कहा तक किस स्थिति म रहा यह विचारणीय प्रश्न है, किन्तु इसकी प्राकृतिक रूपरेखा सवदा से एक ही रही है यह निर्विवाद सत्य है ।

बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक दृष्टिकोण से विन्ध्य पवतमाला की मान्यता प्राप्त है और एतिहासिक रूप स यह भारतवष का वक्षस्थल माना गया है । इसका देशातर ७८ ८२ अक्षाश २६ २३ के लगभग है । कक रेखा इसके निचल मध्य भाग म से जाती है । इस प्रदश की सीमाएँ बाँधने वाली चार सरिताएँ हैं—पश्चिम म चम्बल उत्तर म यमुना, पूव मे टांस और दक्षिण म नमदा ।

इस भू भाग को विन्ध्यस्थली कहते हैं । इसका श्रेष्ठ पृष्ठ भाग समुद्र की सतह से तीन हजार फुट ऊँचा है और ढाल के उत्तरी अन्तिम छोर पर यह

ऊँचाई केवल पाँच सौ फुट रह जाती है। यही मुख्य कारण है कि विन्ध्य प्रदेश की सरिताएँ उत्तरामुखी हैं। यहाँ के पत्थरों के सम्बन्ध में भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि विन्ध्यखण्ड प्राचीन शिलाखण्डों और वनों का प्रदेश है।

एक युग था जबकि पृथ्वी पर अधिकांश वन थे किन्तु मानव ज्यों ज्यों सभ्यता के विकास की ओर बढ़ा उसने अपने स्वार्थ के लिए वन उपवनों का विनाश किया जिसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण कन्नावों से मिलता है।

महमूद गजनवी ने जब कालिंजर पर चढ़ाई की तब उसको मार्ग में दस कोस यहाँ के बीहड़ वन ही थे जिसके कारण उसकी सेना का मार्ग महीनों अवरुद्ध रहा। यहाँ के प्राचीन राजा रुद्रप्रताप बुन्देला से लेकर राजा स्व० वीरसिंह जू देव द्वितीय तक (सन् १९६०) वनों के राजा की पदवी से जाने जाते रहे हैं।

अन्य निधियों की अपेक्षा वन ही बुन्देलखण्ड की प्रधान निधि हैं। अविरल गति से प्रवाहित होने वाली वेतवा, धसान, चम्बल, सिंध, पुष्पावती केन, जामनेर, नर्मदा आदि शताधिक छोटी बड़ी नदियाँ वन प्रदेश की रक्षा करती आ रही हैं। इस भूमि के अंचल में अडिग भाव से स्थित विन्ध्याचल इस पर्वत स्वर्णगिरि सतपुड़ा आदि के शिराभाग के घने वन, उमड़ते मेघों को आकृष्ट कर जल वृष्टि से इन सरिताओं को प्लावित करते रहते हैं। वनों का शाप भाग सूर्य किरणों का प्रखरता अगोचर करता है और नीचे का भाग पानी को सावधानी से बचा लेता है। यह जल पृथ्वी को आर्द्र रखता है और शेष जल धीरे धीरे सोतों और नालों के रूप में प्रवाहित हो सरिताओं का रूप धारण करता है।

बुन्देलखण्ड में नर्मदा के तट पर बसी हुई माहिष्मती नगरी से दूर बेतवा के तट पर बसे हुए ओरछा नगर तक सहस्रों वन उपवन हैं, जिनमें झाँसी की सिमुर की डाग (वन) ओरछा का तुंगारण्य तथा करौंदी की डाँग, मिर्जापुर का विन्ध्य वन (विन्ध्यभव) छतरपुर के समीप गेहरवन सेंवढ़ा की करघई की डाँग, अजयगढ़ का अजय-वन ग्वालियर का भूरा खोह वन नरवरगढ़ का अनल वन और शिवपुरी का चादपाठा-वन आदि प्रसिद्ध हैं।

इस प्रदेश में विरवा (छोटे पौधा) में तुलसी बावई, मरुआ दौना मरुआ करादी महदेवी बना, महावला विरविचियाऊ वामा आदि और लतिकाओं में कृष्णकान्ता, राधाकान्ता, गुरवेल नागवेल ओषधुष्पी आदि तथा जड़ी बूटियों में गुरयार, लक्ष्मणा, भद्रा कटारी मदन मस्त, रतनजोति अमरमूर मूषाकर्णी भी कनी शंखपुष्पी आदि की बहुतायत है और ये प्रसिद्ध भी हैं।

वृक्षों में आम, महुआ, जामुन तेंदू अनार, ऊमर, अशोक मौरशिरी नीम वट पीपर, पाकर कदम्ब सागौन, सहजना अर्जुन, कैथी पलास, बबूल, धामीन शीशम, करघई पाकर आदि मुख्य हैं। बुन्देलखण्ड में कुल २५०० वृक्षों की जातियाँ विद्यमान हैं।

आधुनिक युग म अय प्रान्ता की अपेक्षा विन्ध्य प्रदेश वन-वक्षा से हरा भरा और घनी है। वना मे शेर तेंदुआ, साबर, हिरण शृगाल, लोमडी खरगोश आदि वन्य पशु और नीलकण्ठ, तोता मैना चण्डूल खजन भौंरा (भ्रमर सदृश छोटा पक्षी), लाल मुनया, झरया पुट्टया, श्या श्यामा, चातक काक गद्ध आदि पक्षी स्वच्छन्द विचरण करते हैं।

अब हम सूक्ष्म रूप से विन्ध्य वनस्थली के मनोहारी दृश्या का वणन करेंगे। यहा की लतिकाएँ पवन क स्नेह भार से आनन्दित हो अपन मस्तक को श्रद्धा से झुकाती हुई बुन्देलखण्ड की पावन भूमि का नमन करती हैं। उन्नत वक्ष ऋतु अनुरूप प्रफुल्लित सुमना द्वारा सुगन्ध अर्पित करत है, विहग कलरव करते हुए वन्दना क मधुर गीत गात है अविरल गति से प्रवाहित हो सरस सलिल सरिताएँ अर्घ्य देती हैं जिनके मनोरम किनारो पर उत्फुल्ल मन वन्य पशु विचरण एव निवास करत हैं।

ऐसी मनोरम विशाल वनस्थली के आकषण मे वनवासी राम जब विमोहित हो उठे तब व अनुज लक्ष्मण से प्रसन्न मुद्रा मे कहन लगे—

सरनि सरोज विटप बन फूले। गुजत मनु मधुप रस भूले।
खग मृग विपुल कोलाहल करहीं बिरहित बर मुदित मन चरहीं॥

और जब उनकी ऋषि वाल्मीकि से भेंट होती है तब वह विनम्र शब्दो म अपन रहने के लिए अनुकूल स्थान का निर्देश चाहत है

अब जहँ राउर आयुस होई। मुनि उदबेगु न पाव कोई।

तब ऋषि बाल्मीकि राम को चित्रकूट के वैभव मे अवगत करान हैं

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाति सुपासू।
सलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मग विहग विहारू।
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तप बल आनी।
फूलहिं फलहिं विटप विधिनाना। मजु बलित बर बेलि बिताना।
सुरतरु सरिस सुभाय सुहाए। मनहु विबुध बन परिहरि आए।
गुज मजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिधि बयार बहइ सुख देनी।
करि केहरि कपि कोल कुरगा। बिगत बर बिचरहिं सब सगा।

राज्य ऐश्वय विलसित दशरथ राजकुमार राम और वधू सीता जो काय क्लेश से सवदा वचित रहे जिनको स्वप्न म भी वनवास की आशका नही थी उनको ही जब वनवास करना पडा तब व चित्रकूट के अत्यन्त शान्तिमय वातावरण और वभव को अवलोकन कर वन म निवास कर सुख स जीवन वितान लगे—

राम सग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गह सुरति बिसारी॥
(गो० तुलसीदास)

और एक दिन आनन्द उल्लसित राम अपनी प्राणवल्लभा सीता को चित्रकूट का शिखर दिखाकर कहने लगे—

न राज्य भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्।

(वा॰ रामा॰)

'इस रमणीय पर्वत को देखकर राज्य च्युति भी मुझे दुख नहीं देती, सुहृदों से दूर रहना भी मेरे लिए पीड़ा का कारण नहीं होता।'

और जब राम सुरम्य चित्रकूट का त्याग कर वन भ्रमण करते हुए पंचवटी में निवास करने लगते हैं, तभी उनको विपत्तियों के बादल घेर लेते हैं और एक दिन उनकी अनन्य सुखदायिनी सीता को रावण अपहरण कर ले जाता है जिससे अत्यन्त दुखित हो उनके हृदय में वे अतीत के भाव जाग उठते हैं और वे अपनी भूल स्वीकार कर सीता के वियोग में विलाप करने लगते हैं—

सिया के वियोग में विलाप करें राघवेन्द्र
लखन बुझावं नाथ शोक सब दीजे छंड।
बोले राम शोक नहीं राज त्यागवे को हम,
शोक नहीं मातु ककयी ने जो दियौ है दंड।
"विप्र घनश्याम' एक चूक उर साल रही
बेर बेर वाको हूक हिय मे उठे प्रचंड।
चित्रकूट शैल दुखघात भली हती तौ न—
सिया हरी जाती जो न छोड़ते बुन्देलखण्ड।

(रा॰ घनश्यामदास पाण्डेय, लोकपथ १७ मार्च १९६७)

बुन्देलखण्ड के वन उपवनों की प्रशंसा में पाण्डेयजी की यह उक्ति अत्यन्त रोचक मौलिक और भावात्मक है।

## बुन्देलखण्ड का वक्षस्थल खजुराहो

इतिहासवेत्ताओं ने बुन्देलखण्ड को भारतवर्ष का हृदय, सेंवढ़ा (कन्हरगढ़) को मुकुट ओरछा को कण्ठ एवं खजुराहो को वक्षस्थल घोषित किया है।

खजुराहो के लिए झांसी मानिकपुर लाइन में हरपालपुर होकर छतरपुर से मार्ग गया है। खजुराहो के ऐतिहासिक ज्ञान के लिए १८ शिला-लेख और

२ ताम्रपत्र उपलब्ध हैं जिनका अनुवाद दामोदर जयकृष्ण काले ने अपनी खजुवाहक अर्थात खजुराहा पुस्तक म बडी सावधानी स प्रस्तुत किया है। इन शिलालेखो द्वारा यह भासित हाता है कि पहले यहा चन्देल वश ने राज्य स्थापित किया था। इस वश का पहला राजा नन्हुक था और अन्तिम गडाक। इनका शासन सन ८०० म प्रारम्भ हुआ और मन् १५ ० तक चलता रहा। इसका प्रमाण यहा प्राप्त शिलालेख सख्या ८ के १०वें श्लोक से मिलता है।

तत्र क्षत्र सुवण सार निकष ग्रावा यशश्चदन क्रीडालकृत—
दिक्पुरध्रि वदन श्री ननु को भूनप । यस्यापूव—
पराक्रमक्रमनमनि नेप विद्वेषिण सभ्राता शिरसा वह—
न्नृपय शेवाभिवाना भयात ॥१॥

(खजु वाहक—खजुराहा पृ० २ )

भावार्थ—एसे राजाओ म श्रीमान नन्हुक नपति हुए। वे मानो राजपुरुषा की जाच करने के लिए एक कसौटी ही थ। अपन कीर्ति रूपी चन्दन स ही माना वे सब देशो की स्त्रिया क मुखारविन्दा को सुशोभित करत थ उनके अलौकिक पराक्रम की उन्नति से उनका कोई भी द्वेष करने वाला नही रहा। भयभीत हाकर सारे राजा उनकी आज्ञा को अपन सिर पर धारण करके पालन करते थे।' यह शिलालेख सम्वत १०११ म रूपकार नाम के कारीगर न खोदा था।

इस वश के ७३० वष के शासन काल म चौबीस राजाआ ने राजकाय चलाया तथा इन नरेशा म से हप, यशोवमन कीर्तिवमन्, अरिमर्दि वमन् इत्यादि वीर प्रतापी राजा हुए।

श्री यशोवमन राजा न श्री वकुण्ठ भगवान क मन्दिर का निमाण कराया जा कि लक्ष्मयानी—लक्ष्मणजी के नाम स विख्यात है। इसके प्रमाण म शिला लेख सख्या ८ का ४२वा श्लोक दशनीय है—

तेन तच्चारु चामीकर कलश लसत व्योम धाम व्यधायि
भ्राजिष्णु प्रांशुवश ध्वजपट पटला दोलिता भोज व द
दत्याराते स्तुषार क्षितिधर शिखर स्पर्द्धि वधिष्णु रागा
*हम्दे धाम्ना सुयन त्रिदिव यसतयो विस्मयते समेता ॥४२॥*

(खजु वाहक—खजुराहा पृ० २१)

इन महाराज यशावमन न वकुण्ठ विष्णु भगवान का सुन्दर मन्दिर बनवाया जा बर्फीले पहाडा की चाटियो का स्पर्धा करता है और ऊचे खम्भा पर फहराते हुए झडे अपने अगणित कमलो को भुलाते हैं जिसके हृदय पर जब कभी पूजा के उत्सव म एकत्रित होकर स्वग क निवासी (देवनागण) मन्दिर पर एकत्रित

होते तो इस मन्दिर को देखकर बड़े हुए आश्चर्य के कारण आश्चर्यचकित हो जाते थे।

इसी प्रकार शिलालेख ८ के, ४३वें श्लोक में कहा गया है—

वलासादमोटनाथ मुद्दिविलिचतत कीरराज प्रपेदे।
साहिस्तस्मादवापाद्धिपतुरग बलनानुहैरब पाल
सत्सूनोर्देवपाला प्रमथ हयपते प्राप्य निपे प्रतिष्ठा।
वकुण्ठ कुठितारि क्षितिधर तिलक श्री यशोवम राज ॥४३॥

(खजुराहक—खजुराहो, पृ० २६)

राजा यशोवमन जिन्होंने अपने शत्रुओं का दमन किया और जो राजाओं के आभूषण हैं यानी उनमें उनका श्रेष्ठ पद है उस राजा ने भगवान बकुण्ठ की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। (भोटो राजा ने) भूटान के राजा ने इस मूर्ति को कलाश नाम के किसी व्यक्ति से प्राप्त किया। उससे शाही नाम के किसी व्यक्ति ने प्राप्त किया था। उससे शाही नाम का जो कीरो का राजा उसने उससे मित्र भाव से पाया। उसके अनन्तर उससे हेरम्बपाल ने उस मूर्ति को हाथी और घोड़ा के एवज में पाया और उसी मूर्ति को हेरम्बपाल के पुत्र हयपति जो घोड़ा के सरदार थे से यशोवमन राजा ने उस मूर्ति को प्राप्त करके प्रतिष्ठित किया।

(खजुराहक—खजुराहो पृ० ७५)

शिलालेख संख्या ६ का ६०वा श्लोक श्री मरकतेश्वर यानी मतंगेश्वर व प्रमथनाथ यानी खन्दरिया महादेव जी के सम्बन्ध में है।

ओम नम शिवाय
विष्टप विकट घटानाम जाय मानाय बीज भूताय
रुद्राय नम पालन विलय कृते निपक्रिया यापि ॥१॥

(खजुराहक—खजुराहो पृ० २७)

इस लेख में पहले महादेवजी के पृथक पृथक रूपों को यानी शिव रुद्र दिगम्बर शूलधर या महेश्वर को नमन किया। इसके पश्चात कवि ने इन्हीं रूपों की प्रशंसा करके भारती यानी सरस्वती देवी व गणेशजी और दूसरे बड़े बड़े विद्वान कवियों को भक्ति भाव से नमन किया है। इस ससार के पालन करने में व उसका विलय करने में समय आदिपुरुष रुद्र हैं उनको नमन किया।

विज्ञान विश्वकर्त्ता धर्मा धारेण सूत्र कारेण
छिन्छा सिघेन विदधे प्रासाद प्रमथनाथस्य ॥६०॥

(खजुराहक—खजुराहो, पृ० २४)

धग महाराज ने छिच्छा नाम के कारीगर से प्रमथनाथ महादेव जी का एक विशाल मन्दिर बनवाया जिसे बडी कारीगरी व सुन्दरता के साथ स्थापित किया गया क्योंकि कारीगर अपने शिल्प म निपुण थे।

(खजुवाहक—खजुराहो पृ० ८८)

इस प्रकार यहाँ के मन्दिरो म १८ शिलालेख और २ ताम्रपत्र विद्यमान हैं जिनमे राजाओ की वीरता और गुण ग्राहकता तथा उनके द्वारा निर्मित मन्दिरो का वर्णन है।

खजुवाहक अर्थात वर्तमान खजुराहो—पुस्तक के विद्वान लेखक दामोदर जयकृष्ण काले ने इन संस्कृत शिला लेखो का हिन्दी अनुवाद बडी सावधानी से किया है। खजुराहो की भूमि का क्षेत्रफल उस काल म दस मील की लम्बाई चौडाई मे था। जिसके भग्नावशेष के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं। यहाँ जो ग्राम थे, उनम एक था बमनोरा दूसरा जटकरा—बमनोरा ब्राह्मण पुरा और जटकरा-यतिकर के नाम से प्रसिद्ध था। इस स्थान पर उस काल म लगभग ८० मन्दिर थे जिन पर बहलोल लोदी व सिकन्दर लोदी ने आक्रमण करके कुछ मन्दिरो और यहाँ की कलापूर्ण मूर्तियो को भग भग कर दिया था तथा यहाँ जो संयासी एव ब्राह्मण पुजारी रहते थे उनका वध कर डाला था।

भौगोलिक दृष्टि से मन्दिरो को चार भागो म विभाजन किया गया है पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण यहाँ के प्रमुख मन्दिरो की गणना इस प्रकार है—

(१) चौंसठ योगिनी का मन्दिर जिसका चबूतरा १०४ फुट लम्बा और ६० फुट चौडा है जिस पर प्रथम ६४ मढिया थी, जिनम से वर्तमान म ३५ के चिह्न विद्यमान है।

(२) इसी मन्दिर के समीप शिव का एक छोटा मन्दिर है जो कि शिवसागर सरोवर के निकट है।

(३) प्रमथनाथ का मन्दिर यहा के मन्दिरो म सर्वश्रेष्ठ है। इसका निर्माण राजा धग ने किया था। यह खडारिया महादेव के नाम से विख्यात है। यह मन्दिर शिल्पकला तथा मूर्ति और वास्तुकला की दृष्टि से भी सुन्दर है। यह १०२ फुट लम्बा ६६ फुट चौडा और १०२ फुट ऊँचा है।

इस मन्दिर के सात भाग है और इसके गर्भ गृह म प्रकाश के लिए झरोखे बनाये गये है। प्रवेश द्वार जिसे सिंह द्वार भी कहते है तोरण द्वारा सुन्दर चित्रित किया गया है। इसम देवताओं देवियो गन्धर्वों आदि के चित्र अंकित है।

इस मन्दिर का अर्द्ध मडप मण्डप महामडप और अन्तराल कलापूर्ण सुन्दर रीति से चित्रित किया गया है। परिक्रमा म दाहिनी ओर एक मुग्धा युवती का

गिरे हैं जिससे गिर व लावण्यपूर्ण रूप विखर हुए हैं। कलाकारों द्वारा पाषाणों ने प्रदान ढाल दी जो व्यवस्था की है उसमें मन्दिर के सभी भागों की मूर्तियाँ दृष्टि गोचर होती हैं। मन्दिर का स्वरूप इस ढंग से किया गया है कि वह एक सुन्दर पहाड़ी के रूप में दर्शित होता है। मन्दिर की दीवारों, खम्भा, छत तथा शिखर के पत्थरों में गारा चूना दर्शित नहीं होता यही इसम विशेषता है। गर्भ द्वार के एक ओर गंगा की मूर्ति मगर पर सुशोभित है दूसरी ओर यमुना की कच्छप पर। गर्भ गृह के चौखट प्रवाल में सगमरमर की पत्थर की मूर्ति शिव रूप में प्रतिष्ठित है। मन्दिर के बाहरी भाग में आठ कोनों पर दिग्पाल इन्द्र अग्नि यम नैऋत्य वरुण वायु कुबेर और ईशान विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवताओं के चित्र चित्रित किए गए हैं और मन्दिर के बाहरी दीवालों पर शिव गणेश तथा सात जानियों के चित्र अंकित हैं। इसके अनन्तर इन्हीं बाहरी भागों में उद्दीपन भाव में कामकलापूर्ण युवतियों की नग्न मूर्तियाँ खुदी हैं जिनके समीप तप स्वियों को मोहित दृष्टि में खड़ा हुआ अंकित किया गया है। यह मन्दिर राजा धंग ने सम्वत् ११६१ में निर्माण कराया था।

(४) एक मन्दिर जगदम्बा के नाम से विख्यात है किन्तु है यह लक्ष्मी का जो कि चन्देल वंश की कुल देवी थी। यह ७२ फुट लम्बा ६२ फुट के लगभग चौड़ा है। इस मंदिर के दक्षिण भाग में दिग्पाल शिव आदि की मूर्तियाँ बनी हैं।

(५) यह मन्दिर चित्रगुप्त का है किन्तु देखने में सूर्यनारायण का लगता है लेकिन इस गण इसको भरत जी का मानते हैं। इसकी लम्बाई ७५ फुट और चौड़ाई ५१ फुट है। इसके सम्बन्ध में यहाँ यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि जब राजा कीर्तिवर्मन को कुष्ट रोग हुआ था तो उनके निवारणार्थ इस मन्दिर की स्थापना की गई थी। मूर्ति सुन्दर भावपूर्ण है जो ५ फुट ऊंची है और घोड़े पर आरूढ़ है।

(६) यह एक सुन्दर सरोवर है जो कि कालिंजर के चौपड़ा सदृश बना है। इसमें कई खम्भे हैं। अवश्य ही इसका भव्य रूप उस काल में बहुत ही विशाल एवं आकर्षक रहा होगा जो अब दर्शित नहीं होता है।

(७) यह मन्दिर विश्वनाथ जी का है। यह खंडारिया महादेव मन्दिर के सदृश ही निर्मित है। इसकी लम्बाई ९० फीट और चौड़ाई ४५ फीट के करीब है। मन्दिर के ऊपर भाग के लिए दोनों ओर से सीढ़ियाँ बनी हैं। पहली सीढ़ियों के दोनों ओर हाथियों की और दूसरी सीढ़ियों के दोनों ओर सिंहों की मूर्तियाँ बनी हैं। मंदिर में नन्दीगण पर विश्वनाथ जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर में ब्रह्मा विष्णु आदि एवं देवी देवताओं की मूर्तियाँ हैं। झरोखों

पर नग्न अप्सराओं की काम कलापूर्ण मूर्तियां बनी हैं।

(८) यह मन्दिर नन्दी का है जिसकी मूर्ति बड़ी कलापूर्ण है और चिकनी तो इतनी है कि इस पर कोई द्रव्य पदार्थ रुकता ही नहीं है। मूर्ति की लम्बाई ७ फीट और ऊँचाई ६ फीट है। यह चौरस मन्दिर में सुशोभित है, जिसमें १२ खम्भे लगे हैं। मन्दिर पर जाने के लिए चारों ओर से सीढ़ियां बनी हैं।

(९) यह मन्दिर वैकुण्ठनाथ भगवान का है। प्रतिष्ठित प्रतिमा को कुछ व्यक्ति लक्ष्मण जी की मानते हैं। इस मन्दिर की लम्बाई ९८ फीट और चौड़ाई ४१ फीट है। मन्दिर के चारों कोणों पर छोटी छोटी चार कुटियां बनी हैं। इस मन्दिर की स्थिति बहुत अच्छी है। यह मन्दिर सात भागों में निर्मित है और इसमें भी अन्य मन्दिरों के सदृश ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा नवग्रहों की बड़ी कलापूर्ण मूर्तियां बनी हैं।

इस मन्दिर में कलाकारों ने एक बड़ा मनोरम दृश्य अंकित किया है। राक्षस और देवतागण खड़े समुद्र मन्थन कर रहे हैं। समक्ष ही दशावतारों के चित्र अंकित किए गए हैं। मन्दिर के गर्भ गृह में कलापूर्ण चतुर्भुज मूर्ति सुशोभित है। यह भी चार फीट लम्बी है। सुन्दर है और खड़ी हुई मुद्रा में है। इस मूर्ति में विलक्षणता यह है कि इसके तीन सिर हैं मध्य का सिर नर रूप का और आस पास के सिंह और वाराह के हैं। मूर्ति सुन्दर है। चारों ओर से तोरण द्वारा सजोयी गई है। इस मन्दिर में सर्वोचित शिला लेख भी इसी मन्दिर में लगा है जो कि राजा धंग ने सम्वत १११० में लिखवाया था। इस मन्दिर के चारों कोनों पर चार लघु मन्दिर हैं। पूर्व में अवस्थित दक्षिण के भाग में एक पाठशाला का सुन्दर चित्र उत्कीर्ण किया गया है तथा एक स्थान पर युद्ध के लिए प्रयाण करती हुई सेना दिखलाई गई है, जिसके सेनानायक सूर्य के वीर पुत्र रेवान्त अश्व पर सवार हुए आगे बढ़े चले जा रहे हैं। एक छत्रवाहक उनके सिर पर छत्र लगाए दिखाई दे रहा है।

इसी मन्दिर के समक्ष वाराह का मन्दिर सुशोभित है। यह २० फीट लम्बा और ६ फुट चौड़ा है। इसका लदाव १४ खम्भों पर है। वाराह की मूर्ति ८ फीट लम्बी और ५ फीट ऊँची है जिसे चतुर शिल्पी ने एक ही पत्थर में से तराश कर निर्माण किया है। मूर्ति के प्रत्येक अंग में देवताओं और देवांगनाओं के चित्र उत्कीर्ण हैं।

(१०) यह मन्दिर मतंगेश्वर (मतंगश्वर) जी का है। मूर्ति पर जल चढ़ाने के लिए सीढ़ियां लगी हैं। भक्तजन स्नान पूजन आदि के लिए उनपर चढ़ कर जाते हैं। इस मन्दिर का भीतरी क्षेत्रफल २४ वर्ग फीट है और बाहर यह ३५ वर्ग फीट पृथ्वी को अपने अचल में समेटे है। इस मन्दिर की छत गोलाकार बनी है। यह चार खम्भों के आधार पर स्थित है। मन्दिर के चारों ओर चार

द्वार हैं। इस मंदिर में जो योनि रूप जलहरी है उसका व्यास २० फीट है उसके भव्य प्रकोष्ठ में मूर्ति रूप सुन्दर चिकने पाषाण का शिव लिंग प्रतिष्ठित है। लिंग की ऊँचाई ८ फीट है और मोटाई इतनी है कि दो पुरुषों की बाहुओं में भी नहीं आती।

इस शिवलिंग के पादत में दो लेख विद्यमान हैं। एक फारसी लिपि में दूसरा नागरी लिपि में। यहाँ शिवरात्रि के दिन से एक विशाल मेला भरता है जो एक महीना तक चलता है। इस मेले में बुन्देलखण्ड के रहन-सहन, रीति रिवाज और बुन्देलखण्डी लोक गीतों का स्वाद भली प्रकार लिया जा सकता है। मेले में बुन्देली कलाकारों द्वारा निर्मित धातुओं तथा मिट्टी और गौरा के बर्तन और देशी सूत के अनेक प्रकार के वस्त्र एवं ऊन के कम्बल बिक्री के लिए आते हैं। खजुराहो का यह प्राचीन मेला बुन्देलखण्ड की संस्कृति का श्रृंगार है।

(११) इस मंदिर के समीप यत्र-तत्र बिखरी हुई मूर्तियों का एक संग्रहालय है। यह संग्रहालय सन् १९१० में छतरपुर राज्य ने जार्डिन साहब के नाम से स्थापित किया था।

इन सुन्दर कलापूर्ण मंदिरों के अतिरिक्त यहाँ कई मूर्तियों के और भी दस स्थल हैं जिनका वर्णन स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं। किन्तु हम यहाँ कामकलापूर्ण मूर्तियों के आलोचकों के लिए कुछ बातों का स्पष्टीकरण करना उचित समझते हैं। इस सम्बन्ध में हमने जो शोध कार्य किया है उससे यह ज्ञात हुआ है कि खजुराहो के अतिरिक्त भारत के अन्य मंदिरों में भी कामकला के चित्र और मूर्तियाँ विद्यमान हैं। जिनकी गणना इस प्रकार है —

(१) अलौरा के सुर मन्दिरों में।
(२) जगन्नाथपुरी के जगदीश मंदिर और कोणार्क के सूर्य मंदिर में।
(३) भुवनेश्वर के मंदिरों में।
(४) कोयरी पर्वत पर हरसिद्धि नामक अम्बिका मंदिर में।
(५) विजगापट्टम के मन्दिर में।
(६) आबू पर्वत पर अचलेश्वर महादेव के समीप जैन मंदिर में।
(७) माला पढरपुर मार्गवर्ती कल्केश्वर मंदिर में।
(८) मैसूर के ब्रह्म खेटक ग्रामस्थ चतुर्मुख ब्रह्मा के मंदिर में।
(९) काशी (वाराणसी) के नेपाली मंदिर में इत्यादि।

कामकला की इन मूर्तियों और चित्रों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियों का यह मत है कि इस प्रकार की अश्लील मूर्तियाँ और चित्र को देवालयों में अंकित नहीं करना चाहिए।

हम यहाँ प० सदाशिव दीक्षित शास्त्री का मत उपस्थित करते हैं। म० म० राजगुरु पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित कृत कवि कुलकल्पद्रुम की भूमिका

म उन्होंने लिखा है

मननशील मनीषियो के मत से इनकी (कामकला के चित्र) सत्ता एक भाव की अभिव्यंजना करती है। सम्पूर्ण संसार काम के अधीन होकर इस प्रकार की क्रीड़ाओं म संलग्न है। यदि निर्वेद क कारण साधक के हृदय म दु खमूलक क्षणिक सुख क प्रति विरक्ति का आविर्भाव हो गया है, तो शान्तचित्त स मन्दिर क अभ्यन्तर प्रकोष्ठ म प्रवेश करे, वहा उसे अविच्छिन्न परम आनन्द की उपलब्धि होगी, और परम शान्तिदायक साकार निराकार ईश्वर का साक्षात्कार होगा। इसक द्वारा वह जीवन को कृत कृत्य बना सकेगा। इसी उद्देश्य म चित्रो को मन्दिर के बहिर्भाग म स्थापना की गई है।

अर्थ शास्त्र या राजशास्त्र का उद्देश्य यह नही है कि अधम स धर्म पराजित हो अन्याय स न्याय पद दलित हो। उसका यह भी लक्ष्य नहीं ह कि केवल प्रपच रचना स काय की सिद्धि की जाय, परन्तु वह आटोप के साथ इन विषयो की उपयोगिता का कीर्तन करता है। कामशास्त्र के लिए भी यही सिद्धान्त अव्यभिचरित है। कामशास्त्र का लक्ष्य भी अतिरोहित है। महा अश्लीलता के रंग म रंगे हुए पुरुषो को—व्यभिचरित काम नाम कावला पीडित मनुष्यो को—चाह इसम सवत्र अनाचारमय अश्लील चित्रपट दृष्टिगोचर होते हो, परन्तु यह वह शास्त्र है जो अनाचार का आचार से सुखाभास का वास्तविक सुख स, अधर्म का धर्म म, एव ग्राम्य का नागरिक से, पार्थक्य अभिव्यजित करता है। अन्यथा सासारिक सुख निरभिलाषी वदिक सन्यासियो ने, मध्यम प्रतिपदा अनुयायी नि स्पृह बौद्धो न एव नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध योगियो न इस शास्त्र क निरूपण की ओर अपनी अभिरुचि न दिखाई होती।

वात्स्यायन का मत है—

> रक्षन धर्मार्थ कामाना स्थितिं स्वा लोक वर्तिनीम।
> अस्य शास्त्रस्य तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रिय ॥

एतद्विषयक शास्त्र के परिशीलन से पुरुष न केवल लोकव्यापिनी धर्म अर्थ एव काम विषयक अपनी स्थिति का सरक्षण करता है प्रत्युत जितेन्द्रिय भी होता है अतः महर्षि वात्स्यायन के मतानुसार इस शास्त्र का प्रधान उद्देश्य—जितेन्द्रियता है। पारदारिक विषय के निरूपण से इस शास्त्र का परदाराभिगम कदापि नही सिद्ध होता परन्तु इन विद्वानो न स्थल-स्थल पर इस बात पर अधिक बल दिया है कि इन रीतियों का परिज्ञान कर पर पुरुष स स्वदार का सरक्षण कर और पुरुषो को भी यह उपदेश देने स नही चूके कि—

> अश्रद्धापुपहास्यता मलिनतामयक्षय लाघव
> गर्हा ग्लानिमधोगति विकलतामायु क्षति दुर्गतिम

इत्थं ये परदार कर्मणि रता लोकत्रय निंदिता
विन्दते परमापदं गुरुधिया बुद्ध्या रतास्ते सदा ।

अर्थात — गुरु भार्या से गमन परम्पराभिगम दुर्गम्य है, क्योंकि इससे उपलब्ध होती हैं — (१) अश्रद्धा (२) उपहास्यता (३) मलिनता, (४) अर्थ हानि (५) लघुता (६) गर्हा (७) ग्लानि, (८) अधोगति (९) विपत्ति (१०) आयु क्षीणता (११) दुर्गति, एवं (१२) लोक निंदा।

इसके अनन्तर रावण वाली, कीचक आदि प्राचीन उदाहरणों के द्वारा परम्पराभिगम का निषेध करते हैं। अतः कामशास्त्र का यथार्थ मूल्य मानना अक्षम्य अपराध है। महेश्वर ने मन में काम के स्वरूप का निरूपण यों है—

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेष्वपि ।
परस्पर कृत स्नेह काम इत्यमिधीयते ।

अर्थात–पुरुषों की स्त्री विषयक तथा स्त्रियों की पुरुष विषयक परस्पर उत्पन्न रति का—अनुराग का—नाम काम है। श्रीवास्तव वंशज श्री रामराज दीक्षित का कथन है कि —

नावष्य वात्स्यायन भाषितानि नराश्चिकीर्षन्ति रतोत्सवये ।
पशुव्रत पालयितु निरुद्ध योगा कथं वधमाश्चते स्यु ।

अर्थात—वात्स्यायन के सिद्धान्त का परिशीलन किये बिना ही रतोत्सव पशुव्रत सदृश है। किसी कवि की सदुक्ति है कि —

दाम्य रसज्ञता हीन गीता मति विना ।
काम शास्त्र विना भोगा येवा ते पशवो मता ॥

पिंगल बिन कविता रच बिन गीता के ज्ञान ।
काम शास्त्र बिन रति करे, ते नर पशु समान ॥

इससे सिद्ध है कि खजुराहो तथा अन्य देवमंदिरों में जो काम कलापूर्ण मूर्तियों अथवा चित्रों को स्थान दिया गया है वह कामशास्त्र के अध्ययन तथा मनन की दृष्टि से दिया गया है।

लेकिन इस रहस्य को ठीक समझने के लिए हमें जानना होगा कि शिव का पूजन-अर्चन शिव लिंग के माध्यम से ही होता है। शिव लिंग पूजन का क्या आधार है? और इस का क्या रहस्य है? ये दो महत्वपूर्ण धार्मिक प्रश्न हैं। शं का अर्थ है आनन्द और कर का अर्थ है करने वाला। जो आनन्द दाता है वही शंकर है शिव है। शिवलिंग पूजन का इतिहास शिव पुराण में उल्लिखित है। इसके अनुसार शिव लिंग का पूजन ब्रह्माण्ड का पूजन है और शिव लिंग का रूप ही ब्रह्माण्ड का स्वरूप है।

लिगानां च क्रम वक्ष्ये, यथावच्छणुत द्विजा ।
तदेव लिग प्रथम प्रणव सव कामिकम ॥
सूक्ष्म प्रणव रूपहि सूक्ष्म रूप तु निष्कलम ।
स्थूल लिंग हि सकल तत्व चाक्षरनुच्यते ॥
तयो पूजा तप प्रोक्त साक्षात्मोक्षप्रद उभे ।
पुरुष प्रकृति भूतानि, लिंगानि सुबहूनि च ॥
तानि विस्तरतो बक्तु शिवो वेत्ति न चापर ।"

(शिव पुराण)

हे ब्राह्मणो ! लिंग का यथावत क्रम मैं तुम्हे सुनाता हू । सबसे प्रथम शकर का लिंग ओंकार (प्रणव) है । वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । शिव का सूक्ष्म लिंग प्रणव स्वरूप है और सूक्ष्म ही निष्कल हुआ करता है । शकर का स्थूल लिंग ही समस्त ब्रह्माण्ड है । इसका नाम पचाक्षर है । सूक्ष्म और स्थूल लिंगो की पूजा ही तत्व है । ये दोनों प्रकार की पूजाये मोक्ष को देने वाली है । पुरुष, प्रकृति, और आकाशादि पच महाभूत शकर के लिंग हैं । इनका विस्तार से वर्णन करने की शक्ति शिव मे ही है । उन समस्त लिंगो को दूसरा कोई नहीं जान सकता ।

दूसरा मत लिंग पुराण मे मिलता है ब्रह्म स्वरूप भगवान शिव के लिंग को माया स्वरूपा भगवती पार्वती धारण करती है, जिससे सृष्टि का सृजन होता है । इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह काम शास्त्र की मान्यता आदि काल से प्रचलित है । इसकी पुष्टि भारत के शिव मन्दिरो द्वारा होती है ।

खजुराहो के मन्दिरो मे कुछ ऐसी भी मूर्तिया अंकित है जिनमे मुग्धा नायिका के सम्मुख ब्रह्मचारी भिक्षा मागने के लिए उपस्थित है । इससे यह भी सिद्ध होता है, कि उस काल मे इस स्थान पर इन्द्रिय निग्रह की भावना से सन्यासियो अथवा ब्रह्मचारियो की काम विषयक भावना की परीक्षा ली जाती रही हो क्योकि यहा जो जटकरा (यातिकर) तथा बमनौरा (ब्राह्मण पुरा) ग्राम है वहा उस काल मे सन्यासी और ब्रह्मचारी निवास करते थे । इसका प्रमाण दामोदर जयकृष्ण काले ने अपनी 'खजुराहो' नामक पुस्तक मे दिया है ।

इन सब प्रमाणो से सिद्ध है कि खजुराहो के मन्दिरो मे जो काम कलापूर्ण मूर्तियां तथा चित्र अंकित हैं वे लोक कल्याण की भावना से श्रेयस्कर है ।

बुन्देलखण्ड प्रदेश मे खजुराहो के मन्दिरो की शिल्पकला अत्यन्त भावोत्पादक बौद्धिक तथा ग्रहणशील है और भारतवर्ष के सभी मन्दिरो की अपेक्षा विशेष आकर्षक है । यहा के मन्दिर और मूर्तियां तथा चित्र बुन्देलखण्ड के उस काल का स्मरण कराते हैं जबकि बुन्देलखण्ड जन जीवन समृद्धि के उच्च शिखर पर आसीन था ।

ओरछा

झांसी मानिकपुर लाइन पर पहला ही रेल्वे स्टेशन ओरछा का है। स्टेशन से ओरछा नगर लगभग तीन मील दूर है। ओरछा बुंदेले राजाओं की प्राचीन राजधानी है। यहां बेतवा और जामने दो नदियों का संगम विशेष रूप से दर्शनीय है। संगम के मध्य एक विशाल भवन विद्यमान है। इसे ल्वा कहते हैं।

बेतवा के तट पर बसे इस नगर में मन्दिरों का विशेष महत्व है। कुछ प्रसिद्ध मन्दिर हैं—रामराजा का मन्दिर, चतुर्भुजनाथ का मन्दिर, लक्ष्मीनारायण का मन्दिर, चन्द्रसखी का मन्दिर, वनवासी भगवान का मन्दिर, नरसिंह मन्दिर और महावीर मन्दिर। कहा जाता है कि जब यवन आक्रमक लोदी ने इस मन्दिर में महावीर की मूर्ति को तोड़ने के लिए हथौड़ा उठाया तो वह छूटकर उसके ही माथे में लगा। भय से उसने फिर महावीर की मूर्ति को खण्डित नहीं किया।

बेतवा किनारे एक विशाल दुर्ग भी अवस्थित है जिसके प्रकोष्ठ में कई सुंदर महल बने हुए हैं। इनमें जहांगीरी महल अत्यन्त कलापूर्ण है। इसके झरोखे और चित्र विशेष दर्शनीय हैं। दुर्ग की रक्षा हेतु चारों ओर गहरी खाई है जिसको अडवारा कहते हैं। बेतवा तट पर ही स्व० वीरसिंह जू देव प्रथम मंत्री कृपाराम गौड तथा अन्य राजाओं की समाधियां भी दर्शनीय हैं।

बेतवा ने ओरछा को अपनी पावन धारा से तीन ओर से घेरा हुआ है जिसके कारण इसकी शोभा और भी बढ़ गई है। बेतवा के घाटों में रानघाट कंचनाघाट तुंगारण्यघाट विशेष रमणीय हैं। तुंगारण्यघाट के समीप तुलसी पहाड़ी है। जनश्रुति है कि यहीं गो० तुलसीदास ने कवीन्द्र केशवदास को राम कथा श्रवण कराकर प्रेतयोनि से मुक्त किया था। समीप ही तुंगारण्य है जहां तुंग ऋषि ने तपस्या की थी।

यहां के राजा वीरसिंह जू देव प्रथम ने अपने तुलादान में मथुरा में इक्यासी मन स्वर्ण दिया था और यहीं के हरदौल (हरदेव) ने अपने भाई की भावज के सतीत्व की प्रतीति कराने के लिए हँसते-हँसते विषपान कर लिया था।

यहां के वन में सांभर, तेंदुआ, हिरण, रोज अधिक पाए जाते हैं। वृक्षों में अर्जुन, छीताफल, पलास, आंवला, कारेर, करघई अधिक हैं सागौन, शीशम, पीपर, नीम, रसाल आदि वृक्ष भी होते हैं। पक्षियों में नीलकण्ठ, चातक, मोर, तोता अधिक हैं।

प्राचीन काल में ओरछा में बागों की संख्या अधिक थी। इनकी रोम पट्टियां बेतवा के पूर्वीय भाग में आज भी मिलती हैं। आज यहां केवल एक फूल बाग ही सुरक्षित है इसमें नौ चौक हैं। इसमें तहखाने के रूप में ग्रीष्म-

भवन बनाया गया है। बसन्त दरबार की बैठक भी विशेषतः दर्शनीय है। इसके सामने पाषाण का कलापूर्ण रंगपात्र (इसमें बसंत और फाग महोत्सव में केशर घोली जाती थी) है जिसे जाम की नाद भी कहते हैं।

फूलबाग के प्रमुख द्वार पर सौ सौ फीट ऊँचे दो स्तम्भ बने हैं जिनको लोग सावन भादों कहते हैं। इन खम्भों में जो छिद्र बने हैं उनके द्वारा ग्रीष्मभवन में वायु प्रवेश कर उसे शीतल रखती है। यहां का यह कला कक्ष विज्ञ द्वारा परीक्षणीय है। एस यहां अनेक स्थल हैं। ओरछा सभी दृष्टियों से अवलोकनीय एवं दर्शनीय है।

## बरुआसागर

झांसी मानिकपुर रेलवे लाइन पर ओरछा के बाद दूसरा स्टेशन बरुआसागर का है। इसको बुंदेलखण्ड में शिमला का गौरव प्राप्त है। यहां का किला कम्पनी बाग और उदतोसिंह का बनवाया हुआ तालाब बुंदेला तालाब और झरना विशेष रूप से दर्शनीय है। इस तालाब से कई नहरें निकली हैं जो सिंचाई के काम आती हैं। यहां अरबी खरबूजा अमरूद सीताफल लीचा, हल्दी और आम की फसल अच्छी होती है। तालाब के उत्तरी पार्श्व में स्थित स्वामी शरणानंद जी का आश्रम—स्वर्गाश्रम है जो वस्तुतः अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करता है।

## मऊरानीपुर

मऊरानीपुर झांसी—मानिकपुर लाइन पर अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम मधुपुरी है। इसको ओरछा नरेश मधुकर शाह ने बसाया था। यहां के सिद्धस्थानों में केदारनाथ का पहाड़ प्रमुख है, जिसपर केदारेश्वर भैंसा पर लिंग रूप में प्रतिष्ठित हैं। दूसरा चण्डिका का पहाड़ है जहां चण्डिका भगवती विराजमान हैं। पार्श्व में सुखनई नदी के तट पर धनुषधारी राम का मंदिर भी दर्शनीय है।

यहां प्रत्येक वर्ष भादों शुक्ल द्वादशी को जल विहार का मेला वृहद् रूप में भरता है। इसमें दूर दूर के व्यापारी व दर्शक आते हैं। इसके अतिरिक्त सर-सम्मेलन रामलीला, नौटंकी दंगल आदि का आयोजन भी होता है। इसी पावन भूमि ने मां भारती के अमर गायक राष्ट्रकवि घासीराम व्यास प० घनश्यामदास पाण्डेय प० नरोत्तमदास पाण्डेय मधु उपन्यास सम्राट वृंदावनलाल वर्मा प्रभृति को जन्म देकर देश का मस्तक उन्नत किया है।

**झारखण्ड**

झारखण्ड डगाई (डाग जगली स्थान) क्षेत्र का प्रमुख मनोरम तीर्थस्थान है जो मऊरानीपुर (झांसी) से पदल माग द्वारा, खेरीगुरा ग्राम के निकट धसान सरिता के तट पर अवस्थित है।

यहा एक विशाल नागनाथ नाम का पवत है जिसकी गुफा के मध्य नागनाथ शिव की कलापूर्ण मूर्ति विद्यमान है। पवत के सम्ब ध म जन श्रुति है कि इसकी गुफा के मध्य से चित्रकूट के लिए माग गया है।

धसान सरिता क मध्य ऋषि विश्वामित्र न तपश्चर्या की थी स्नान करन वालो को कभी कभी विशेष पव पर उनके त्रिशूल के दशन होते है।

**ऐरच**

ऐरच झासी से ४४ मील दूर वेतवा नदी के तट पर अवस्थित है। कहा जाता है प्राचीन काल म हिरण्यकश्यप की राजधानी यही रही है ढिकाली पहाड जिस पर से भक्त प्रह्लाद को गिराया गया था तथा मुख्य द्वार जहा होलिका दाह हुआ था आज भी यहाँ विद्यमान है। धार्मिक स्थानो म श्री नृसिंह मदिर रामघाट हिरण्यकशिपु का दौला आदि स्थल दशनीय हैं।

**राठ**

राठ के लिए झासी मानिकपुर रलवे लाइन क कुलपहाड स्टेशन पर उतर कर २० मील दूर जाना पडता है। जनश्रुति के अनुसार यह राजा विराट की राजधानी है। पाण्डवो क दाह के लिए दुर्योधन द्वारा बनवाये गये लाक्षागृह के चिह्न भी यहा मिलते हैं। आज यहा जो वस्ती बसी है, वह भू गभ म धसे हुए किले पर बसी है। इसकी प्रामाणिकता कोट बाजार से मिलती है।

इस प्राचीन नगर म आज भी पुरान मन्दिर और मठो क भग्न खण्ड भूलुण्ठित हो रह ह। यहा पर मनियो का कभी कभी प्राचीन शिलालेख भी प्राप्त हो जाते हैं। कीचक वध स्मारक स्तम्भ जिस लोग भामू कहते है, अभी कुछ दूर जीर्णावस्था म स्थित है।

**कालिजर**

इसका निर्माण च द्र ब्रह्म चदल न सन १०६० क लगभग करवाया था। उससे पूव क नरेन्द्रो न अजयगढ मनियागढ मडफा बारीगढ, मादहागढ महोबा आदि बनाये थ।

और पुरुषोत्तम महात्म्य मे आता है। उसे किसी कवि ने इस प्रकार छन्द बद्ध किया है—

सतयुग कीरत नाम, महत गिरी त्रेता कहँ।
द्वापर पिंगल वाम, कालिंजर कलि जानिए।
कालिंह् जीण करब जिहि गिरि पर।
ताकर नाम होय कालिंजर।

इस प्रकार कालिंजर की मान्यता बुन्देलखण्ड के जन जन के मानस पर अद्यापि श्रद्धा सहित परिव्याप्त है।

महोबा

महोबा झासी मानिकपुर रेल्वे लाइन पर अवस्थित है। यह प्राचीन समय म चन्देल राजा परमाल की राजधानी रही है। इसी नगर म भारत विख्यात समर शूर आल्हा ऊदल हुए है, जिनका आल्हा खण्ड (जगनिक द्वारा रचित) पूर्ण भारतवर्ष म बडे उत्साह से गाया जाता है। यहा रमणीय स्थलो म वेलाताल विजय-ताल कीर्तिसागर और मनिया देव विशेष प्रसिद्ध हैं—

करवी

करवी की सुन्दर नगरी झासी मानिकपुर रेलवे लाइन पर बसी है। यहा से चित्रकूट की यात्रा म सुविधा रहती है। यहा पहले पेशवाओ का राज्य था। करवी के दर्शनीय स्थलो म गणेश बाग मुख्य है जहा खजुराहो सदृश वास्तु कला म श्रेष्ठ मन्दिर हैं। यहा एक विशाल बावडी भी है। इसके सात खण्ड हैं। परन्तु केवल एक खण्ड ही दिखाई देता है शेष खण्ड जल मग्न हैं।

यहा की वनस्थली बडी रमणीय है। इसके पार्श्व म पयस्विनी सरिता प्रवाहित हो रही है। यहा के जयदेव संस्कृत विद्यालय म विश्वविश्रुत महा पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था।

चित्रकूट

चित्रकूट का प्राचीन नाम सीतापुर है। यह झासी मानिकपुर रेल्वे लाइन पर एक प्रमुख तीर्थ है। गो० तुलसी दास, सूर दास, रहीम आदि कवियो ने इसका महात्म्य गाया है। यहाँ के दर्शनीय स्थलो म कामतानाथ पर्वत का स्थान सर्वोपरि है। इसकी परिक्रमा ४ मील लम्बी और पक्की बनी हुई है। अन्य स्थल क्रमश इस प्रकार है (१) बाके सिद्ध (यहाँ सिद्धपुर ग्राम म दो सुन्दर कुण्ड हैं जो एक प्रधान ने बनाये है) (२) कोटि तीर्थ (कामतानाथ से दो मील दूर जहाँ कोटिश मुनियो ने तपश्चर्या की थी) (३) देवागना

उनाव

झांसी से सात मील पुष्पावती (पहूज) के तट पर बालाजी के नाम से विख्यात है। यहां सूर्यदेव का मन्दिर दुर्ग सदृश बना है। इसी स्थान पर अमरसिंह सेंगर ने साधना द्वारा मंत्र सिद्धि प्राप्त की थी। यहां एक छोटी नदी अनगोरी दूल्हाराजा की टौरिया से आकर महावीर जी के मन्दिर समीप पुष्पावती में मिली है। इन दो नदियों के जल मिश्रण से ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न हुई है कि इसमें स्नान करने से चर्मरोग दूर हो जाते हैं। इस कारण यहां प्रत्येक रविवार को सैंकड़ा मील से यात्री स्नान करने आते हैं।
इसके अतिरिक्त फागोत्सव और रथ-यात्रा पर भी यहां विशाल मेला भरता है जो बुन्देलखण्ड के मेलों में विशेष स्थान रखता है।

सेंवडा

सेंवड़ा दतिया जिले का एक प्रमुख प्राकृतिक तीर्थ स्थान है। यहां सिन्ध नदी ने अपने प्रपात द्वारा एक गहरा जल-कुण्ड बनाया है जो सनकुआ के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर पद्मपुराण के अनुसार ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार ने तपश्चर्या की थी। नदी के तट पर एक शिव मन्दिर है जहां गोमुख से शिवलिंग पर अविरल गति से एक धारा गिरा करती है। सिन्ध नदी के समीप ५० फीट ऊंचा काली का मन्दिर है। निकट ही वनस्थली में 'शिला नारदा' है जो नारद मुनी की सिद्ध तपस्या स्थली है। जनश्रुति है कि यहाँ छत्रजीत महाराज ने पीर बादशाह को मारा था। दूसरा प्रमाण इस पंक्ति से मिलता है पीर मारो सेंवड़ा में छत्रजीत महाराज। इसके अतिरिक्त यहाँ शिकार के लिए सघन वन है जिनमें शेर तेंदुआ, साबर हिरण आदि जन्तु पाये जाते हैं। सनकुआ में मगरमच्छ के अतिरिक्त एक अन्य भयानक जल जन्तु पातर है, जो जल में मगर से भी अधिक शक्तिशाली होता है। इसके पैर खजूर सदृश होते हैं। रखना है किन्तु देखने में छोटा होता है। इसमें कहा जाता है राजा पृथ्वीसिंह सिन्ध नदी के तट पर एक प्राचीन दुर्ग है जिसे कहा जाता है राजा पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' ने नया रूप दिया था। यहीं अमर आत्य की जन्मभूमि है।

३ मई १८०१ को यहाँ राजा शत्रुजीत और ग्वालियर के राजा सिंधिया के मध्य अन्तिम युद्ध हुआ। इस सम्बन्ध में कप्तान टाड लिखता है कि सिंधिया के सेनाध्यक्ष पेरा फ्रांसीसी की फौजों का सेवढ़ा के राजा ने पराजित किया जिसमें सिंधिया के ३०० हजार सिपाही खेत आये। प्राचीन दर्शनीय स्थानों में पुराताय का स्थान मठ सरस्वती मन्दिर बाबा बरसुनार का टांका, जिस पर की बरार आदि प्रसिद्ध हैं।

### दिनारा

दिनारा झासी से १८ मील दूर पश्चिम म एक रमणीक प्राचीन ग्राम है। यहा बीरसिंह देव प्रथम का निर्माण कराया सरोवर का लाल पत्थर का दुग सदृश बाध बधा है, जो इस क्षेत्र के सोल्ह ग्रामो के खेतों को सीचता है। सरोवर के समीप पहाड पर एक सिद्ध की गुफा है जिसकी मायता मे यहा प्रतिवष सावन शुक्ल १५ को रक्षा बधन का मेला भरता है। इस अवसर पर यहा सरोवर मे नीबू डाल कर फिर उसको लक्ष्य बनाकर निशानेबाजी की महत्व पूण, उत्साहवद्धक प्रतियोगिता भी होती है।

### नरवरगढ

नरवर—महाराज नल की राजधानी रही है। जनश्रुति है कि महाराज नल ने जब वन-गमन के लिए किले से प्रयाण किया था तब उनके शोक से गोकाकुल हो सिंह द्वार के कगूर भी झुक गये थे जो अभी भी उसी अवस्था म हैं। यहा का प्राचीन दुग खडहर के रूप म विद्यमान है। इसम अब हिंसक पशु स्वच्छन्द विचरण करते है। यहा पाश्व म आठ कुआ और नौ बावडी बनी है, जिन पर पाषाण की कलापूण जल भरने वाली युवतिया की मूर्तिया निर्मित हैं। इनके सम्बध मे पक्ति प्रचलित है— आठ कुओ नौ बावडी सारा सौ पनिहार।

### ग्वालियर

ग्वालियर झासी दिल्ली लाइन पर अवस्थित है। यहा के महाराजा मानसिंह तोमर (जिनका राज सन १५१६ ई० तक रहा) बडे प्रतापी राजा हुए हैं। इन्होंने सिकन्दर लोदी को कई बार पराजित किया था। ये वास्तुकला के अत्यधिक प्रेमी थे। इनके द्वारा निर्मित कराए हुए स्थानो म मोती झील गूजरीमहल मान मन्दिर सास बहू का मन्दिर (सहस्त्रबाहु का मन्दिर) विशेष दर्शनीय हैं। इन मन्दिरो म भित्ति चित्रा की जो भाव व्यजना है वह आज भी बुन्देलखण्ड के कला प्रेमिया के समक्ष यहा की प्राचीन सस्कृति की झलक प्रस्तुत करती है।

सन १६०० ई० मे यहा माधवराव सिंधिया राजा हुए। वे भी महाराज मानसिंह सदृश वास्तुकला और सगीत कला के प्रमी थे। उन्होने फूलबाग, मोती महल, जीवाजी सिंधिया का बाडा, और अपने पूज पुरुषा की कई छतरिया (समाधिया) का निर्माण कराया। सगीत-सम्राट-तानसेन के मकबरे का

जीर्णोद्धार भी उन्होंने ही कराया इसके अतिरिक्त उन्होंने शिवपुरी में और भी कई रमणीक स्थानों का निर्माण कराया है।

### जतारा

जतारा या प्राचीन ग्राम मऊरानीपुर टीकमगढ़ सड़क पर स्थित है। इसे 'बुन्देलखण्ड का काश्मीर' भी कहा जाता है। यहाँ के सरोवर मदनसागर से कई नहरें निकली हैं। सरोवर का निर्माण मदन वर्मा ने बारहवीं शताब्दी के लगभग कराया था। इसके मध्य में 'मदनभवन' बनवाया गया था, जो आज भी इस सरोवर की शोभा बढ़ा रहा है।

ग्राम के समीप एक प्राचीन किला भी है, जिसके पार्श्व में एक सुन्दर उद्यान भी है।

### अछरूमाता

अछरूमाता तक पहुंचने के लिए निवारी स्टेशन से मड़िया ग्राम तक बस द्वारा यात्रा करनी होती है। फिर वहां से दो मील पैदल यात्रा करनी होती है। अछरूमाता बुन्देलखण्ड का एक प्रमुख तीर्थ-स्थान है। यहां बीहड़ वन में लगभग नौ इंच चौड़ा जल-कुण्ड है। इस कुण्ड को ही अछरूमाता की मान्यता प्राप्त है। कुण्ड में भरे जल के सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। एक बार ओरछा के किसी नरेश ने इसकी थाह लेने के लिए इसमें बरछी डाली थी। किन्तु वही बरछी कालान्तर में कई मील दूर वीर-सागर में जा कर निकली। इस जल कुण्ड के सम्बन्ध में यहां और भी कई किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। लेकिन इस जल कुण्ड की गहराई को अभी तक पूर्ण रूप से मापा नहीं जा सका। कुण्ड की दूसरी विशेषता यह है कि दर्शकों को दिया जाने वाला प्रसाद इसी जल कुण्ड में से निकाला जाता है। जल के बुलबुलों के साथ प्रसाद नीचे से ऊपर आता है। पुजारी उसको नारियल की खपरिया से उठाकर दर्शक भक्त को देता है। भक्त यहां जो मिठाई या मेवा भगवती को प्रसाद चढ़ाने लाता है उसे इसी कुण्ड में डाल दिया जाता है। सहस्रों वर्षों से यहां यही क्रम चल रहा है। समझा जाता है कि जिस भक्त को प्रसाद प्राप्त हो जाता है उसकी मनोकामना पूरी होगी।

यहां प्रत्येक वर्ष चैत्र मास के नवरात्र में एक विशाल मेला भरता है। इसमें बुन्देलखण्ड में निर्मित तथा उत्पन्न सभी वस्तुएं जैसे पीतल मिट्टी के बर्तन खिलौने सूत व ऊन के वस्त्र कम्बल जीरा, धनियां हल्दी अचार

आदि बिकने आते हैं और इन्हें खरीदने के लिए दूर दूर से व्यापारी आते हैं। यह मेला बुन्देलखण्डी रहन-सहन और बुन्देली लोक गीतो मे रुचि रखने वालो के लिए अध्ययन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है।

**कुण्डेश्वर**

यह टीकमगढ-ललितपुर मार्ग के मध्य अवस्थित बुन्देलखण्ड का विशेष रमणीय स्थान है। यहा शिव जी का मन्दिर है। यही कुण्डेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके सम्बन्ध मे यह जनश्रुति है कि एक खटीक की वधू कुडी मे धान कूट रही थी कि अनायास इस कुडी से दुग्ध की धार निकली और पश्चात् शिव लिंग प्रकट हो गया। इसी कारण इस शिव मूर्ति को कुण्डेश्वर कहा जाता है। और उसी काल से यहा का पुजारी उसी वश का खटीक ही चला आ रहा है।

मन्दिर के समीप जमडार नदी का सुन्दर प्रपात है जिसको उषा कुण्ड कहते हैं। इसी स्थान पर बाणासुर की पुत्री ऊषा नित्य प्रति स्नान करने आती थी और इसी स्थान पर ऊषा-अनिरुद्ध परिणय हुआ था। यहा से पाच मील दूर एक बानपुर ग्राम है जिसे बाणासुर की राजधानी बताया जाता है। बानपुर म चौबीस भुजी गणपति की सगमरमर की मूर्ति प्रतिष्ठित है जो बडी भाव पूर्ण बना है। कुण्डेश्वर के वन उपवन और उषा कुज, बरीघाट ऊषाघाट उषा विहार आदि बडे ही रमणीय स्थल हैं। इसी स्थान पर प० बनारसीदास चतुर्वेदी न बुन्देलखण्ड के सास्कृतिक उत्थान के लिए अडिग साधना की है।

**टीकमगढ**

टीकमगढ का प्राचीन नाम टेरी रहा है। जनश्रुति के अनुसार जब ओरछा म रामराज की स्थापना हुई तब महाराज प्रतापसिंह ने इसको ही राजधानी बनाया था। यहा के प्राचीन दुर्ग यनमहल जुगल निवास ढागाकुआ, बकुण्ठी, प्रताप सागर आदि ऐतिहासिक स्थान अवलोकन करने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वीरसिंह देव द्वितीय ने सर्वप्रथम इस *राज्य को भारतीय गणराज्य म विलय करने के लिए स्वतन्त्र भारत के प्रथम* राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को अर्पित किया था।

**मऊसानिया**

हरपालपुर छतरपुर के मध्य अवस्थित मऊसानिया चम्पतराय की राजधानी

रही है। यहीं सरोवर के समीप चम्पतराय के वीर पुत्र छत्रसाल और उनकी रानी कमल कुंवरि की छतरियां बनी हैं। यहाँ एक संग्रहालय भी है जिसमें छत्रसाल का भाला और जामा आज भी सुरक्षित हैं। प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक स्थलों में धुबेला ताल, और समीप में महल और सूर्य देव तथा शनिदेव के मन्दिर दर्शनीय हैं।

### अजयगढ़

अजयगढ़ बुन्देलखण्ड का स्वतन्त्र राज्य रहा है। यहां पहाड़ पर अजयपाल द्वारा निर्माण कराया हुआ एक विशाल किला है। इसके पांच फाटक हैं। पहाड़ पर दो जल-कुण्ड हैं जिन्हें पाषाण काटकर बनाया गया है। एक को गंगा और दूसरे को यमुना कुण्ड कहते हैं। इन कुण्डों का अत्यन्त निर्मल जल ग्रीष्मकाल में भी नहीं सूखता। यहीं एक प्राचीन रंगमहल बना है जो कि बुन्देली वास्तुकला का भव्य उदाहरण उपस्थित करता है। अनति दूर भूतेश्वर भगवान का एक दिव्य मन्दिर बना है जिसमें जाने के लिए परकोटा से नीचे होकर मार्ग गया है। मन्दिर में स्थित मूर्ति पर ऊपर के शिलाखण्डों से सदैव जल बिन्दु टपकते रहते हैं जो बड़े चमत्कारिक तथा नयनाभिराम प्रतीत होते हैं।

### पंडवाहा

पंडवाहा पहुंचने के लिए छतरपुर से बस द्वारा जाना होता है। यहां शिला-खण्डों से एक झरना गिरता है जिससे नीचे विशाल जल कुण्ड बन गया है। इसके जल में काष्ठ को पाषाण बनाने की अद्भुत शक्ति है। यात्रियों को इस जलाशय में से वृक्षों के ऐसे पत्ते डालियां प्राप्त होते हैं जो कि काष्ठ से पाषाण का रूप धारण कर चुके होते हैं।

जन श्रुति है कि इस स्थल पर पाण्डवों ने कुछ दिन निवास किया था। इसलिए ही इस स्थान का नाम पंडवाहा विख्यात हुआ है। इसके समीप एक बीहड़ वन है जिसका शेहर वन कहते हैं। यहां शेर तेंदुआ रीछ आदि हिंस्र पशु पाये जाते हैं।

### बिजावर

बिजावर की गणना बुन्देलखण्ड के प्रमुख प्राकृतिक स्थलों में की जाती है। यह तीर्थ-स्थान के रूप में भी प्रसिद्ध है। यहां वनस्थली में जटाशंकर भगवान का एक प्रचीन कलापूर्ण मन्दिर है जहां दो जल-कुण्ड हैं। इनमें स्नान करने से चमरोग नष्ट हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त यहां पर और भी कई दर्शनीय स्थल हैं। करम्या के

पाण्डव पर एक साथ पाँच सरिताएँ पहाडो को चीर-कर, कलोल करती हुई समाती हैं, और फिर कई मील के अन्तर से एक स्थान पर प्रकट होती हैं। एक और स्थल है सलय्या के पाण्डव, यहा पवत पर कई कूप बने हैं जिनमे अगाध जल भरा है किन्तु कभी-कभी यह जल लोप होकर एक निझर क रूप म नीचे गिरता है और, विलक्षण बात है कुछ समय बाद विलीन हो जाता है।

## पन्ना

पन्ना के लिए छतरपुर से बस द्वारा जाना पडता है। पन्ना महाराज वीर छत्रसाल बुदला की राजधानी रहा है। यहा भारत की प्रसिद्ध हीरे की खाने हैं। जिन स्थानो से हीरे निकलते हैं, उन्हें प्रत्येक वष नीलाम किया जाता है।

यहाँ राजा छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ का स्फटिक जटित विशाल मन्दिर है। गुरु प्राणनाथ न साम्य भाव की दृष्टि से धामी मत चलाया था जिसके अनुयायी न केवल बुदेलखण्ड म अपितु सारे भारतवष म हो गए थे। आधुनिक युग म भी यह पर्याप्त मात्रा म पाए जाते हैं। मत के आधार रूप इनका एक धमग्रन्थ भी है, जिसका पूजन होता है। इस ग्रथ मे पुराणो और कुरानो के उपदेशा को सम्मिलित किया गया है।

इस मन्दिर के अतिरिक्त यहा श्री जुगलकिशोर का मन्दिर भी दशनीय है। किले के मदान म महाराज वीर छत्रसाल की अष्टधातु विरचित अश्वारूढ मूर्ति है जो राजा श्री यादवेन्द्रसिंह बुदेला द्वारा प्रस्थापित की गई थी।

## बाघाट

बाघाट चिरगाव से पूव दक्षिण की ओर छ मील दूर एक ग्राम है। यह ग्राम गुरु द्रोणाचाय के नाम से प्रसिद्ध है। समीप म एक ग्राम बीजोर है, जो इससे कुछ बडा है। आज से १८००, १६०० वष पूव विन्ध्य शक्ति नामक एक पुरुष ने अपने को वाकाट निवासी स्वीकार किया था। इन्ही विन्ध्य शक्ति के पुत्र प्रवीर सेन हुए जिन्होने शक, हूण शक्ति को पराजित किया था। इसका प्रमाण अजन्ता की गुफाओ और अजयगढ के शिलालेखा म प्राप्त है।

बीजोर ग्राम के पश्चिम म दो पहाडियाँ हैं। प्रथम पहाडी पर गुरु द्रोण की तलया है और उसके समीप प्राचीन मूर्तियो के कुछ भग्न प्रस्तर बिखरे पडे हैं जो वाकाटक की प्राचीनता के प्रतीक है। इसी पहाडी के पश्चिम म एक और पहाडी है, जिसके तीन खण्डो पर लाल रग के चित्र अकित हैं। इसी प्रकार के चित्र बाघाट की एक पहाडी पर भी चित्रित हैं। जनश्रुति के अनुसार यह चित्र पाच हजार वष के माने जाते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि अजन्ता की गुफाओ मे जो चित्र अकित है उनका स्रोत बाघाट ही रहा होगा।

एकलव्य जो गुरु द्रोण का शिष्य था, यहीं विन्ध्य टोरियों में निवास करता था। आज भी गुरु द्रोण के वंशज भार्गव (भृगु) ब्राह्मण बाघाट में अत्यधिक संख्या में निवास करते हैं।

गढ़कुण्डार

गढ़कुण्डार झाँसी से पूर्व पूर्वोत्तर कोने में तीस मील दूर अवस्थित है। कहा जाता है, यहां का विशाल किला गोंड राजा ने बनवाया था। इस किले पर बहुत काल तक मौर्य राजाओं का अधिकार रहा, तदुपरान्त सन ११८२ तक यह पृथ्वीराज चौहान के सामंत खेतसिंह के आधीन रहा।

कुण्डार का अंतिम खंगार राजा हुरमत सिंह था, जो सन् १२८८ (सम्वत १३४५) तक राज्य करता रहा। बाद में यहाँ बुंदेले राजाओं का शासन रहा और सन् १५०७ में राजा रुद्रप्रताप ने जब ओरछा को अपनी राजधानी बनाया, तब से यह उजड़ता चला गया।

कुण्डार के वीर योद्धाओं के शौर्य से प्रभावित हो पदमभूषण डा० वृन्दावन लाल वर्मा ने 'गढ़ कुण्डार' नामक उपन्यास लिखा। कुण्डार पर्वतों और वनों से परिवेष्ठित स्थान है। यहाँ गढ़वासिनी देवी का कलापूर्ण मन्दिर और सिंदूर तालाब दर्शनीय हैं।

कालपी

कालपी को 'बुन्देलखण्ड के द्वार' की मान्यता प्राप्त है। यहां भी सन १८५७ में अंग्रेजों से महारानी लक्ष्मीबाई का भीषण युद्ध हुआ था। यहां के प्राकृतिक स्थानों में यमुना के कगारों की विशाल गुफाएं दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से व्यास टीला (जहां वेद व्यास ने जन्म लिया था) और 'लंका' प्रसिद्ध हैं। देशी कागज का निर्माण प्रथम यहीं हुआ था, जिसकी प्रशंसा राष्ट्रपिता गांधी ने भी की थी।

धोबरा

धोबरा में चन्देल राजाओं के बनाए हुए पाषाणों से बंधे कई सरोवर हैं। यहां दो रमणीय प्रपात भी हैं जिनका जल ग्रीष्मकाल में भी प्रवाहित होता रहता है। समीप ही कगार में एक विशाल गुफा है जिसके प्रकोष्ठ में सुन्दर चित्रकारी चित्रित है। गुफा में ऊपर नन्हीं-नन्हीं जल की बूंदें टपकती रहती हैं जो बहुत सुहावनी लगती हैं। इसके एक ओर धसान और दूसरी ओर केन नदी कल्लोल करती हुई अपनी दिव्य छटा विकीर्ण करती है। इन नदियों के किनारे वनों में सागौन, तेंदू, अचार, महुआ के घन वृक्ष मिलते हैं। पशुओं में शेर, तेंदुआ, रीछ, सांभर आदि स्वच्छन्द रूप से विचरण करते पाए जाते हैं।

### देवगढ़

देवगढ़ झांसी-बम्बई लाइन पर जाखलौन स्टेशन से नौ मील दूर बेतवती नदी के किनारे स्थित है। यहाँ की वनस्थली अत्यन्त मनोरम है जिसके मध्य विष्णु मंदिर अवस्थित है। यह मन्दिर चतुर्थ या पंचम शताब्दी में निर्मित हुआ था। देवगढ़ के मन्दिरों में चौरस छतों के ऊपर जो शिखरों का बनाव है वह साँची, तिगवा, नचना, कुठारा, तथा उत्तर भारत के अन्य मन्दिरों सदृश प्रतीत होता है। यहाँ जो दशावतार का मन्दिर है उसका निर्माण काल छठी शताब्दी से पूर्व का माना जाता है। यह मन्दिर उत्तर भारत में प्रचलित पंच-रत्न शैली का उदाहरण उपस्थित करता है। इसका गर्भ गृह सादा, चौकोर (१८-६।। ।। १८-६।।) है और इसका सिंह द्वार पश्चिम की ओर है।

विष्णु मन्दिर के द्वार की चौखट (११-२।। × १०-६।।) में जो मूर्तियाँ बनी हैं बुंदेली मूर्तिकला की प्रकृष्टतम प्रतीक हैं। मन्दिर के गर्भ गृह में दाहिने गंगा और बाएं यमुना की मूर्तियाँ अंकित हैं। इनके ऊपर छत्र सुशोभित हैं और उत्तर की ओर गजेन्द्र मोक्ष, पूर्व की ओर वाल्नर नारायण तथा दक्षिण की ओर अनन्तशायी विष्णु भगवान विराजमान हैं। अन्य शिला पटों पर रामायण और महाभारत के दृश्य हैं जो भारतीय इतिहास और संस्कृति के द्योतक हैं।

जब तक यह पाषाण कि जीवित अरे धरा पर।
कला अमर है कलाकार भी अजर अमर है।

हरि'

### चंदेरी

चंदेरी चंदेलों की प्राचीन राजधानी रही है। यहाँ के किले का निर्माण सम्वत ११०० १२०० के मध्य चन्द्र ब्रह्म राजा ने कराया था। यहाँ के स्थानों में 'बाबर कटान (जब बाबर ने यहाँ चढ़ाई की थी तब उसने पहाड़ काटकर यह मार्ग बनवाया था) मालिन खोह जागेश्वरी का मन्दिर सिंहगढ़ तालाब जौहर तलया (बाबर से जब युद्ध में मेदिनीराय वीरगति को प्राप्त हुए तब उनकी रानी मणिमाला ने अपनी पांच सौ दासियों सहित अपने आपको यही चिता में होम दिया था) आदि ऐतिहासिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

### विदिशा

विदिशा नगरी झांसी बम्बई रेल मार्ग पर बेतवा नदी के बायें तट पर बसी है। किन्तु यह वह प्राचीन विदिशा नहीं है, जिसका वर्णन महाकवि कालिदास

ने किया है। यह नगरी तो यहाँ से दो मील पश्चिम की ओर तलहटी म अवस्थित है जिसको दशरथ पुत्र शत्रुघ्न के राजकुमार सुबाहु ने बसाया था। कालान्तर यह वभवपूर्ण नगरी हैहय क्षत्रियों की राजधानी भी रही है। बाद में मौर्य सम्राट अशोक के काल म इसकी प्रतिष्ठा और भी अधिक हो गई थी।

बौद्ध-काल म यह नगरी भारत म व्यापार का एक मुख्य केन्द्र थी, जिसका सम्बन्ध गगा किनारे बसे नगरा और दक्षिण म समुद्री तट पर बसे नगरा तक जुड़ा हुआ था।

विदिशा हिन्दू तथा बौद्धा का धमकेन्द्र भी रही है। इसकी प्रामाणिकता साँची के स्तूप और स्थली म गुम्फित मकरवाहिनी—जाह्नवी, कुबेर यक्ष, तथा यक्षिणी आदि प्राचीन मूर्तिया स मिलती है। इस स्थल पर प्राप्त शुग कालीन कल्पवक्ष स्तम्भ शीष क आधार पर पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर मोतीचन्द्र ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ई० पू० दूसरी शती म यहाँ पर अवश्य ही कोई कुबेर का मन्दिर था, और यह मूर्तियाँ सम्भवत उसी मन्दिर की हैं।

शुग काल म विदिशा के अचल म वैष्णव और बौद्ध धम प्रचलित थे तथा नागो के शासन काल म यहाँ शव मत का व्यापक प्रचार रहा एव वाकाटक क राजा विन्ध्यशक्ति को भी पुराणो ने विदिशा का शासक माना है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय जब यहाँ पधार तब उन्होंने विदिशा क समीप उदयगिरि के पवतो म कई गुफाओ और वष्णव मूर्तिया का निर्माण कराया। इसके उपरान्त विदिशा का वभव क्षीण होता गया और सातवी शताब्दी के प्रारम्भ में ही विदिशा का अवस्था जीण शीण हो गई।

जनश्रुति है कि वतमान विदिशा उसके पश्चात् बसी है।

## ऐरन

ऐरन का प्राचीन नाम ऐरिकण था। यह बम्बई दिल्ली रेल माग पर बीना जक्शन से नैऋत्य कोण से ६ मील, और खुरई स्टेशन स १२ मील वायव्य कोण पर बीना नदी के किनारे बसा है। बीना नदी की निमल धारा इसको तीन ओर से अपने अचल म समेटे हुए है। यह स्थल सागर जिले का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल माना जाता है। ईसा स २ हजार वर्ष पूर्व बसाया गया यह वैभवशाली नगर रहा है। ग्यारहवीं शताब्दि म महमूद गजनवी ने यहाँ चडराय को पराजित कर खदेड़ दिया था। 'सरआ' दुग पर उसका आधिपत्य होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। यहा की कुछ खण्डित मूर्तियो म बीस फीट लम्बी वनमाला धारण किए विष्णु मूर्ति तीस फीट लम्बा सूय स्तम्भ जिसम एक शिला लेख अकित है और एक दूसरा स्तम्भ है जो बीस फीट लम्बा है दशनीय हैं। समीप ही वाराह की एक विशाल मूर्ति भी विद्यमान है।

कहा जाता है सोलह सौ वर्ष पूर्व सम्राट समुद्रगुप्त इस स्थान से इतने प्रभावित हुए थे कि वह कुछ समय तक यहीं निवास करते रहे। यहाँ चतुर्थ शताब्दी का एक विष्णु मन्दिर भी है जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। इसके प्रांगण में सैंतालीस फीट ऊँचा विजयस्तम्भ है। इसके शिरोभाग के चतुष्कोणों पर सिंह बने हुए हैं और मध्य भाग में एक-दूसरे से पीठ लगाए हुए दो युवतियों की मूर्तियाँ सुशोभित हैं। इस कलापूर्ण स्तम्भ पर खुदे हुए लेख में कहा गया है सम्वत ४८८ में बुद्ध गुप्त के राज में मातृ विष्णु और धन्य विष्णु, दो भाइयों ने जनार्दन के हेतु खड़ा किया।

इस विष्णु मूर्ति के समीप वाराह की एक अति सुन्दर और विशाल मूर्ति है। यह ग्यारह फीट मोटी और साढ़े पन्द्रह फीट लम्बी है। इसके विशाल वक्षस्थल पर भी एक लेख अंकित है जिससे यह प्रमाण मिलता है, कि इस को धन्यगुप्त ने हूण राजा तोरमाणशाह के राज्य के पूर्व प्रस्थापित किया था।

धामौनी

धामौनी सागर से २८ मील उत्तर में झाँसी की पुरानी सड़क पर अवस्थित है। यहाँ विन्ध्य श्रेणियों की अनुपम शोभा रम्य वनस्थली केतकी करोंदी के फूलों की मोहक महक और शिला खण्डों से निःसृत निझरों की कल-कल ध्वनि एवं निर्मल धारा बुंदेलखण्ड की गुण गरिमा का गान करती पथिक को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करती है।

धामौनी बादशाह जहाँगीर की रमणीय नगरी रही है। जहाँगीर यहाँ हाथियों का एक विशाल मेला लगवाया करता था, जिसमें सभी प्रान्तों और रजवाड़ों से हाथी क्रय विक्रय के लिए लाए जाते थे।

सन १६७६ ई० में औरंगजेब ने यहाँ एक कलापूर्ण मसजिद निर्मित कराई थी जो आज भी 'औरंगजेब की मसजिद' के नाम से विख्यात है। इसके निर्वाह के लिए उसने 'सेसाई और इशाकपुर' दो ग्राम निश्चित किए थे। अकबर के वजीर प्रसिद्ध विद्वान अबुलफजल की जन्मदात्री यही पुण्यभूमि रही है।

मंडला के राजा सूरतशाह द्वारा निर्मित यहाँ का विशाल दुर्ग इस काल में भी अपने जीर्ण शीर्ण बुर्जों को उठाए हुए उस स्वर्ण-युग की स्मृति दिला रहा है। इसकी चहार दीवारी १५ फीट चौड़ी और ५० फीट ऊँची है। ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव प्रथम इस दुर्ग की रक्षा प्राण पण से करते रहे थे। धामौनी आज भी बुंदेलखण्ड की प्राचीन संस्कृति और ऐतिहासिक गाथा का गान करती है।

विनायका

विनायका नगरी सागर जिले के अन्तगत बडा से १० मील पश्चिम म बसी है। शहर और बाकरई सरिता के मध्य यहां १७, १८वी शती के अनेक कलापूर्ण स्मारक विद्यमान हैं। विनायका के मध्य म पाषाण का २० फीट ऊँचा विजय-स्तम्भ है। इसका शिरोभाग चौकोण है। शिल्प का यह श्रेष्ठ नमूना, जन श्रुति के आधार पर भीम गदा के नाम से विख्यात है। समीप ही एक भव्य मन्दिर है जिसे मढी कहते हैं। इसका प्रत्येक द्वार और दीवारें देवी-देवताओं की मूर्तियों से सुशोभित हैं।

यहा स एक फर्लांग दूर महावीर जी का सुदर मन्दिर है। मूर्ति ७ फुट ऊँची है। इसकी भाव मुद्रा, भुजदड तथा मांसपेशियों का उभार अति उत्कृष्ट कला के नमूने हैं। इसके अतिरिक्त यहां कुछ दूर दक्षिण म महिषासुर-मर्दिनी का एक विशाल मन्दिर सुशोभित है। इसकी कलापूर्ण सगमरमर की मूर्ति तीन फीट ऊँची है।

विनायका को गढा मडला क राजा ने पन्द्रहवी शताब्दी म बसाया था। पश्चात मडला के राजा को युद्ध म परास्त कर ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव प्रथम ने इसे अपने अधिकार म लिया और लगभग सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी मे यहा एक विजय-स्तम्भ बनवाया।

खिमलासा

खिमलासा सागर से ४१ मील दूर पर अवस्थित है। यहा हिंदू मुसलमानो द्वारा निर्मित एक दुग है जो ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू मुस्लिम एकय का प्रतीक है। इसके प्रकोष्ठ म एक कलापूर्ण भवन बना है, जिसको शीश महल कहते हैं। यह मौन भाव से बुन्देलखण्ड की गौरव गाथा सुना रहा है। इस महल म दपण जडे हैं। इसके समीप पजपीर की दरगाह है जिसकी पाषाण से बनी जाली उस युग के वास्तुकला क कलाकारों का पुण्य स्मरण दिलाती है।

यहाँ प्राचीन काल म सभवत सती प्रथा का प्रचलन रहा होगा क्योंकि यहाँ पाषाण के ऐसे अनेक स्मृति चिह्न गडे हुए हैं जिनम तिथि और सम्वत उत्कीर्ण हैं। इसी नगर की पावनभूमि न अठारहवीं शताब्दी की प्रसिद्ध कवयित्री लेखिका विदुषी अचलोबाई को जन्म दिया था।

राहतगढ

राहतगढ को बुन्देलखण्ड की युद्ध भूमि का गौरव प्राप्त है। यहाँ के सुन्दर दुग म छत्तीस बुज है। यह दुग विस्तृत भूमि म बना है। इसके मध्य ६६ एकड

भूमि का मनोरम प्रागण है जिसमे मन्दिर, महल और बाजार बने थे। इसकी प्रामाणिकता राजगोडो द्वारा निर्मित बादल महल' से भिन्न है। अपनी अस्त-व्यस्त अवस्था म, आज भी इसकी शोभा कम नही है।

दुग मे एक जोगिन बुज है। कहा जाता है कि प्राचीन समय मे जब किसी अपराधी को प्राणदण्ड की सजा दी जाती थी, तब उसको इसी बुज से बीना नदी में ढकेल दिया जाता था। यहाँ तीन चार मील दूर पर एक सुदर प्रपात है जो ५० फीट की ऊँचाई से कल-कल गान करता हुआ नीचे गिरता है।

### गढ़ाकोटा

गढ़ाकोटा मे महाराज छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह ने अपनी रानी के लिये नगर से ढाई मील दूर रमना ग्राम मे १२ फीट चौडी तथा १०० फीट उँची एक धौरहर (स्तम्भ का रूप) बनवाई थी। इस पर चढकर वह सागर के जलते हुए प्रदीप दखा करती थी।

### भेडाघाट

भेडाघाट धुआधार के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह जबलपुर से नौ मील दूर नमदा नदी का एक अत्यत रमणीय स्थल है। उसको जल प्रपातो के राज्य' का गौरव प्राप्त है। यहा पर नमदा बडे वेग से घार रव करती हुई ४० फीट की ऊचाई से उज्ज्वल चट्टानो पर गिरती है। गिरने से जल-कण ऊपर उछल उछल कर धुआ सा उत्पन्न करते हैं। इस स्थल पर प्रात काल विशेष आनन्द आता है, जबकि सूय भगवान की किरणें उठते हुए जल कणो का आलिंगन करती हैं। उस समय इन्द्र धनुषी चादर आढे हुए प्रकृति सुदरी की रमणीयता दशको के हृदय का बरबस विमोहित करती है।

नमदा के समीप उच्चगिरि पर श्री गौरीशकर का एक दिव्य मन्दिर है, जो चौसठ योगिनियो के नाम स विख्यात है। यह मदिर निर्माण कला और मूर्ति-कला दोना म अद्वितीय है। इस मन्दिर की मूर्तिया का निमाण १०वी शती मे हुआ। कुछ नत्य मूर्तियाँ ८वी शती की और एक मूर्ति कुषाण काल—लगभग दूसरी शती की बनी हुई आकी गई है। यह मूर्तिया इस बात का प्रमाण है कि यहा की मूर्तिकला कितनी पुरानी रही है। यहाँ नमदा सगमरमर की ऊची चट्टानो के मध्य मे बहती है। पूर्णिमा की रात म यहा हजारो दशक नौका म बठकर नमदा का सौंदय निहारने आते हैं।

### मदन महल

मदन महल मदनसिंह गौड के गौरव का प्रतीक एक प्राचीन महल है। यह

स्टेशन से २ मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ वनस्थली में सघन वन वृक्षों के मध्य शिला (चट्टान) पर विन्ध्य वालों की अनगढ़ मूर्ति विद्यमान है। इस वन स्थली में शिला खण्ड एक दूसरे का ऐसा लघु आधार लिए खड़े हैं, जिसे देखकर आश्चर्य होता है।

अमरकंटक

अमरकंटक रीवा से दक्षिण में लगभग १६८ मील की दूरी पर अवस्थित है। अमरकंटक पहुंचने के लिए बीहड़ वनों और विशाल विन्ध्य श्रेणियों के कठिन मार्गों से जाना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग मध्य रेलवे के पेंड्रा रोड स्टेशन से जाता है। इस स्टेशन से अमरकंटक केवल १५ मील दूर रह जाता है। इस दूरी को तय करने के लिए राज्य परिवहन की सुविधा है। ये दोनों मार्ग प्रकृति प्रेमी यात्रियों के लिए दर्शनीय हैं। वन पथ में वन्य पशुओं का स्वच्छन्द विचरण सघन वन वृक्षावली के मनोरम दृश्य तथा झरनों का कल-कल निनाद पथिकों के हृदय में सहज ही उल्लास का संचार करता है।

रीवा से लगभग ३१ मील पर देवलोन नाम का एक मनोहर स्थान है। यहां विन्ध्य श्रेणियों के मध्य से सोन सरिता प्रवाहित हुई है। इसी स्थान से शाहडोल केवल ७० मील रह जाता है। यहां से लगभग एक मील पर एक सुन्दर कलापूर्ण मंदिर भी है। शहडोल से ४० मील बसनिहा तहसील है। यहाँ से अमरकंटक २५ मील रह जाता है।

इस स्थान से ही अमरकंटक के प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन होना प्रारम्भ हो जाता है। मनोरम वनस्थली का अवलोकन कर यह पंक्ति स्मरण हो आती है—
"सुर वन लज्जित हो करता सराहना है, कानन यहां का देख दल के हरा भरा।"

ज्योंही अमरकंटक की ऊँची नीची विन्ध्य घाटियां दृष्टिगत होती हैं। हृदय उल्लसित होने लगता है। मार्ग के दोनों ओर खड़े ताड़ के गगन चुम्बी वृक्ष उस सघन वन के सौन्दर्य को और भी आकर्षक बना देते हैं। दर्शक के मन में यह कल्पना जागृत हो उठती है कि इससे भी मनोरम क्या नन्दन-वन होगा!

ग्रीष्म ऋतु में यहां सन्ध्या-समय कहीं कहीं दावाग्नि के प्रज्वलित होने का दृश्य दिखाई दे जाता है जो दर्शक के हृदय में एक नवीन चेतना का स्फुरण करता है।

अमरकंटक के केन्द्रीय स्थल पर नर्मदा कुण्ड है जहाँ एक मनोरम सरोवर है। इसका जल सदैव प्रवाहित होता रहता है। यही नर्मदा का उद्गम स्थान है। समीप में ही एक लघु तालाब है जिसमें बड़े कुण्ड से जल प्रवाहित होकर निरंतर आता रहता है और इसके भीतर ही अपना मार्ग बनाता हुआ लगभग

दो मील की दूरी पर स्रोत रूप म दर्शित होता है और वहाँ पुन एक मनोहर जलाशय का रूप धारण कर लेता है। इस जलाशय के मध्य भाग मे शिव का कलापूर्ण मन्दिर विद्यमान है जिसके समीप देवी देवताओं के दस-बारह और छोटे मन्दिर बने हैं।

इस स्थान पर यात्रियो के लिए एक छोटी सी धर्मशाला बनी हुई है। नर्मदा कुण्ड के पूर्व भाग म लगभग दो मील पर एक ऋषि-कुटी है। इस कुटी के समीप एक वृक्ष है, वही एक छोटी-सी रम्या (गडढा) है। इसम सदव जल के बुल्बुले उठा करते हैं। इस लघु रम्या से जो जल प्रवाहित होता है वह एक सरिता का रूप धारण कर लेता है। इस धारा को कपिल धारा कहते हैं। कपिल धारा सहस्रो शिला खण्डा के विशाल वक्ष स्थलो को चीरती हुई अपना माग निर्धारित करती चलती है और अन्त म बडे वेग से अपने शीतल जलकणा को उछालती हुई १०० फीट नीचे गिरती है। इस मनोरम स्थान पर स्नान करने वाला को, कहा जाता है, मन्दाग्नि से मुक्ति मिलती है।

अमरकटक बुन्देलखण्ड का वह पावन तीर्थ स्थान है जिसे तपोभूमि की मान्यता प्राप्त है। यहाँ पर साधका को थोडे से साधन से ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

## बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ

भारतवर्ष के इतिहास मे यह बात प्रसिद्ध है कि सदव सस्कृति और धर्म रक्षा के निमित्त बुन्देलखण्ड युद्ध लडता रहा है। विधर्मियो के आक्रमणो से यहाँ के विष्णु शिव और जन तीर्थकरा के प्राचीन मन्दिर जीर्ण शीर्ण हो गए, किन्तु उनका स्थायित्व सुरक्षित रहा। हम यहा ऐसे ही कुछ प्राचीन जन मन्दिरा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

जैसा पहले कहा जा चुका है बुन्देलखण्ड का भू भाग पुण्य सलिला बेतवा धसान, चम्बल केन, बीना नमन्दा आदि नदियो के पावन प्रवाहा से परिवेष्ठित है। इन सरिताओ के मनोरम तटो पर अनेक कलापूर्ण नगर और मन्दिर अवस्थित हैं इनमे खजुराहो चन्देरी महोबा, कालिंजर, साची, देवगढ, कुण्डेश्वर आदि स्थान पुरातत्व की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे है। इन सभी के वर्तमान रूप को देखकर यह सहज कल्पना की जा सकती है कि ये अपने यौवन काल म कितने वभवशाली रहे होगे। इनम स कुछ स्थान तो ऐसे है जिनपर

पुरातत्वज्ञों का अभी ध्यान ही नहीं गया है।

इन प्राचीन क्षेत्रों म बुंदेलखण्ड के ये जन तीर्थ आते हैं, स्वर्णगिरि-(सोनागिरि) नयणगिरि (रेसन्दीगिरि) और द्रोणगिरि। इन तीन सिद्ध क्षेत्रों के अतिरिक्त अहार थूबौन चंदेरी, पपौरा, कुण्डलपुर, पवा, बाला बेंट, बजरग गढ, पचरई सेरौन आदि तीर्थ क्षेत्र भी बुंदेलखण्ड म विद्यमान हैं।

इनम स हम पहले ऐतिहासिक अहार क्षेत्र का उल्लेख कर रहे हैं।

## अहार

अहार ओरछा राज्य के अन्तगत टीकमगढ म बारह मील पूव स्थित है। यहाँ की प्राकृतिक छटा अनुपम है। लेकिन अहार क्षेत्र का महत्व केवल उसके प्राकतिक सौन्दय मात्र से हो ऐसी बात नहीं। मुख्य कारण है मंदिरों म प्रतिष्ठित उनकी कलापूण मूर्तियां।

अहार ग्राम के भाग म कुछ मूर्तियों के प्रस्तर खण्ड यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं। कुछ जन मंदिर मदनसागर के तट पर निर्मित थे, जिनम केवल एक मंदिर के ही भग्नावशेष दिखाई देते हैं। इन मूर्तियों की वास्तुकला का अवलोकन कर मन मुग्ध रह जाता है। इसके समीप ही नयनाभिराम उच्च पहाडियों के शिखरों पर प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं, जिनका अभिज्ञान भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा के आसन पर खुदे हुए शिला लेख स होता है। इन मूर्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में यहां अवश्य कोई विशाल नगर रहा होगा।

अहार क्षेत्र म लगभग तीन सौ उत्कृष्ट कलापूण किन्तु खण्डित मूर्तियों का सग्रह सुरक्षित है। इन मूर्तियों का अवलोकन कर उन नर अनों के कुकृत्यों से मन उद्विग्न हो उठता है जिन्होंने इनकी कला को नष्ट किया।

इस भू भाग पर तीन मंदिर बने हैं। दो तो कुछ काल पूव के हैं और एक बहुत प्राचीन। इस एक प्राचीन मंदिर मे बाइस फीट की एक विशाल शिला है, उसी पर अठारह फुट की भगवान शान्तिनाथ की एक कलापूण मूर्ति सुशोभित है। इसे परमर्द्धि देव चंदेल नरेश के काल म सं०१२३७ वि० म स्थापित किया गया था। बायीं ओर ग्यारह फीट की कुंथुनाथ भगवान की मूर्ति है। जनश्रुति है कि इसी मूर्ति के अनुरूप दायां ओर अरहनाथ की दिव्य प्रतिमा सुशोभित थी, जो अब अदृष्ट है। लेकिन जो अन्य मूर्तियां विद्यमान हैं वे अत्यन्त भावपूण हैं और उनके मुख मण्डल पर अपूव तेज झलकता है।

## पपौरा

पपौरा ओरछा राज्य की वतमान राजधानी टीकमगढ स तीन मील पूव

की ओर है, यहा के रमणीय प्रागण में ७५ कलापूर्ण दिगम्बर जन मदिर हैं। इन मदिरो का भव्य दृश्य मार्ग चलते समय कई मील पहले से दिखाई देने लगता है।

यहाँ की मूर्तियो की भाव मुद्राए भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। इनसे शताब्दियो पूर्व की विकसित मूर्ति कला का ज्ञान होता है। यहाँ जो शिलालेख अकित हैं, वे तेरहवी शताब्दी से मिलते हैं।

## थूबोन

ऐसे प्रतीत होना है कि थूबोन का प्राचीन नाम 'स्तम्भन' रहा होगा। लेकिन इसकी प्रामाणिकता के लिए यहा कोई शिलालेख अकित नही है। मदिरो की भव्य मूर्तियों की शिल्पकला से अनुमान होता है कि ये ग्यारहवी शताब्दी की होगी।

ग्राम से लगभग एक मील दूर सरिता के तट पर कुछ प्राचीन मदिरो के भग्नावशेष है। यहा की खण्डित मूर्तिया से ज्ञात होता है कि इस स्थल पर शिव, विष्णु और जन मतावलम्बियो का कालक्षेप से समान प्रभाव रहा होगा। ग्राम के निकट एक प्राचीन मदिर सरिता-मडी के नाम से प्रसिद्ध है।

थूबोन के पूर्व मे लगभग एक मील दूर पच्चीस जन मदिर है जिनम जन तीर्थकरो की कलापूर्ण प्रतिमाएँ सुशोभित हैं। इनकी सेवा-पूजा का यथोचित प्रबन्ध है। इन जन मदिरो म एक प्राचीन मदिर पाडाशाह का है जो लगभग बारहवी शताब्दी मे निर्माण कराया प्रतीत होता है। अन्य मदिर चार सौ वर्ष पूर्व के निर्माण किए ज्ञात होते हैं। इनम विद्यमान मूर्तिया की चरण चौकियो पर अकित लेखो से प्रतीत होता है कि ये सत्रहवी से बीसवी शताब्दी के मध्य बनाए गए।

## बूढी चदेरी

बूढी चदेरी अति प्राचीन स्थान है। यह महाभारत काल म शिशुपाल की राजधानी रही है। लेकिन अब उस समय क कोई प्रामाणिक चिन्ह यहा दृष्टिगत नही होते। यहा कुछ जीर्ण शीर्ण मदिर और एक गढी अवश्य है जो राजपूतो द्वारा बनाई हुई बतायी जाती है। इसम जो पत्थर के खम्भे हैं उनसे बारहवी-तेरहवी शताब्दी की वास्तुकला का भान अवश्य होता है। सम्भव है कि इस गढी पर किसी मुसलमान बादशाह ने आक्रमण किया हो। इसी कारण मन्दिरों के शिखर और गढो की बुर्ज ध्वस्त दिखाई पडते हैं। मूर्तियो के प्रस्तर-खण्ड अभी भी इधर उधर बिखरे पडे हैं। जो मन्दिर सुरक्षित है, वे अति कलापूर्ण हैं और उनम जैन मूर्तिया विद्यमान हैं। इन मदिरो का निर्माण काल नवी

या दसवीं शताब्दी का ज्ञात होता है। इसके समीप पुरातत्व विभाग ने एक अहाते म खण्डित प्रतिमाओ का संग्रहालय बना लिया है।

### बिठला

बूढ़ी चंदेरी के दक्षिण पश्चिम म पाँच मील की दूरी पर बिठला अवस्थित है। यहा से भी पर्वत पर कई प्राचीन जन मंदिर हैं जो जीर्णावस्था म हैं। केवल एक मंदिर सुरक्षित अवस्था म है। इसके पास ही तीथकरा की अनेक खण्डित मूर्तिया बिखरी पड़ी हैं। इनमे केवल दो ही मूर्तिया पहचान म आती हैं, पहली भगवान सम्भवनाथ की प्रतीत होती है और दूसरी मुनिसुव्रतनाथ की।

वास्तुकला की दृष्टि स इन मंदिरा का निर्माण बारहवी शताब्दी म हुआ ज्ञात होता है।

### रखेतरा

बिठला ग्राम स दक्षिण पश्चिम की ओर रखेतरा ग्राम की सीमा के अन्तगत एक पहाड़ी है। इसके भू भाग म 'उरनदी' के सम्मुख पाषाण की अनेक भव्य मूर्तिया निर्मित हैं। इनम एक विशाल कलापूण प्रतिमा आसन लगाकर बठी हुई है। यह तीथकर स्वामी आदिनाथ की है। इसके दायी ओर पद्मावती और बायी ओर चक्रेश्वरी की प्रतिमाएँ विद्यमान है। भगवान आदिनाथ की चौकी पर वि० स० १६७५ का लख अंकित है। मूर्ति के समीप ही एक ओर चरण चिह्नो के दशन हैं इनके नीचे वि० स० १५५५ उत्कीर्ण है। इसस यह अनुमान लगता है कि ये चरण मुनिराज उपाध्याय भव्यचन्द्र सूरि के कुशल शिष्य कौसल्राय द्वारा निर्माण कराए गए हैं।

इसके चबूतरे स लगी हुई एक प्राकृतिक गुफा है। दूसरी ओर पाषाण की चट्टाना पर गणेश पावती हरगौरा विष्णु इत्यादि देवी देवताओ की मूर्तिया खुदी हैं जो सम्भवत दसवी शताब्दी की हैं। इसस कुछ दूर उत्तर म इस चट्टान पर शिलालेख है जिसपर वि० स० ६६६ व १००० उत्कीर्ण है। इसम 'उरनदी' स सम्बन्धित किसी पानी के बाध का वणन है जिसका निर्माण कराने म राजा विनयपाल दव न ६५६६ करोड रुपया व्यय किया था, इसक साथ ही ग्वालियर के एक राजा का भी वणन है।

### आमनचार

आमनचार म भी अनेक जन मंदिरा के भग्नावशेष हैं जिनकी खण्डित मूर्तिया का एक स्थान सर एकत्रित कर लिया गया है। जनश्रुति है कि यहा शिव या विष्णु का भी एक मन्दिर था। ग्राम के समीप दक्षिण की ओर एक नाला है

जिसके उस पार महावीर भगवान की एक कलापूर्ण प्रतिमा है। इसका अधभाग पृथ्वी म गढा हुआ है। इसके समीप ही एक जीण शीण पुरानी गढी है। यही कुछ और मदिरा के भी अवशेष हैं जो दसवी शताब्दी के ज्ञात होते हैं। यहा कुछ सती स्तम्भ हैं जिनपर वि० स० १५४१ और १५५२ अंकित है। ज्ञात होता है कि यहाँ सोलहवी शताब्दी म घनी आबादी का सु दर ग्राम रहा होगा।

## गुरीलिकागिरि

चदेरी मे लगभग आठ मील दक्षिण पूव गुरीलिकागिरि नाम की पहाडी है। इसके उच्च शिखर पर दो दिगम्बर जन मदिर थ जिनके अब खण्डहर ही शेष हैं। इनके चारा ओर एक अहाता है जिसम य भग्नावशेष सुरक्षित हैं। एक मन्दिर का ता केवल प्रवेश द्वार ही दिखाई देता है। इसके प्रकोष्ठ म शातिनाथ की एक खण्डित मूर्ति प्रतिष्ठित है। समीप ही एक सुदर बारादरी है इसम दीवाल के सहारे जन तीथकरा की कुछ बठी और कुछ खडी मूर्तिया हैं। इन मूर्तिया म श्री आदिनाथ की मूर्ति अत्यन्त कलापूर्ण है।

## स्वर्णगिरि

सोनागिरि दतिया (म० प्र०) से ६ मील पर जन धम का एक प्राचीन तीर्थस्थान है इसको श्रमणगिरि भी कहते है। श्रमण जन मुनिया को और गिरि पहाड का कहते है। यह स्थान जा अशोक कालीन बताया जाता है अतीत काल म जन मुनियो की तपोभूमि रहा है। जनश्रुति है कि यहा किसी समय मे स्वण की वर्षा हुआ करती थी। हा सकता है कि वषा न होता हो गिरि से स्वण निकलता हो। गिरि पर बने मदिरा की छटा शरद की चादनी मे विशेष दशनीय होती है। इस गिरि के विशाल शिखर पर ७७ प्राचीन मदिर हैं जिनमें दिगम्बर परम वीतरागी खडगासन और पद्मासन लगाए हुए प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। इसम चद्रप्रभु का विशाल मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके समीप मान स्तम्भ और बाहुबलि भगवान की मूर्ति है।

## नारियल कुड

यह कुड एक पाषाण शिला पर है। इसका आकार नारियल जसा है इसीलिए इसका यह नाम भी पडा है। समीप ही बाजिनी शिला है जिसका बजाने स कासे की धातु जसा स्वर निकलता है। गिरि की तलहटी म १२ या १३ मदिर बने हैं जो १५०० शताब्दी के ज्ञात होते हैं। सोनागिरि म जन समाज का वार्षिक मेला चत्र कृष्ण म होता है। इस अवसर पर सामाजिक कार्यों पर विशेष रूप स विचार विमश किया जाता है।

**करगुआं**

सांगी से एक मील पूर्व कमासिन (कामाक्षा देवी) की पहाड़ी की तलहटी में एक सघन आम्र निकुंज है। इसमें एक जैन मन्दिर है जो यहां के शिलालेख द्वारा वि० सं० १३०० शताब्दी का ज्ञात होता है। मन्दिर की कलापूर्ण मूर्तियां पद्मासन लगाये बैठी हैं। मूर्तियों के मुख मण्डल से अनुपम शान्ति और तेज झलकता है। यह स्थान सभी दृष्टियों से मनोरम है।

## बुन्देलखण्ड का कृषि-साहित्य

बुन्देलखण्ड का जन जीवन भी शेष भारत की तरह अधिकतर कृषि पर ही निर्भर है। यहां दो प्रकार के गेहूं बोये जाते हैं एक को गेहूं और दूसरे को पिसी कहते हैं। पिसी में कई किस्म होती हैं। गेहूं कठिया का प्रसिद्ध है इसके दो रूप हैं एक कठिया दूसरा भूरा। गेहूं से अधिकतर मन्ना (मुंजा) और दलिया बनाया जाता है जो उबालकर भोजन में लिया जाता है और अत्यन्त हल्का व सुपाच्य होता है।

इस प्रदेश में मांठ और खुरई की पिसी को विशेष उपयोगी माना जाता है। इसकी रोटी पूड़ी अति मुलायम बनती है। इसके अतिरिक्त यहाँ ज्वार, बाजरा मक्का मूंग उड़द और चावल सम रूप में उपजते हैं। सिंचाई के साधन के लिए कुओं पर परा (चमड़ा पात्र) और रहट का प्रयोग किया जाता है। कहीं-कहीं नदियां बांधकर तालाबों के जल द्वारा सिंचाई का कार्य किया जाता है यदि इस प्रदेश का अनाज किसी अन्य राज्य में न भेजा जाय तो यहां के निवासियों के आहार के लिए पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है।

बुन्देलखण्ड का किसान आधुनिक यन्त्रों के युग में भी अपनी प्राचीन परम्परानुसार काष्ठ के हल आदि यन्त्रों से कृषि कर्म करता है। अभी यहां कृषि के आधुनिक यन्त्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। फिर भी यहां का किसान प्रकृति की सहायता में लगा है। वह अपने प्राचीन कृषि विधान से ही काम लेता है। वह बादलों का अवलोकन करके उनसे वर्षा का अनुमान कर खेत जोतता है बीज बोता है। परंपरा से प्राप्त उसका ज्ञान कुछ लोकोक्तियों में निबद्ध है।

**बादलों द्वारा वर्षा का अनुमान**

वर्षा का अनुमान यहां किसान नभ में उठते हुए बादलों द्वारा लगाता है।

ग्राम का मुखिया या वृद्ध पुरुष अषाढ शुक्ल पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा) को एक लम्बी बसन्टी (पतला बास) की नोक मे कच्चे सूत का धागा बाधकर, किसी पहाडी या ऊचे टीले पर सूर्योदय से सूर्यास्त तक मौन धारण करके बैठता है और इन्द्रदेव का ध्यान करके बादलो का अवलोकन करता हुआ उस बसन्टी पर सूत के धागे को वायु के झोको से इधर उधर उडते देखकर वर्षा का अनुमान लगाता है। भड्डरी ने इस निरीक्षण का वर्णन करते हुए लिखा है

१ आसाढ मास पुनि गौना। ध्वजा बाद व देखो पौना।
२ जो प पवन पुरवया आव। उपज अन्न मेघ झिर लाव।
३ अग्नि कौन जो बहै समीरा। पर काल दुख सब सरीरा।
४ दच्छिन बय जल थल जलमीरा। ताइ समय जूझ बड बीरा।
५ नीरथ कौन बूद ना पर। राजा पिरजा भूखन मर।
६ पच्छिम बय नीनों सोइ जानों। पर तुषार तेज उर आनों।

(१) आषाढ माह की गुरु पूर्णिमा को ध्वज (सूत का पताका) लकडी मे बाँध कर ऊचे स्थान पर परीक्षण करना।

(२) कही पूर्व की पवन चले ता वर्षा अच्छी हो और अन्न का उत्पादन अधिक हो।

(३) अग्निकोण स पवन चले तो अकाल पडे और प्रजाजन अत्यन्त दुखित रहें।

(४) दक्षिण की वायु चलने से वर्षा ता होगी किन्तु युद्ध म वीरा के जूझने की सम्भावना बनी रहेगी।

(५) दक्षिण और पश्चिम मध्य से वायु बहे तो वर्षा भी उत्तम न हो और प्रजा भी क्षुधा से पीडित रहे।

(६) पश्चिम की वायु बह तो फसल ता श्रेष्ठ हो परन्तु तुषार पडने की सम्भावना बनी रहेगी।

अनावृष्टि के भयावह सकट का अनुमान हाने पर उसकी शान्ति के लिए उपाय किया जाता है। इसके लिए ग्राम म शीघ्र ही अथाई (जिस पर लोग सायकाल एकत्रित होते हैं।) या ग्राम क मुखिया के द्वार पर महाभारत रामायण या आल्हा बचवाने का प्रबन्ध किया जाता है और उसके पूर्ण होने पर कन्याओ को दूध भात का भोजन कराया जाता है। ग्रामवासियो का यह विश्वास है कि महाभारत, रामायण और आल्हा का पाठ होने पर वर्षा अवश्य होता है।

मघ परीक्षण तथा वर्षा के अनुमान के सम्बन्ध म जो लोक साहित्य उपलब्ध है उसके सृजनकर्ता अधिकतर धरती-पुत्र ही हुए हैं —

मघा न बरसे भरे न खेत।
माइ न परसे भरे न पेट।

अर्थात्—यदि मघा नक्षत्र में जल वृष्टि नहीं हुई तब खेतों का तृप्त होना सम्भव नहीं और यदि माता ने पुत्र को भोजन परोस कर नहीं कराया तब उदर का तृप्त होना सम्भव नहीं।

जो कउं बरसे स्वात विसात।
चले न राटा बजे न तात।

अर्थात्—यदि कहीं स्वाति नक्षत्र में जल-वृष्टि हुई तब उसके कारण ऐसी अवस्था उत्पन्न होगी कि सूत कातने का राटा चलना बन्द हो जाएगा और रुई (कपास) धुनने की तांत भी नहीं बजेगी।

जो कउं बरसें हाती।
गेंऊ लग हैं छाती।

अर्थात्—हस्त नक्षत्र में कहीं भली भांति जल बरस गया तो गेहूं के पौधे खेतों में मनुष्य की छाती के बराबर हो कर लगेंगे, यानी उत्तम गेहूं की फसल होगी।

लाल बरसे ताल भर।
सेत बरसें खेत भर।
कारे बरसें पार भर।
जब उठें धुआ धारे।
तब आव नदिया-नारे।

माघ सप्तमी ऊजरी बादर मेघ करन्त।
तौ असाड़ में भड्डरी घनों मेव बरसन्त।

माघ शुक्ल सप्तमी को यदि नभ में बादल छावें तो आसाढ़ मास में अच्छी वर्षा हो।

अगहन बदी आठैं घटा बिज्जु समेती जोय।
तौ सावन बरसे भलौ साल सवाई होय।

मार्ग कृष्ण अष्टमी को नभ में घटा छाये और बिजुरी दमके तो सावन मास में अच्छी वर्षा का अनुमान लगता है जिससे सवाई फसल होगी।

आगे रवि, पीछें चलें मंगल जो आषाढ़।
तौ बरसें अनमोल हो धरती उमगे बाढ़।

जिस वर्ष में सूर्य के पृष्ठ भाग पर मंगल रहता है उस वर्ष, वर्षा होने का उत्तम योग होता है और पृथ्वीतल आनन्द से उमंग पड़ता है।

आसाढ मास अँधियारी ।
चदा निकर जल धारी ।
चदा निकर बादर फोर ।
तीन मास को वर्षा जोग ।

अर्थात—यही आषाढ कृष्ण अष्टमी को चन्द्रमा घनघोर मेघो को चीर कर अपना प्रकाश करे तो तीन मास तक उत्तम वर्षा होने का अनुमान लगता है ।

जब आकाश म लाल बादल छाकर बरसते हैं तब तालाब भर जाते हैं और जब श्वेत बादल उठकर बरसते हैं तब खेत भर जाते हैं तथा जब काले बादल बरसते हैं तब केवल पारा (हटी पर ढाकने का मिट्टी का पात्र) ही भर पाता है लेकिन जब धूआधारे अर्थात धूमिल बादल बरसते हैं तब सब नदी-नाले उस वर्षा के कारण उमग पडते हैं ।

बुंदेलखण्ड के बहुत प्रचीन नगर भद्रावती (भाडेर) मे एक लोक कवि भडडरी हुए हैं । कई शोधकर्त्ताओं ने अपनी-अपनी मति के अनुरूप इनका जन्म स्थान अन्यत्र माना है । किन्तु इस क्षेत्र म जनमत यही है कि भडडरी का जन्म भाडेर म ही हुआ था । यहा उनका निवास स्थान खडहर के रूप म अब भी विद्यमान है । जिस बोली म उनकी रचना प्राप्त है वह बुंदेली बोली ही सिद्ध होती है ।

भड्डरी ने इस जन-पद म मेघा का अनुसन्धान करके वर्षा सम्बन्धी अभूत-पूर्व लोक-साहित्य दिया है । इसके आधार पर किसानो को कृषि करने म प्रत्येक वर्ष जो सफलता होती है उसके लिये यह जनपद भडडरी का सवदा ऋणी रहेगा । भडडरी की वर्षा सम्बन्धी अनुभूतियो के कुछ उदाहरणा म स एक है

शुक्कर वारी, बदरिया, रय शनीचर छाय ।
ऐसो बोले भडडरी' बिन बरसें नइ जाय ।

अर्थात—जो बादल शुक्रवार से शनिवार तक आकाश मण्डल मे छाय रहे वह बिना बरसे हुए नही जायेंगे।

ग्राम देवता (कृषक) की कृषि सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण सूक्ति इस प्रकार है

खती आपन सेती ।
नातर बजर हेती ।

अर्थात—खेती की रक्षा स्वय उत्पादन कर्त्ता किसान को ही करनी चाहिए यदि वह नही करता है तब वह खेती उजाड करन वालो के हित म होगी । दूसरा अर्थ यह भी है कि यदि किसान कृषि की रक्षा नहीं करता, तब वह बजर भूमि म बसने वाले बजर (बुंदेलखण्ड की जगली जाति) लोगों के हित के लिये ही होगी ।

# स्वास्थ्य सम्बन्धी लोक-साहित्य

बुन्देलखण्ड ने आयुर्वेद के आधार पर भी धरती पुत्रों के स्वास्थ्य हेतु सुलभ और सुखद लोक-साहित्य का सृजन किया है। इस साहित्य से सम्य इस जन पद को ही नहीं समस्त भूतल निवासियों को लाभ होता रहेगा। प्रमाण रूप में हम एक स्वास्थ्य सम्बन्धी लोक-गीत का अंश यहाँ दे रहे हैं —

अगनें जीरो, पूँस धना, माओ मिसरी फागुन चना।
चैत गुर, बैसाख तेल, जेठ मउआ, असाढ़ बेर।
सावन दूध, उर भादों दइ, कुँवार करेला कातिक मइ।
जो इतनी नइँ माने कइ, मर है नइ तो पर है सइ।

दो मास तक प्रत्येक ऋतु अपना प्रभाव रखती है। इस दृष्टि से लोक-गीत सृजन कर्त्ता ने षट ऋतुओं के प्रभाव का शोध करके अपना अभिमत प्रकट किया है। माघ और पौष मास में हेमन्त ऋतु का प्रभाव रहता है जिसके फलस्वरूप वात पित्त कुपित हो जाता है इसलिए माघ में जीरा और पौष मास में धना सेवन करना वर्जित है क्योंकि यह दोनों शीतल होने के कारण वात पित्त को सहयोग देकर अत्यधिक कुपित कर देते हैं और देहधारियों को रुग्ण कर देते हैं।

माघ और फाल्गुन मासों में शिशिर ऋतु का प्रभाव रहता है इस कारण प्राणियों के अंतस में वात और कफ कुपित हो जाता है। इसलिए माघ में मिश्री और फाल्गुन में चना ग्रहण करना हानिकारक होता है क्योंकि यह दोनों पदार्थ वात और कफ को सबल बनाकर शरीर में रोग-वृद्धि करते हैं।

चैत्र और बैसाख मास में ऋतुराज बसन्त का प्रकृति पर अनुशासन रहता है। इस कारण शरीर में कफ कुपित हो जाता है। अतः चैत्र में गुड़ और बैसाख में तेल ग्रहण करना वर्जित है। यह दोनों पदार्थ कफ कारक हैं और शरीर में कफ वृद्धि करके मानव को रुग्ण बना देते हैं।

ज्येष्ठ मास में महुआ (मधुफूल) और आषाढ़ मास में बेर (बद्रीफल) ग्रहण करना वर्जित है क्योंकि ये दोनों मास ग्रीष्म ऋतु के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं। इस कारण जेठ मास में महुआ और आषाढ़ मास में बेर पित्त और कफ के सहायक बनकर रोग की वृद्धि करते हैं। सावन और भादों में वर्षाऋतु का प्रभाव रहता है इस कारण शरीर में वात प्रबल हो जाता है। इस दृष्टि से सावन में दूध और भादों मास में दही सेवन करना वर्जित है। यह दोनों पदार्थ शरीर में वात अधिक उत्पन्न करके कुपित वात को और भी बलवान बना देते हैं और शरीर वात-व्याधि ग्रस्त हो जाता है।

आश्विन और कार्तिक मास में शरद ऋतु का प्रकोप रहने के कारण पित्त

कुपित हो जाता है। इससे आश्विन मे करेला और कार्तिक मास म मठा ग्रहण करना शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा धरती-पुत्रो म यह विशेषता है कि वे जिन वस्तुओ को उत्पन्न करते हैं उनके द्वारा होने वाले हानि-लाभ का भी परिज्ञान रखते हैं। देखिये, कवि सचेत करता है—

पल ताप खीरा मे बसी,
देख मुटिया खिल खिल हँसी।
फिर खाई कडुआ की भुजी,
तुरतइ ताप झड़झड़ा उठी।

वह कहता है कि आपने पहले खीरा ग्रहण किया जो शीतल होता है और उसके उपरान्त मक्का की मुटिया का सेवन किया जो वात युक्त और गरिष्ठ होती है तत्पश्चात कडुआ का साग भोजन म लिया जो वात और कफ दोनो को कुपित करता है फिर आपके शरीर मे ज्वर आने म विलम्ब क्या ? वह तो तुरन्त आक्रमण करेगा। शरीर को आरोग्य रखने के लिए एक और उक्ति का अध्ययन कीजिये—

सावन ब्यारी जब कउ कीज।
भादों ब्यारी नाव न लीज।
कुवार के दो पाख।
जो, जतन जतन सों राख।
कातिक मास दिवारी
ठेलम ठेल - ब्यारी।

श्रावण मास मे ब्यारी (रात्रि का भोजन) कभी-कभी कीजिए और भादो मास म ब्यारी करना क्या ? उसका नाम भी लेना वर्जित है तथा आश्विन मास के दोना पक्ष तो शरीर के लिए अत्यन्त भयावह है इस कारण आश्विन म बडे सयम नियम द्वारा रहकर नित्यप्रति शुद्ध तथा ताजा भोजन करना चाहिए। जब कार्तिक मास म दीपमालिका की ज्योति के प्रकाश से गृह पवित्र हो जाये और सब खाद्य पदार्थों म नवीन रस परिव्याप्त हो जाय तब रुचिपूर्ण यानी खूब इच्छा से ब्यारी कीजिये, क्योकि कार्तिक मास मे शरीर म जठराग्नि प्रबल होने लगती है। इस कारण रात्रि का भोजन हानि नही करता है।

लेकिन ब्यारी के सम्बन्ध म एक धरती पुत्र का यह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथन है कि ब्यारी को कभी नही त्यागना चाहिए—

ब्यारी कबहुँ न छोडिये, जासौं तागत जाय।
जो ब्यारु अवगुन करै दुकर थोरी खाय।

यह ब्यारी न त्यागने की उक्ति मनुष्य के लिये कितनी सुलभ सुखद और

साधन युक्त है जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति नित्य प्रति अपने शरीर के स्वास्थ्य की दृष्टि से कर सकता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को शरीर की पाचन शक्ति का ज्ञान स्वय रहता है इससे उसको स्वय अनुभव होगा कि जो भोजन मध्याह्न म किया गया उसका पाचन उचित रूप से हुआ अथवा नही। यदि पूर्ण रूप से पाचन नही हुआ तब मध्याह्न का भोजन वह स्वय कम मात्रा मे ग्रहण करेगा, ताकि रात्रि का भोजन उसको बद न करना पडे। रात्रि का भोजन मध्याह्न के भोजन की अपेक्षा शरीर म कही अधिक शक्ति सचार करता है।

## बुन्देलखण्डी लोक-रागिनी

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है ही कि मा सरस्वती की वाणी स अक्षय अक्षर और वीणा से मधुर सप्त स्वरो का उदभव हुआ है, तथा उसी स विविध छदो और रागो का निर्माण हुआ किन्तु विचारणीय विषय यह है कि उन छदो और रागो को कब कब किस किस आचार्य ने क्या-क्या रूप दिया।

सर छद लोक रागिनी के रूप म बु देलखण्ड म प्रचलित है। इसकी रागिनी कितनी प्राचीन है यह अन्वेषण करना अत्यत दुलभ है लेकिन खोज करन पर यह ज्ञात हुआ कि सर छद का प्राचीन नाम शोभधर' था और इसका जन्म शोभवती के राजा शूद्रक के समय म वहा के वन प्रागण म निवास करने वाली सारिया जाति स हुआ। यह जाति इस युग म भी नमदा के तट से लेकर वेतवा और चम्बल नदी के समीपवर्ती वनो म निवास करती है।

राजा शूद्रक का काल तीसरी या चौथी शताब्दी का माना जाता है। प्रश्न यह उठता है कि उस समय की भाषा शैली कसी रही होगी। इसमे सर छद के विषय मे भ्रम उपस्थित होता है। कुछ साहित्यकारो का यह अभिमत है कि सर छन्द का उदभव कालिदास के युग म हुआ। लेकिन कालिदास तो तीन हुए हैं। किसके युग म हुआ ? सर-साहित्य की भाषा शैली का जब वतमान काल म अध्ययन किया जाता है तो उसका चयन कालिदास के काल म भिन्न प्रतीत होता है। कुछ भी हो सर-साहित्य की प्राचीनता तो सिद्ध है ही और यह भी कि सर रागिनी क प्रथम स्वरो का प्रस्फुटन वन प्रागण क मध्य हुआ। फिर इसका रूप नगरो क कवियो द्वारा निखरा, और इसके उपरात इस लोक रागिनी का प्रभाव राज दरबारों तक पहुचा।

इस लोक रागिनी से प्रभावित हो मुगल काल म दरबारी कवियो ने इसका मुकाबला करने के लिये लावनी और ख्याल की गाया। इनका प्रचार, प्रसार भी बहुत दूर-दूर तक हुआ। लेकिन सर साहित्य की मान्यता म कोई अतर नही आया। यह बुन्देलखण्ड के शहरो और ग्रामो म उसी समय से आज तक बडी अभिरुचि के साथ गाया जाता है।

सर छन्द म चार चरण और बाईस मात्राएँ होती हैं तथा बारह और दस मात्राओ पर यति होती है। यह सर इस युग म भी विदिशा, सागर जबलपुर, छत्तरपुर मऊरानीपुर और झासी आदि नगरो म प्रचलित है और इसके गाने का ढग दगली यानी फड के रूप म बधा है। यही कारण है कि सर छन्द के लेखको ने इसको प्रकाशित करने का प्रयत्न नही किया। यह केवल गायको के पास हस्तलिखित प्रतियो के रूप म ही विद्यमान है। जब यह सैर गाया जाता है तब फड के रूप म चार चार गायक आमने सामने बैठते हैं और दोनो ओर ढोलक शायरा तथा मजीरा (इसके वाद्य) अपनी अपनी जोबरी स बजते हैं। पहले एक गायक तान भरता है, उसके बाद सर की अन्तिम पक्ति को सभी गायक साथी एक साथ मिलकर गाते है।

सर-साहित्य, बुन्देलखण्ड मे साहित्य की निधि के रूप म माना जाता है। इसके लेखक और गायक छतरपुर मऊरानीपुर, झासी म ही अधिक हुए हैं। इस बात के हम प्राचीन उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। लेकिन पहले हम कुछ सर-छन्दो की प्राचीन पक्तियो पर प्रकाश डाल रहे हैं—

रेवा के मांय, सारँग मे सरसिज फूले।
अलि गूज गूज, तिने सवइ मुद बुद भूले।

यह सैर छन्द की पक्तिया किस कवि की हैं यह ज्ञान नहीं हो रहा किन्तु यह सिद्ध है कि यह कवि कालिदास के समय म ही हुआ होगा, क्योकि कालिदास के सस्कृत काव्य म सरिताओ म कमल के प्रफुल्लित होने का वणन आया है। इससे इस सैर छद की प्राचीनता सिद्ध होती है। किन्तु माजित भाषा के कारण भ्रम भी होता है। साथ ही इसके शब्दो का चयन और रूप बुन्देलखण्डी बोली स मिलता जुलता है इस कारण यह बुन्देली रागिनी सिद्ध होती है।

एक अधाली का आप अवलोकन और कीजिए जो उसी काल की प्रतीत होती है। यह वन प्रदेश म बसने वाली किसी युवती के भावो को प्रदर्शित करती है—

'कसे के जाउ पार, परी नदिया आडी।'

मैं किस प्रकार स उस पार जा पाऊगी क्योकि माग म नदी आडी पडी हुई है।

अब आप सैर साहित्य की कलात्मकता का अध्ययन करें। सैर की इस अर्धाली में कवि ने अधर अक्षरों का सुन्दर ढंग से तो प्रयोग किया है साथ ही साथ दुअग का भी रूप दिया है—

"धा, राधा धा, राधा, धा, राधा राधा।

यह सैर छन्द की अर्धाली झांसी के कविवर स्व० लघुदास नीखरा (जन्म वि० सम्वत १६२२) की है। उनकी कुछ और अधर दुअग सैर की अर्धाली का अवलोकन कीजिए—

हर कहत हरत कष्ट, सरन गहत तरत नर।
नर करत रहत ध्यान, हर हरत सकल डर।

स्व० श्री भग्गी दाऊजू 'श्याम' जिनका जन्म वि० सम्वत १८६० झांसी में हुआ सैर साहित्य के लेखक ही नहीं प्रसिद्ध गायक भी थे। श्याम जी ने सैर को दंगली रूप दिया और फड़ में अनेक बार विजय प्राप्त की। इनके दंगल (फड) के प्रमुख गायक खुशाल दर्जी थे जो एक बार मऊरानीपुर के सैर गायकों को पराजित करके ओरछा से उनका बाजा यानी दायरा (चंग) लेकर आये। इस सैर दंगल की विजय का वर्णन स्वयं श्याम ने इस प्रकार किया है—

खुश रंग खुसाल दर्जी क्या नुक्त लगाया।
मउवारिन की ओरछे में चंग छुड़ाया।
पीतर के दायरे पै अघरंग जमाया।
उस्ताद 'श्याम' नाम का निशान चढ़ाया।

इस प्रकार सैर-साहित्य को जन-जागृति के साधन में लाने का श्रेय श्री श्याम को रहा। श्याम ने सैरा में सभी पक्षों पर प्रकाश डाला है जिससे बुन्देलखण्ड में सैरा का अधिक प्रचार हुआ और उसे फड़ का रूप प्राप्त हुआ।

श्री श्याम जी के सैर-साहित्य की प्रगति से प्रभावित हो स्व० श्री गंगाधर व्यास (जन्म वि० सम्वत १८६६ में छतरपुर) ने सैर छन्द को 'भूमिका' का रूप दिया। अर्थात् एक दोहा एक सोरठा एवं छन्द इसके उपरान्त फिर सैर की पंक्तियां। इस प्रकार उन्होंने 'झूमका' प्रणाली का प्रचार किया।

श्री श्याम जी द्वारा रचित सैर-छन्द में उनकी प्रतिभा का अवलोकन कीजिये। वियोगिनी राधिका तथा गोपिकायें उद्धव को उलाहना दे रही हैं—

### दोहा

ऊधो उन घनश्याम ने, हम सों तजो सनेह।
मोह माह हम हमरी भई हमरो देह।

छन्द

बजराज बृज तज के गये मथुरा मे ठकुराई करी।
सोरह सहस तज गोपिका, चेरी सो असनाई करी।
लिख लिख पठाउत जोग हमखों हिये निठुराई करी।
घनश्याम लों विलमाय क कुबिजा ने मन भाई करी।

दोहा

कुबिजा के रग मे रगे जब सों श्याम सुजान।
तब सो राधे कुवरि की लगी दह दुबरान।

सैर

घनश्याम गये तजक का हम खों मोसन।
जो चूक परी होती सो कउत मोसन।
चुरिया गइ चरन लों भए ढीले जोसन।
जा देह भई दुबरी कुबरो के सोसन।

बिन दरस-सुधा, प्यास नइ बुजतइ ओसन।
मिलबो नईं नगीच फेर पर गओ कोसन।
अन्तस की बात सासी कइ ऊधो तोसन।
जा देह भई दुबरी कुबरी के सोसन।

श्री व्यास जी के एक सर छन्द का अध्ययन और कीजिए इसम उनकी काव्य प्रतिभा और गहरा अनुभूति झलकती है

दोहा

बुद्धिमान पडित चतुर, सावधान निरजात।
कोउ बात बाजी समय, बाज आनक खात।

सर

अपनेइ जान स्यानों सब जग दिखात है।
चरचा मे चतुर अपनो चूकत न घात है।
सुन लैओ कछू तुमसों नइ बनत कात है।
बाजो समय में बाजी बात बाज खात है।

जो चूक जात वाको नइ हूक जात है।
चाय डार डार भटको चाय पात पात है।

बुंदेलखण्ड के लोक साहित्य में हास्य रस की रचनाएँ देने वालों में श्री उपरीत की रचना का उदाहरण प्रस्तुत है। चिरगाँव निवासी वयोवृद्ध कवि श्री रामप्रसाद शर्मा 'उपरीत' ने एक ऐसी ग्रामीण स्त्री का वर्णन किया है जो *अपने अकर्मण्य पति के व्यवहार से तंग आकर व्यंग्य भरे शब्दों में कहती है—*

जाब न हार पयाब न कण्डा,
　　बठो रत रोज सण्डा मुसण्डा।
हड़ियाँ भरी बो सपोट महेरी,
　　तोखौं लग नाज पूरी पसेरी।
साप बिटासो लगी जेट बइये,
　　कण्डा-सी रोटी न दखीं न पइये।
कऊँ बान कौनऊँ हला देत भुड़ा,
　　जोजी मिलो मोय काको पुचड़ा।
　　　　(सिखरणी छन्द)

श्री कन्हैयालाल शर्मा 'कलश' ने हास्य सम्बन्धी एक लेख में कहा है —

लोगों का कहना है कि हँसना आदमी की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। हँसने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। *जब मन में हँसी आती है तो वह रोकी नहीं जा सकती।* जहाँ बहुत से आदमी इकट्ठे हों चाहे मेला हो चाहे बारात हो चाहे दावत का दौर हो हमें हँसने का मौका मिलता है। अजीब अजीब शक्ल सूरतें बातचीत और नहीं तो खाने पीने के ढंग पर ही हमें हँसी आ जाती है। हमारे बुंदेलखण्ड में यह रिवाज है कि विवाह के अवसर पर, विशेषकर दावतों में हास्य परिहास्य का अच्छा मौका मिलता है। इसके लिए विशेष गीत भी होते हैं जिनको 'रसिया या गारियाँ' कहते हैं। गारी - मसखरी का अर्थ गाली-गलौच नहीं है। चाहे बड़े-बूढ़े हों चाहे छोटे बच्चे परन्तु ये हास्य-गीत बेतकुल्लफी से गाये जाते हैं। छोटे-बड़े सब लोग सुनते हैं और हँसते रहते हैं बिल्कुल बुरा नहीं मानते। सगाई सम्बन्धों में नाई आता है वह बेचारा क्या करे? सफर की धूलिधूसरित सूरत सबके सामने, देहाती रास्तों के कीचड़ भरे पाँव सबकी हँसी के कारण होते हैं। स्त्रियाँ उसे देखकर गाने लगती हैं —

'ऐसो लरका नाऊ को
　　जसो नर्रा काऊ को।
आठ सुपई को बनी पुगरिया,
　　टटन्नरयां उको धरिया।
जोरो टूटो इक पगुरिया,
　　घर के आव नाऊ को।

जसो नया काऊ को।
मिल न ऊको कबऊँ सवारी,
तोई तो बो चल अगारी
जो को चिलम तमाखू प्यारी।
पक्को ख्वरा नाऊ को।
जसो नया काऊ को।

विवाह शादिया म सभी के लिए हास्य गीत गाना लाजिमी है। अच्छ से अच्छा छाडा नही जा सकता। य लो लालाजी आ गय। सफर की धल झाड बुहार कर हाथ मुह धोया, तल फुलेल से चिकना मुह किया। डर यह था कि कही सालियो न चेहर मुहर पर ही गालिया ररिया गाना शुरू किया तो शाम लगगी। खर गल की थकान, भूख-प्यास की आखें, हाथ मुह धोन और तेल लगाने से मिटती नहीं। वे समझ रहे थे कि मखोल उडान का मौका किसी को न मिलेगा। परन्तु सालिया सफर की सभी परेशानियो को जानती हैं। फिर भला वे अपने लाला को देख कस न गायें —

हमने खबर ना पाई,
हो लाला कब के आये।
बासी लुचइ तिबासे लडुआ,
कुटकत - कुटकत आये।
हो लाला कब के आये।
परा चलेते काल बसेते
आज हमारें आये।
हो लाला कब के आये।
डाग डगोली, उर उम्झीली
उरझत सुरझत आये।
हो लाला कब के आये।
नदिया लांघी नरवा परे,
उभरत डूबत आये।
हो लाला कब के आये।

सफर की थकावट और भूख प्यास की उदासी से भरा चहरा यह गीत सुनत ही गुलाब सा खिल जाता है। जो काम तल फुलेल न नही किया, और ताजा भोजन भी वह प्रभाव न कर पाता, जो इस गीत न किया। यह हास्य रस का प्रभाव है।

हँसने के लिए एक नही हजार बहाने है। समधी जी हुक्का पी रह थे।

उनकी मूछें लम्बी और भूरी थी। चिलम की आग का कोई कण मूछ पर जा गिरा। बूढ़े समधी उचकने फिर फर्श पर। यद्यपि बात बहुत बुरी हुई, आदमी उनकी नाराजगी के लिए परेशान थे। कोई हुक्का धरने वाले को डांट रहा था, कोई हँसने वालों को परन्तु गाने वाली स्त्रियों को परिहास का मौका मिल गया। सुनिये —

गुड़र गुड़र साजन हुक्का पियें,
रस-बारी के भौंरा रे।
हुक्का के ऊपर चिलम धर
चिलम के भीतर ककरा धर
रस-बारी के भौंरा रे।
ककरा ऊपर धरी गुराखू
वाके ऊपर आगी धर,
रस-बारी के भौंरा रे।
बैठे फरस पै हुक्का पियें,
मुटुर मुटुर बड़ी बातें करें,
रस-बारी के भौंरा रे।
सजना न लम्बी सरटा मरो,
तिलगा उचट के ओली गिरो
रस-बारी के भौंरा रे।
एक मुहर के उन्ना बरे,
फरस पै उचकत साजन फिरे,
रस-बारी के भौंरा रे।

अक्सर यह देखा जाता है कि लड़के वाले लोग लड़की वालों पर रौब दिखाना चाहते हैं। यह आम रिवाज देखा जाता है कि बराती इधर-उधर का तमाम साज-सामान लाकर रौब दिखाते हैं। एक दो घोड़े घर पर हो सकते हैं। परन्तु ५० घोड़े चार हाथी ले जाने का अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि यह सब वस्तुएँ मँगनी की हैं। स्त्रियाँ इस वाह्याडम्बर की खूब खिल्ली उड़ाती हैं —

भरी सभा में बैठे समधी,
बड़े-बड़े गल्ले मारे रे।
हाँ हाँ वे हूँ हूँ वे।
समधिन छिनरौ लरका पाले,
समधी मसनद मारे रे।
हाँ - हाँ वे हूँ - हूँ वे।

समधिन क भइ नौं नौं बिटिया,
समधी सोच बिचारें रे।
हा हां वे हूं हूं वे।
काय भाई की के जे हाथी,
कासें ल्याये घुरवा रे।
हा हा वे हूं हूं वे।
मगनी कर ल आये हाथी,
भारे के घुरवा रे।
हा हा वे हू हू वे।
गुज गोप माग की परें
लर मारे की डारें रे।
हां हा वे हूं हूं वे।

वास्तव म चाराना क बाहरी आडम्बरा की हास्य रस म बडे सुन्दर ढग से आलोचना हो जाती है, किन्तु यह अधिकार केवल स्त्रिया का ही प्राप्त है।

(व श्ली नाना पष्ठ ४)

बुंदेलखण्डी तडाका मज

तडाका मज बु दलखण्ड की प्रमुख राजधानी पन्ना ओरछा बिजावर स लेकर छतरपुर मऊरानीपुर टीकमगढ झासी और काल्पी तक गाया जाता है।

यह छन्द सोलह बारह मात्रा का होता है। इस छद के लिखन की विशेषता यह है कि इसके लखक किसी घटना घटन पर ही लिखत हैं, जैसे कि शासनाधिकारी अन्याय कर या कोई शहर का धनी मानी व्यक्ति अत्याचार अनाचार करे या किसी ने काय करने म कृपणता दिखाई हो तभी इस छद के लेखक की कलम उठ जाती है और वह उस घटना का पूण विवरण नाम सहित देन को बाध्य हो जाता है।

इस तडाका मज का गायन अधिकतर मदान म जहां फड लगन हैं डडे की चोट की ध्वनि म स्वर मिलाकर होता है। इसके गायक पूण निर्भीक और उद्दड होन हैं क्योकि जिन पर यह रचना की जानी है या तो वह उस फड मे उपस्थित ही होते है या उनके पास किसी प्रकार समाचार पहुच जाता है। जब इस तडाका मज का फड लगता है तब सहज ही म हजारो आदमियो की भीड एकत्रित हो जाती है और झगडा होन क भय स पुलिस को समुचित प्रबन्ध करना पडता है।

इसके गायक प्रथम पद (जिसमें आमने सामने कई व्यक्ति बैठते हैं) में मनोरंजन के लिए एक गान है और फिर समयानुसार व्यंग्य तथा अन्योक्तियाँ कहना प्रारम्भ कर देते हैं। यहाँ 'श्वान' पर लिखी गई उक्ति का अध्ययन कीजिए —

सेत पूंछ को कालो कुत्ता,
हतो देय सों मोटा।
टउआ चारक रोटी खागओ,
चाट गओ पथरौटा।
सांकर खुली बिचारे घर की
जाने कित हों लोटा।
को जाने का हो क कढ़ गओ,
चलन न पानी घोंटा।

अब एक युवती पर लिखी गए व्यंग्य का अवलोकन कीजिएगा।

घर सें चली पसरवे के मिस
दाब काख में उन्ना।
इंडियन छिडियन ऐसें उचकें,
जैसें बन में हिन्ना।
मांझ धार में पौंच गई जब,
खोल दओ तब तिन्ना।
मऊ सहर में नामी हो गओ,
खुडबुड़िया[1] को तिन्ना।

अब एक पाखण्डी पंडित विषयक कटु सत्य पूर्ण उक्ति का अवलोकन कीजिए —

हाँत में लोटा कांख में पोथी,
मांथें खौर समारी।
जहां इस्त्री तकी गदगदी,
होंई कथा विस्तारी।
चरनामित देतन चिमची सों,
आचर देय उघारी।
इनको तुम पंडित न जानों,
जे पूरे व्यभिचारी।

---

१—सुखनई नदी का एक रमणीक स्थान

यह है तड़ाका-मज का व्यंग्यात्मक बुंदेली साहित्य। इसके गायन के साथ कुछ अगणित पंक्तियां छंद के अंत में और गायी जाती हैं। जब गायन की ध्वनि की सम की पूर्ति होती है। वह दो प्रकार की होती है। एक यह—

हिकिल्ला में बूबिल्ला दीदार मिलालो।

दूसरी—बाज कि.ो धाम का धक्का धाम, दौर चली चल।

चली चलो चल दौर चली चल।

## बुंदेली लोक गीत—टिप्पे

बुंदेलखण्ड में तीर्थ यात्रा के गीतों का नाम 'टिप्पे' है। टिप्पे बुंदेलखण्ड में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी के लिये प्रयोग होता है। अतः यात्रा के गीतों का यही नाम सार्थक ही है। ये गीत बड़े ही आनन्ददायी होते हैं। यह लीजिये तीर्थ यात्रा की तयारी की टेर —

चलन चलन सब कोउ कहै,
चलबो हसी न खेल।
चलबो साचो ओइ को,
जो कों भरों बुलावे टेर।
चलन चलो॥

चलत हों तोरी बइयां गहों,
भरों लाला बचालियों लाज।
सुरत मोरी तोइ सों लगी,
माइ गौरा सों लागो ध्यान।
चलत हों, हो॥

इस प्रकार आनन्द से पूरित, पूरा दल तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़ा है। जब कोई नदी रास्ते में पड़ जाती है तो रास्ता और भी आनन्ददायी बन जाती है सुनिये—

नमदा तो योधा दये,
मोरो मेला छिको है पार।
मलहा के तोरी बलिहारी,
मोरो मेला उतारो पार।
तरन दियो॥

मलहा नोंनें नैया खेवौ,
का निरख नथनिया की गूज।
निभाय लियौ बइया ग क,
मलहा बइया गह कौ लाज।
तरन दियौ ॥

रास्ते का कष्ट भूला नही जा सकता रास्त का काटा तो एक कहावत ही है। बबूल के काटे का वणन सुनिये—

बमुरिया के काटे बर जइयो,
मों कौं सालत हैं दिन रन।
बमुरिया के काटे सालें
जसे साल ननदिया के बोल।
बमुरिया के ॥
बमुरिया के काटे साल का,
ननदेइया कौ पठ दो ससरार।
सपरलौ कासी जू की झिरिया,
कट जाय जनम के पाप।
सपर लो हो ॥

देखिये मंदिर के द्वार पर सभी यात्री पुकार रहे है—

हुमस गई लगी निंदिया,
विजय घटा की सुन झकार।
दरस की बेरा भई है
पट खोलो छबीले लाल।
दरस की बेरा भई।

यह गीत अधिक्तर सक्रान्ति के पव पर गाये जाते हैं। यात्रा क ये गीत इतने सरस और सुदर हैं कि सकडा मील की यात्रा बिना थकान क निकल जाती है। इन गीतो के अनक नाम हैं। कही ये 'बाबा के गीत', कहो 'बम्बुलिया' और कही 'रमन्नेरा के नाम स विख्यात है।

(बुदेली वाता, पृष्ठ-५)

बुन्देली सत्य की कहानी

बुन्देली लोक साहित्य मे ऐसी लोक कथाओं की भी कमी नही जो जीवन के नतिक मूल्यों को उजागर न करती हो। इस अपार भण्डार म स हम एक ऐसी

कथा यहा द रह हैं जो सत्य का महत्व प्रकट करती है।

एक राजा अपनेइ गाव के तलाब के किनारे हर बरस मेला भरवाउत हतो और ऊको जो प्रण हतो कै मेला म कउनउ की दारें जो दुकानदार को माल न बिकें, तो ऊ दुकानदार को बा कछू माल अवस्यइ लेत हतो।

एक बार की बात है क एक कमगर ऊ मेला मे आओ, और बो भौतउ नौंनी एक मूरत बना ल्याओ जी को मोल हतो साने को एक लाख टका। मूरत भौतइ नौंनी होब सो दखवे वारन की भीड लगी रय, प जो कोऊ बा मूरत को मोल और गुन सुनें सोई तुरत मौं फेर क चलो जाय कायसें बा मूरत को नाव 'दलुद्र देवता हतो जी सौं बा मूरत खों काउ ने नईं मोल लइ।

'जा खबर कर्त्ता कामदारन नें राजा सा जाकें कइ। राजा खबर सुनतनइ घुडवा प बठ मेला म जाक बा दुकानदार सौं पूछन लगो।

कहा तुमारो नाव है उर कहा तुमारो गाव।
का गुन मूरत में बस उर का मूरत कोनाव।

राजा का बात सुनक कमगर अपनो और मूरत को नाव गाव बताउन लगो।

कउत कमगर हैं हमें उर दूर हमाओ गाव।
मूरत अवगुन खान है उर दालुद्दर है नाव।
विपता घेरे सुख भग, उर जी घर में जा जाय।
अपनेंइ हातन को कहो, उर ऐसो दूर कमाय।

कमगर का बात सुनक राजा वाको और वा मूरत की बडाई करन लगो।

देख कमगर की कला मन खुसी भओ भूप।
बोलो अत नौंनो दओ मूरत को रग रूप।

राजा की बात सुन कै कमगर कन लगो राजासाब तुमाय सिवा जाय को मोल ल है काय स जाय मनें कउ बरसन म बना पाई वा हिसाब सौं एक लाख टका मौंनें का जाको मोल है।

भइ पूरी कउ बरस में, रतन जतन मन तौल।
ईसौ ईको सोबरन, लाख टका है मोल।

कमगर की बात सुनतनइ राजा न अपन प्रन की आर ध्यान दओ और बा मूरत मोल लैंक उपर सौं कमगर को और रुपया निछावर दकें विदा करो।

राजा न बा मूरत खाँ अपने महलन म पौंचादइ। दलुद्र देवता के पौंचतनइ बाके गुनन को परभाव होन लगो।

आओ दलुद्दर राज घर गई विरजा मुख मोर।
कामदार कन्ना गय, राज घरानों छोर।

याव गओ दरबार सों छोड राज दरबार।
धरम गओ पाताल खों तज राजा को दुआर।

धरम और न्याव राजा के राज सों जातनइ राज लच्छमी घबरा कें राजा के सामनूं आकें राज सों जावे की बिन्तवारी करन लगी।

आओ दलुद्दर राज में अब मोरो का काम।
मोय देओ आज्ञा नपत बसों और के ठाम।
दालुद्दर खों महल सों जो तुम देओ निकार।
तो मैं कभऊ न जाउं कउं तज क तोरो दुआर।

राज-लच्छमी की बात सुनतनइ राजा अचरज म पर गओ। बो बिचार करन लगो कें पिरजा रूठ कें चली गई। न्याव और धरम दरबार सों उठ गओ, मैंनें कौनउ चिन्ता नइ करी। प जा अब राज-लच्छमी की बात है इसों जाकी सलाय राजरानी सेंइ ल्य चइये, बो तुरतइ मैंलन म आन क रानी सों सब बातें बीती भइ सुना के सलाय ल्न लगो—

रानी भौतइ बिचारवान हती। वा ने राजा खों अपनी पिरतिज्ञा राखब की सलाय दइ।

सत जिन छांडे साईंयाँ सत छांडे पत जाय।
सत की बाँदी लच्छमी मिल घनेरी आय।

रानी की सलाय मान क राजा अपनी पुरानी आन-बान प दृढ रओ जी-सों राज-लच्छमी राज सों बिदा हो गई।

इके उपरान्त सत्त नें अपने मन म बिचार करो क जब राज सों न्याव धरम और लच्छमी तक चली गई, तब अब राज म हमाओ रबे को का काम रओ और बोइ राजा सों आन क राज सों जावे की बिन्तवारी करन लगो।

न्याव गओ लच्छमी गई धरम गओ तज राज।
अब तुमाय ढिग रहन को रहो कहा कओ काज।

सत्त की बात सुनतइ राजा को अब धीरज टटन लगो पैं बाके मन म अपनी पिरतिज्ञा सों डिगवे की कौनउ बात मन म नइ आई और साहस करक सत्त सों कउन लगो।

सत तुमाय पीछू दये हमने सब खों छोर।
अब तुम कसें जात हो हम सों नातो टोर।

राजा की जब जा बात सत्त नें सुना तब बो मन म ल्जाकं सोचन लगो कीकऊ राजा न हमारेइ पीछ सब खों त्याग दओ। ईसों हम खों राजा क राज सों नइ जाय चन्ये और मासों कजन न्याव धरम और लच्छमी को गन्नो नव हूय तो ब सब म सब आज हैं जा बात सोच क राजा सों या बिन्ती करन लगो।

राजा के सुनतन बचन जिय में सत हर्षाय।
बोलो तोरो राज तज कभउ सत्त नइ जाय।
सुख भोगो भोगो सुजस भोगो अपनों राज।
साचउ तुमनें राख लइ सब बिद हमरी लाज।

जा तरा राजा सों विनती करके लौटे पावर सत्त राज दरबार खों चलो गओ। जा बात न्याव, धरम और लच्छमी कों मालूम भई सोई सबके सब जुर मिल कें अपना सो मों ल कें राजा सों अपनी भूल चूक मनाउत भये बिन्वारी करन लगे।

न्याव धरम उर लच्छमी आय भूप दरबार।
छमा करो अब कभउ तज जाय न तुमरो दुआर।

ऐसी है सत्त बल को पुन परताप जी सों न्याव, धरम और लच्छमी सबइ राजा सों अपनी भूल चूक मनाकें राज मे सें कभउ न जाबे की पिरतिना करके रउन लग। जो देख आपई सो आप करता कामदार राज म आन क काम करन लगें और पिरजा आन क फिर जा की ता बस गइ। जसो को तसो काम काज राज को चलन लगो।

सन्त-बसन्त की गाथा

बुन्देली लोक साहित्य म सन्त-बसत की लोक-गाथा का भी बडा महत्त्व है। सन्त औ बसन्त दो भाई थे यह हरे बासों क वृक्षो स उत्पन्न हुए थे। बात यह थी कि नगर के राजा की बेटी का विवाह था, उसके मण्डप क लिय बासा की आवश्यकता पडी। अत जब बास काटे गए तो उनम स आवाज आई—

काठो जान कुठार सें
कपट न डारो अजान।
पूरव पुन्य औतरे,
सन्त बसन्त सुजान।

आवाज सुनकर कुवर निकाले गये। राजा ने उनका पालन पोषण किया। परन्तु रानी को यह बात न रुची और उसने सुन्दर राज कुवरो को देश से निकलवा दिया। देश निकाले का हुक्म सुनिए—

आगे पग न बढाइयो,
राजन के दरबार।
अपनी प्यास बुझाइयो,
बन के रूख मझार।
सुर्मारियो हरे बास के बिरवा घने।

जित उपजे उत जाहु जू,
कहा इसे है काम ।
बांसन के झाडन तरें
बिलमा लीजो घाम ।
सुमरियो हरे बांस के बिरवा घने ।
बन के पछी साथिया,
संगी बन के रूख ।
कन्द मूल-फल फूल सें,
तिरपत करियो भूख ।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने ।

इस प्रकार द्वारपाल के मुख से जब राजा का संदेश राजकुमार ने सुना तो दुखी होकर जगल की ओर चले गये। वे सारे दिन चलकर रात को भूखे प्यासे एक वृक्ष के नीचे रुक गये। उस वृक्ष के ऊपर एक तोता मैना का जोडा रहता था। तोता मैना ने उनको अतिथि जानकर अपने पास भोजन का अभाव समझ उनकी भूख अपनी जान देकर मिटाई। संत ने उन पक्षियों का सत्कार देखकर कहा—

धन्य पखेरु रूख के,
धन्य भयो सत्कार ।
प्रान दान कर देत हो
भूखन कों आधार ।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने ।
बनक ताल घिनौचिया
सीतल छायन आम ।
जल झारी ढुर काइयो,
महलन सों का काम ।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने।

जीवन में तपस्या का बडा महत्व है। वन में संत बसंत ने बडी तपस्या की। एक दिन वे दोनों शिकार खेलते हुए बिछुड गये। संत भाई को ढूंढता हुआ एक नगर में पहुंचा। वहाँ वह राजा हो गया क्योंकि नगर का राजा मर गया था और मंत्रियों ने इसे तेजस्वी देखकर गद्दी पर बैठा दिया था।

बसंत भी अपने भाई की तलाश में एक दूसरे गांव पहुंचा। उस राज में एक चुडैल थी जो कि गांव के लोगों को बहुत तंग करती थी। वहां के प्रधान ने प्रतिज्ञा की थी कि जो इस राक्षसी को मार डालेगा उसे मैं

आधा राज्य और अपनी लडकी को विवाह दिया। बसंत ने चुडल को क्षण भर में मार डाला और वह भी आनन्द से रहने लगा।

परन्तु दोनों भाई एक दूसरे की तलाश में थे। सन्त ने अपने भाई को ढूंढने के लिए मुनादी कराई कि जो सन्त बसन्त की कहानी सुनायेगा उसे एक लाख रुपया मिलेगा। अंत में बसन्त ने साधू का वेष बनाकर सन्त को कहानी सुनाई। उसने कहा—

हरे हरे बासन औतरे,
सन्त बसन्त कुमार।
ऐसे घर भागन परे,
जिन कुलच्छन नार।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने।
दोष कौ कों दीजियो,
बडे भाग की मार।
राजा रानी रुठिया
घर सों दये निकार।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने।
भूख प्यासे जाहु जू,
अमराई की छाय।
सारो सुअना बन गये
कुवरन बाबुल माय।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने।
एक दिना आवट में,
बिछुर गए दोउ भाय।
दोनों कोऊ सन्त सों,
बहुर बसन्त मिलाय।
सुमरियो हरे बास के बिरवा घने।

अन्त में सन्त ने बसन्त का खोज लिया और दोनों भाइ एक दूसरे के गले मिले। इस सन्त-बसन्त की गाथा में मुख्य भाग्य को महत्व दिया गया है।

(बुन्देल वा। १९८५)

राजा मिलद की गाथा

एक गाव में राजा के कुवर और प्रधान के कुवर में बडी मित्रता थी एक

दिन चौपर खेलते हुए प्रधान के कुंवर ने राजा के कुंवर से कहा, मित्र कल ससुराल लिवान जाना है चलोगे?' राजा के कुंवर विचार करके बोले—मित्र कल उत्तर देंगे।'

राजा के कुंवर ने अपनी माता से घर आ कर पूछा—माता जी मेरा विवाह कब होगा माता ने कहा—'कुंवर काउको ब्याव तो बड़े बड़न म हात, तुमाओ ब्याव तो अल्नन पल्नन म हो गओ तो।

राजा के कुंवर यह सुनकर मन म प्रसन्न हो गये और माता से आज्ञा लेकर प्रात घोड़ा रम प्रधान के कुंवर के साथ चल दिये। मार्ग म एक बीजक लगा मिला, जिसमे खुदा था कि राजा के कुंवर की गल दाहिने म, और प्रधान के कुंवर की गेल बायें से गई है। दोनो ने विचार किया कि ससुराल से आने पर इसी स्थान पर एक-दूसरे से भेंट करेंगे फिर अपने गाव चलेंगे यह कह कर वे अपनी-अपनी गल चले गये।

राजा के कुंवर को एक गाव के कुआँ पै एक बटी दिखानी जो जल भरने आई थी उसको देख ज मुग्ध हो गये और कुआँ के पास जाकर उससे कहने लगे—

> पीतम पाव पलोटिओ गोरी कर केसन की छाय।
> हमकों गल बताइयो गोरी ऊँची करके बांय।

राजा के कुंवर उसकी बाय उठवाकर कपोला से ढके हुए अगो को देखना चाहते थे किन्तु वह बेटी भी बडी चतुर थी। वह भाव समझ गई और उसने बड़ी चतुरता से उत्तर दिया—

> गल लग दो रूख हैं लल्ला जिनकी सीतल छाय
> उनई तर हो गल गई, लल्ला हमारी दूखत बाय।

यह कह कर वह बटी कुएँ से जल भरने लगी। राजा के कुंवर फिर उससे पानी पिलाने के लिए कहने लगे। उसने सरल भाव से पानी पिलाने का आश्वासन देते कहा—अच्छा बैठिये।

तब तक कुआ से घडा खींचने म उस बेटी का कपोला सरक पड़ा जिसको देख राजा के कुंवर ने हँसते हुये एक व्यगमय वचन कहा—

> चद कुआ, मुखसांकरो उर अलबेली पनहार।
> जाकर डार जल भर, काऊ हीन पुरुष की नार।

बटी व्याग वचन सुन कर मन म कुछ सहमी किन्तु उसने भी साहस बटोर व्यग मे ही उत्तर दिया—

> पीने होय पानी पीयो, उर बोलो वचन समार।
> हम हसन की हसनी तुम कागा गल गमार।

यह सुनकर राजा के कुवर मन मे अत्यन्त लज्जित हुये और मन मसोस कर बिना पानी पिए चल दिए। वेटी भी अपना घडा सिर पर रख कर चल दी राजा के कुवर ने जब उस को गाव के भीतर जाते देखा तो वह भी उसके पीछे हो लिये।

वेटी अपने घर क दरवाजे पर पहुँचकर भावज को घडा उतारने को बुलाती हुई कहने लगी—

जेह घुडला कुअला हतेरी भौजी जेई आये दुआर।
दौरो री दौरो मोरी काकीरी भौजी ल्यो मोरी गगर उतार।

भावज ननदी की आवाज सुन कर दौडी आई और सिर पर से घडा उतारते हुये कहने लगी—

चकई को चक्वा मिलेरी ननदी, कमल सूरज की कोर।
आये तुमारे पांवने री ननदी जाने पर है भोर।

भावज की बात सुन कर ननद आश्चय मे डूब गई, और कहन लगी—

ओ मोरी भौजी सादली, सौ बोलो वचन विचार।
आये तुमाये वीरना विदा कराउन दुआर।

वधू ने भीतर पहुच कर सास को पाहुन की खवर सुनाई और सास ने आकर खवर दबर पूछ कर राजा के कुवर को पौर म डेरा दे दिया।

सूर्यास्त पर भावज ने चौमुखा दीपक सजोने के उपरात छप्पन भोजन का थाल ननदी के द्वारा पावन के डरा मे भेजा। ननदी थाल लेकर डेरा के द्वार पर जाकर किवाड खोलने की विनती करने लगी—

चद बदन मग लोचिनी राजा ठाडी आक दुआर।
कर जोर विनती कर राजा खोलो झझर किवार।

राजा क कुवर ने पूव घटना के कारण किवार नही खोले और क्रोधातुर हो कहने लगे —

तुम हसन की हसिनी हम कग्गा गल गमार।
तुम महलन मोंती चुनो हम जूठन कर अहार।

वटी को कुआँ पर हुए प्रसग का ध्यान आया। उसमे जो व्यगमय उत्तर-प्रतिउत्तर हुए थे वह राहगीर की दृष्टि से क्षम्य थ, क्योंकि प्रसग राजा के कुवर की ओर से प्रारम्भ हुआ था जिसका यथेष्ठ उत्तर वटी ने दिया था किन्तु फिर भी वटी के मन म अपने उत्तर के प्रति दुख था क्योंकि वह नारी थी। उसने अपनी उठती हुई आहा को रोक भविष्य की दृष्टि से पुन अनुरोध किया —

धरत हुओ कसें कथन तुम दीन प्रजा कों मार।
उठत भई तुमसों कऊँ जो इक मार कौं मार।
हम डांगन की भीलिनी ग्रत नचो जात गवार।
देखत में मोकों लगो तुम दोऊ राजकुमार।
हँसी करत मे रस रचे रस मे रंग सर साथ।
सोच समझ ऐसी जगा करौ मस्करी जाय।

राजा और प्रधान के कुवर भीलिनी की बातें सुनकर मन म सहम गये और अन्तम से फिर कुछ साहस बटोर कर कहने लगे—तुम जगल की रानी हो—तुम से हँसी मस्करी न करें तो कौन सों करें।

भीलिनी ने उत्तर म मुस्कराते और भौंह चलाते हुए कहा – राजा गिल्द के यहा नई रानी आई है। वहाँ जाव मस्करी करो।" अब क्या था भीलिनी की बात स बेटी का नोध लग गया था। दोनो कुवर राजा गिल्द के उस स्थान पर पहुचे जहाँ वह नया महल बनवा रहा था, और दोनो बेल्दारी का काम करने लगे। एक दिन अनायास एक घटना घटी कि राजा गिलद की बेटी नया महल देखन आई जिसको देखकर प्रधान के कुवर कहने लगे—

चन्द मुखी बिलखत रयें, दासी मन मुस्काय।
एक सोय सुख एक के गिनत गिनत दिन जांय।

बेल्दार की बात सुनकर राजा की बेटी अपने महल चली गई और हर कारा द्वारा उन दोनो बेल्दारो को एकान्त मे बुलाकर कहने लगी कि तुम सत्य बतलाओ कि तुम दोनों कौन हो, और जो तुमने उस समय दोहा कहा था, उसका क्या भाव है। यदि तुम सत्य नही कहोगे तो दोनो को शूली पर चढवा दूगी।

प्रधान के कुवर तो अत्यधिक चतुर और निर्भीक थे। उन्होंने सारा वतान्त कह सुनाया—'आप एक चन्द्रमुखी हैं जिनका विवाह अभी तक नहीं हुआ और एक वह दासी है कि जिसके लिए नया महल बनवाया जा रहा है।

राजा गिल्द की बेटी ने यह सुनकर राजा के और प्रधान के दोनों कुवरो का प्रबन्ध अपने महल म करा दिया और कुछ दिन पश्चात प्रधान के कुवर ने राजा गिलद की बेटी से जो नवीन रानी बनने जा रही थी उससे भेंट करवाने को कहा। लेकिन उसने यह शर्त रखी कि तुम यदि राजा के कुवर के साथ मेरा विवाह करा दो तो मैं नई रानी से भेंट करा दूगी—जिसको प्रधान के कुवर ने स्वीकार किया।

राजा की बेटी ने अवसर पाकर अपने पिता से राजा के कुवर और प्रधान के कुवर का परिचय कराते हुए सारा वतान्त सुना दिया जिसे सुन राजा गिल्द बड़े

आश्चर्य म पड गये, किन्तु थे वह बडे न्याय और धर्मशील व्यक्ति तुरन्त अपने मत्री को बुला सलाह लेने लगे कि जो बेटी हमको वन मे प्राप्त हुई थी वह राजा के कुवर की रानी है।

मत्री ने विचार करके राजा मे निवेदन किया कि वन म प्राप्त हुई बेटी को तो विदा कर ही देना चाहिए। साथ ही श्रीमान अपनी बेटी का भी विवाह राजा के कुवर के साथ करके विदा कर दें तो अति सुन्दर हो क्योकि बेटी विवाह योग्य हो गई है और घर बैठे सुन्दर वर भी मिल रहा है।

मत्री की इस उचित सलाह को स्वीकार करके राजा गिल्द ने अपनी बेटी का भी विवाह राजा के कुवर के साथ रच दिया और दोनो बेटिया को एक साथ विदा कर दिया।

इस राजा गिलद की बुदेली गाथा से शिक्षा मिलती है कि मित्र प्रधान के कुवर जैसा हो और नारी उस बेटी जैसी हो तथा राजा, राजा गिलद जसा हो।

## बुन्देलखण्डी लोकोक्तियाँ

बुदेलखण्ड म लोकोक्ति-साहित्य का अपार भण्डार भरा पडा है। यह साहित्य न तो किसी ने प्रकाशित किया है, और न ही सग्रहीत। किन्तु इस जन पद म इनकी ऐसी महत्ता है कि ग्राम पचायतो के निणय तक भी इन लोकोक्तियों पर होते हैं।

इस क्षेत्र मे प्रचलित प्राचीन लोकोक्तिया का बुन्देलखण्डी म सरक्षण स्व० जुगलेश जी ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा बडी सफलतापूवक किया है। जुगलेश जी का जन्म बुदलखण्ड के विख्यात नगर कन्नरगढ (सेंवडा) म वि० सम्वत १९२० म हुआ था।

"खीर मे सौंज महेरी में न्यारौ"

सुख में सुख देख मनाव खुशी, दुख में दुख देख भग दई मारो।
गज सर फिर नाहीं मिलें, उस गज पर नहीं छोडत द्वारो।

'जुगलेश' दगल की प्रीत बुरी नहीं कीजिये डूब मर मझधारौ।
मित्र न ऐसो करें सपनें रहे खीर म सौंज महेरी मे न्यारो।

जो मित्र वक्त गुग्र म साथ रह प्रगाढता प्रकट कर और कष्ट पडन पर विलग अर्थात दूर हो जाय और अपन स्वार्थ की सिद्धि क उपरान्त मिलना जुलना भी बन्द करद पर स्वार्थ की पूर्ति न होने पर द्वार पर नित्य प्रति ही अडा रह एस दगल (दगाबाज) मित्र स मित्रता करना उचित नहा। उसस सदव सतक रह। यदि और कही ऐसा अवसर आ जाय कि वह किसी आपत्ति या नदी की मझधार म डूब रहा हो तो डूब जान द क्योंकि यह तो एसा मित्र है जो मीठी खीर क समय भोजन म तो उपस्थित रहता है और जब महेरी (मठा म चावल द्वारा बनती है) बने तब वह खट्टा पदार्थ समझ कर विलग हो जाता है। एक और लोकोक्ति देखिए

'गाजर की दक तुला, बठन चहत विमान"

दिन रात अधम की पर नदी, औ बदी के समुद्र से नेकी कौं टेरत।
पाप के जाल मे बोदो फिरें, हरनाम के नाम की माला न फेरत।
"जुगलेश' चहै विष बकें अमी, बन आउत नाइ जब जम घेरत।
गाजर की अरे! दके तुला, त बठो विमान की बाट कौं हेरत।

र मनुष्य! तू नित्य प्रति दिवस और रात्रि म अघ रूपी कुकर्मों की सरिता क मध्य तरता रहता है। दूसरे व्यक्तियो को अपन आघात रूपी सागर म ढकेल कर फिर भी नेकनामी अथात प्रशसा की प्रतीक्षा करता है तथा पाप के जाल म ग्रस्त होकर भी माला द्वारा श्री हरि क नाम का स्मरण नही करता। तू तो विष क बीज बोकर अमृत फल की चाहना करता है। अरे! तुझको यह ध्यान नही कि जब यमराज आकर घेरेंगे तब तेरी एक भी नही बन आयगी। इसके उपरान्त र धूत, तू गाजर का तुलादान करके स्वग क पुष्पक यान की बाट जोहता है।

कुछ लोकोक्तियो का आनन्द और लीजिए, जो प्राय छन्द के अन्तिम चरण म व्यक्त की गई है

"धरती सों पिया प पया न उठ, दिन रात बयाई खों मारत मायो"।

भूमि पर स तो पति म पया (अनाज मापन का पात्र) के उठाने तक की शक्ति नही है किन्तु बयाई (पया स अनाज माप करन वाल व्यक्ति को ब्या' और माप काय को 'ब्याई कहा जाता है) करने के लिए दिन रात माथापच्ची करते हैं।

इसके अतिरिक्त एक अर्थ इस कहावत का यह निकलता है कि पति मे पया तक उठाने की शक्ति नही लेकिन दिन रात अपनी विवाहित स्त्री से दूसरा और विवाह करने के लिए माथापच्ची कर मिथ्याभिमान किया करते हैं।

"चढाय की नाइन"

**हमतो मन मार क बठीं हतीं बनक तुम आये चढाय की नाइन"।**

श्री उद्धव जब श्रीकृष्ण का नान-सन्देश लेकर गोपिकाओ के पास मथुरा पधारे तब गोपिकाएँ कह रही हैं कि हे उद्धवजी! हम तो श्याम के वियोग मे अपने मन का हनन करके अपने धाम म बैठी हुई थी किन्तु तम हमारी इस दुखदावस्था मे एक और कष्ट की कडी जोडने निर्मोही श्याम का योग उपदेश लेकर चढाय की नाइन की भाति आये हो। (चढाय की नाइन वह कहलाती है कि जो विवाह-समय म वरपक्ष की ओर से कन्या पक्ष म वधू के लिए वस्त्राभूषण आदि लेकर जाती है, और कन्या पक्ष क समाचार स वर पक्ष को तथा वर-पक्ष के समाचार से कन्या पक्ष को अवगत कराती है।

**'धोबी कमे कूकर न घर के न घाट के'।**

जो व्यक्ति तृष्णा अथवा ममतावश एक स्थान को त्यागकर दूसरे स्थान म भटक जात हैं, उनको न यहाँ ही कुछ प्राप्त हो पाता है और न वहाँ ही। अतएव वह धोबी के कुत्ते की भाति ही भटकन है। घर स वह कपडे धोने वाले घाट पर जाता है और जब धोबी भगा देता है तब वह उसके घर चला आता है। न उसे वहा भोजन प्राप्त होता है और न यहा पर।

# बुन्देलखण्डी सूक्ति-साहित्य

सूक्तियो को आचार्यों के मतानुसार कवि की साहित्य-साधना का नवनीत माना गया है। वह अपनी भावना रूपी कामधेनु स सत्य रूपी दुग्ध दुहकर अपनी कलित कल्पना द्वारा जामन देकर दधि को जमाता है। इसके उपरान्त फिर वह अपनी सतत अनुभूति रूपी मथानी मे बिलोकर गुण रूपी मक्खन निकालता है।

बुन्देलखण्डी सूक्तियो के विषय म हम यहाँ श्री जगदीश उपाध्याय, एम० ए० का एक शोधपूर्ण लेख अशत उपस्थित कर रह ह। श्री उपाध्यायजी की भाषा शैली सरल हिन्दी के स्तर स कुछ अधिक उभरी हुइ है जो उनकी योग्यता की द्योतक है।

' सूक्ति साहित्य समाज संबोधित भव्य विचारों का संचित रूप होता है। जन जीवन का चित्र रूप सूक्ति साहित्य में ही स्पष्ट होती है। जनता के सामाजिक जीवन के उत्थान का सौन्दर्य होने के कारण लोग आत्मानुभूति एवं सामान्य आचरण जिसका अपने जीवन का रूप मानते आए हैं, और उनकी परिस्थितियाँ भी सूक्ति साहित्य में भी परिलक्षित होती है। सूक्ति-साहित्य तत्कालीन संस्कृति का अजस्र भण्डार होता है यह भावना अनुपम आभा से अनुप्राणित भावनाओं से वासित समाज से संवलित तत्कालीन-सहृदय संस्कृति के स्वर्णिम रूप को संजोकर निखरता हुआ सहृदयों के हृदय का संबल आकृष्ट करने को सफल रहता है। यह जनता के मूक भावों को प्रकट किया प्रतीक करने का अजस्र स्रोत रहा है हृदय को सरस बनाने के लिए कामना कल्पनाओं के प्रसारण का माध्यम रहा है। समाज की सरल एवं शिष्ट रचना करने में उसका योगदान अमूल्य है। यह जन जागरण का अग्रदूत जीवन के अनुभव का सागर मनोरम भावनाओं का उद्घोषक एवं पोषक रहा है। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति को विकसित और परितोष करने का यह व्यापक साहित्यिक प्रयास कहा जा सकता है जिसका लक्ष्य रहा है जन जीवन। मनुष्य के रहन सहन आहार व्यवहार लोकरीति आदि का सर्वश्रेष्ठ परिचायक हमारा सूक्ति साहित्य ही रहा है। उसका समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान है। अनुभव की आधार शिला पर ही सूक्ति-साहित्य का भव्य प्रासाद स्थिर किया जाता है जो चिर प्राचीन होते हुए भी चिर-नवीन रहता है।

" सूक्तियाँ एक प्रकार की रत्नराशि होती हैं जिनका उद्गम स्थान होता है एकमात्र हृदय सिंधु। इन रत्नों की आभा अविच्छिन्नरूपेण आलोकित रहती है। 'गागर में सागर' की उक्ति की सार्थकता सूक्ति-साहित्य में ही होती है। अल्पाक्षरों में महत्तम व लघुतम सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना करने में ये सूक्तियाँ ही शिल्पी का सम्रय होती हैं। वे सूक्ष्म मार्मिक व्यंजना करने में अपना सानी नहीं रखती हैं। वे प्रभावोत्पादक एवं भावपूर्ण विचारों, अनुभूतियों और रसों आदि का पंचामृत पान कराकर ही सन्तुष्ट होती हैं वे बाल्यावस्था की मनोमुग्धकारिणी सरलता, किशोरावस्था की सहज चपलता यौवन की उद्दाम किन्तु मर्यादित शृंगार भावना तथा प्रौढ़त्व एवं वार्द्धक्य की स्नेहमयी वृत्ति की सरस तथा हृदयस्पर्शिणी अभिव्यक्ति को अपने में संपुटित रखती हैं।

' जो उक्ति कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना-वैचित्र्य चमत्कार कवि के श्रम या विचार में प्रवृत्त कराये उसे ही सूक्ति कहा जाता है। साहित्यकार अथवा सूक्तिकार उसी मात्रा में महान् होता है जिस मात्रा में उसमें अपनी

उक्तियों को सुन्दर रूप में प्रचलित कर देने की क्षमता होती है। लम्बे व्याख्यान व उपदेशमालाओं की सार्थकता को ये सूक्तियाँ ही निरस्त करती हैं। समाज की मान्यताओं में यत्किंचित परिवर्तन सम्भव है परन्तु सूक्तियाँ शाश्वत एवं सनातन रूप में सर्वदा विद्यमान रहती हैं। उनका महत्त्व उनमें व्यंजित भावों की विलक्षणता और व्यापकता से ही नहीं उनकी मौलिक उद्भावनाओं तथा चमत्कारपूर्ण उक्तियों से होता है।

'सूक्ति साहित्य' वेद-पुराणों, उपनिषदों रामायण, महाभारत आदि सभी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों तथा मध्यकालीन ग्रन्थों में भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। महाकवि बाण ने 'हर्षचरित' में कालिदास की सूक्ति की प्रशस्ति के विषय में लिखा है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।

'सूर तुलसी रहीम गिरिधर आदि की सूक्तियाँ लोगों के जिह्वा व कण्ठ पर विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त जनपदों में अपढ़ ग्रामीण नर-नारियों के मुखों से बात बात में कुछ निःसृत होती हैं जो उनकी धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों में उनका समाधान करती हैं।

'बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का मध्य भाग है, उसका हृदय है। बुन्देलखण्ड की साहित्यिक व सांस्कृतिक परम्परा अनुपम रही है। बुन्देलखण्ड की देन पर समस्त भारत अभिमान कर सकता है। प्रकारान्तर से बुन्देलखण्ड ने अपने वैभव से अखिल भारतीय गौरव प्राप्त किया है। बुन्देलखण्ड के जनपदों में सूक्तियों का भी विशिष्ट स्थान है। यहाँ की अशिक्षित जनता को बुन्देली लोक साहित्य की असंख्य सूक्तियाँ जो पुस्तकों मे अनुपलब्ध हैं उसके आधि व्याधि समाकुल जीवन को शांति एवं सान्त्वना का सन्देश देती रहती हैं। बुन्देली लोक साहित्य में अलिपिबद्ध सूक्तियों का सागर भरा हुआ है। हिन्दी का अ आ भी न जाननेवाली जनता द्वारा उनका प्रयोग सुनकर अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता है। इन बुन्देली सूक्तियों की अपनी सत्ता, महत्ता और इयत्ता होती है। वे उनके लिए श्रेय भी हैं और प्रेय भी। बुन्देली सूक्तियों की प्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता ही अनूठी है। वे बड़ी ही सरस, सजीव तथा सजीली होती हैं। उन्हीं में से कुछ का विवरण यहाँ दिया जाता है—

चार का आगमन अमंगलकारी

आवत आवत सब भले, आवत भले न चार।
विपद, बुढ़ापो, आपदा और अचीतो धार।

"नई वस्तुओं का आगमन सुखदायी होता है, किन्तु विपत्ति, बुढ़ापा, आपत्ति एवं आकस्मिक घटना इनका आना अमंगलकारी होता है।

मायां के चार पुत्र

मायां के सुत चार हैं, दान, आग, नृप, चोर।
जेठे को अपमान कर, तीन कर भड़ फोर।

"माया (धन) के चार पुत्र हैं—दान, अग्नि, राजा और चोर। इनमें से यदि कोई ज्येष्ठ पुत्र (दान) का अपमान करता है तो शेष तीन उसका भण्डा फोड़ कर देते हैं। अर्थात कोई अपने द्रव्य को यदि समुचित रूप से दान नहीं करता तो या तो अग्नि उसे नष्ट कर देगी या राजा उसे हड़प लेगा या फिर चोर ही उसका अपहरण कर लेंगे। अतएव जेठे पुत्र (दान) का सम्मान करना आवश्यक है।

चार के ठनगन

ब्योपारी, अरु पाहुनों, तिरिया और तुरंग।
ज्यों ज्यों जे ठनगन करें, त्यों-त्यों आवे रंग।

"ब्योपारी, पाहुना (अतिथि) कामिनी और घोड़ा ये ज्यों ज्यों ठनगन (नखरे) करते हैं त्यों-त्यों अधिक सुखद होते हैं।

चार की अंधता

ऊंग न देखे टूटी खाट, प्यास न देखे धोबी घाट।
प्रेम न देखे जात कुजात, भूख न देखे जूठो भात।

"नींद आने पर टूटी चारपाई का, प्यास लगने पर धोबीघाट का प्रेम में ऊँच नीच जाति का और भूख लगने पर जूठे चावलों का विचार नहीं रहता और उनकी तृप्ति कर ली जाती है।

नौ टेढ़े

हर, हसिया, बंच, फावरा, गिविका, ऊट प्रमान।
जे नौ टेढ़े चाहिए अकुंस, भौंह कमान॥

"हल, हँसिया बाल, फावड़ा पालकी, ऊट, अंकुश भृकुटि और धनुष ये नौ टेढ़े अच्छे होते हैं।

नौ लम्बे

पाग, पिछौरा, परदनी, खोर, गदेला, खाट।
जे नौ लम्बे चाहिए, हाट, सगाई, पाट।

'पाग चादरा, धोती, रजाई, गद्दा, चारपाई, बाजार, सगाई और घाट नौ लम्ब ही भले होते हैं।

नौ चौड़े

बस्ती, बद, तपेश्वरी, वास, बिछौना, खाट।
जे नौ चौड़े चाहिए, हाट, घाट, उर बाट।

"बस्ती, बद तपेश्वरी, बास, बिछौना, चारपाई बाजार घाट और मार्ग चौड़े ही शोभाप्रद होते हैं।

नौ का साथ

दाता, सूर सुजान-नर ज्ञानी, गुनी, प्रवीन।
पंडित, कवि, अरु बोहरौ ये नौ आग कीन।

"दाता सूरवीर, सज्जन मनुष्य ज्ञानवान, गुणवान, चतुर पंडित, और बोहरौ (साहूकार) इन नौ मनुष्यों का साथ हितकर होता है, अस्तु इन्हें आगे रखना चाहिए अर्थात इनसे निकट सम्पर्क रखना चाहिए।

नौ का निषेध

रोगी, दोषी, सूम, सठ, अज्ञानी मतिहीन।
चुगल, चबाई, पातकी ये नौ पाछू कीन।

"रोगी दोषी कंजूस, दुष्ट मूर्ख, बुद्धिहीन चुगल बकवादी और पातकी इन नौ से सदा बचकर रहना चाहिए।

नौ दबे

कागद, केला, पान अरु दासी, दुजन, दाम।
जे नौ दाबे ही भले रहुआ महुआ आम।

कागज केला, दासी पान, दुजन, धन, नौकर, महुआ और आम दाबने से ही अच्छे बनते हैं।

नौ ऊँचे

किलौ, कोट मंदिर, महल, द्विज, क्षत्री, गज बाज।
जे नौ ऊँचे चाहिए, दद बराई, नाज।

'दुर्ग, परकोटा मंदिर महल ब्राह्मण क्षत्रिय हाथी, बाज (घोड़ा), बद ईख और अन्न ये ऊंचे व श्रेष्ठ ही होने चाहिए।

फूटे बुरे

कान, आंख, मोती, मतौ, बासन बाजौ ताल।
गढ़ मठ डोंडा जन्त्र पुनि जे फूटें बेहाल।
मन, मोती मूगा, मतौ डोंगा, मठ, गढ़, ताल।
दल, मल, बाजौ, बटुआ, घर फूटे बेहाल।

"कान, आँख, मोती, मत (राय), बरतन बाजा, तालाब, दुग, मठ किदनी और यत्र फूटे बुरे होते हैं। दूसरे का अथ स्पष्ट है।

फूटे अच्छे

खत, डगरा, बन बोंगरा, दाडिम, कुसुम विशेष।
जे फूटे तें गुन करें, करा, लाई, केश।

कलम का खत डगरा (खीरा सदृश), कपास—बोंगरा (नन्दन बन की बोडी) अनार फूल केला लाई और केश फूटे (फटे बिखरे) हुए महत्वपूण होते हैं।

दस क्षीण

चन्दन चावर तन तिया, सिंह, लक, सन सूत।
जे दस पतरे चाहिए तुला राग रजपूत।

"चन्दन चावल घास स्त्री और सिंह की कमर सन सूत, तराजू राग और राजपूत य पतले ही अभीष्ट होते है।

दस पीन

पय, पानी, रस, पानहीं, पान, दान सम्मान।
जे दस मोटे चाहिए साव, राज, दीवान।

"दूध, पानी शरबत जूते पान दान, सम्मान साहूकार राजा और दीवान (मन्त्री) य दस सदव मोटे होने चाहिए। यहा राजा और दीवान के मोटे होने का लाक्षणिक अथ गभीर चित्तवृत्ति वाले तया दान पान सम्मान के मोटे का अभिप्राय है हृदय द्वारा किया हुआ।

दस अदम्य

इश्क मुश्क, खांसी खुशी, खूबी, मदिरा, पान।
जे दस दाबें न दबें, पाप पुन्य अरु स्यान।

'प्रेम, कस्तूरी खासी, आनन्द, गुण शराब पान पाप पुण्य और चतुराई दाबने पर भी दबते नही हैं और अपना प्रभाव प्रकट कर देते है।

नवीन वस्तुएँ

कस्तूरी कदली, तुरी कपडा कनक कमान।
जे सब नूतन चाहिए काम धाम अरु वाम।

"कस्तूरी केला घोडा वस्त्र आटा धनुप काय घर और स्त्री य नवीन ही श्रेष्ठ होती हैं।

पुरानी वस्तुएँ

बस्नो बद तपेस्वरी, प्रोहित तन्दुल, पान।
जे नौ नए न चाहिए तेल दिवान कृपान।

"बस्ती, वद्य, तपस्वी, पुरोहित, चावल, पान तल मत्री और तल्वार य पुराने ही श्रेष्ठतम होते हैं।

अविश्वसनीय

बन्दर, जोगी अगिन, जल, सूजी सुआ, सुनार।
जे दस होंय न आपनें कूटी, कुटक, कलार।

'बन्दर यागी, अग्नि, जल, सुई, तोता, सुनार गृह कुट्टिनी कलार य अविश्वसनीय होते हैं।

त्याज्य धन

भीख, दायजौ नाठ धन चोरी जुआ अगान।
इतने धन कौं पर हरौ, जे नाहीं ठहरान।

'भाख दायजा नाठ का द्रव्य, चोरी का धन जुआ और बिना हाथ स श्रम किया धन ठहरता नहीं है।

सिधाई का दोष

अधिक सिधाई परहरौ सूदें टका बिकायँ।
टेढ़े लाग पालकी वे पच्चीसों जायँ।

"अधिक सिधाई को छोड दो क्योंकि सीधा बास एक टका (सस्त) म बिकता है जबकि टेढा बास पालकी म लगन से पच्चीस रुपये का बिकता है।'

(विपिन बाणी, पृष्ठ ७१)

## बुन्देलखण्डी ज्योतिष-साहित्य

बुदेलखण्ड के कुछ अनुभवी ज्योतिषियो न बुदेलखण्डी वाली म कुछ फलितो की छदवद्ध रचना कर इस क्षेत्र की अनुपम सवा की है। ज्योतिष की इन छन्दवद्ध रचनाओ को आरजा कहत है। य आज भी यहाँ क ग्रामो म प्रचलित हैं। इन आरजाओ के सृजनकर्त्ताओ म स केवल एक दो के नाम ही मिलते हैं अय के नहीं। जिनके नाम यहाँ के जनपद म विख्यात हैं, उनमे भड्डरी और सहदव प्रमुख ह। पहले हम सहदेव की आरजाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

सहदेव का जन्म जनश्रुति के आधार पर वि० सवत १५०० के लगभग

छतरपुर (म० प्र०) के किसी ग्राम में हुआ था। सहदेव की आरजाओं से ग्रामीण जनता को अपने जन-जीवन के सुख दुख का सदैव परिज्ञान होता रहता है।

तीतुर-बारी-बादरी, विधवा काजर रेख।
बौ बरसै बौ घर कर जामें मीन न मेख।

अर्थात—जिस समय तीतुर पक्षी के पंखों सदृश नभ में बादल छाये हुए हों तो वह अवश्य ही बरसकर रहेंगे, और विधवा स्त्री यदि काजर लगाना प्रारम्भ कर दे तो समझना चाहिए कि वैधव्य धर्म अब यह स्त्री निभा नहीं सकती।

सास बहू की एकइ सोर।
एकछो करगइ पाखो फोर।

अर्थात—जिस गृह में सास और बहू (वधू) एक ही साथ में प्रसूता हों यानी बालकों को जन्म दें तो समझना चाहिए कि उस गृह में अब लक्ष्मी नहीं रहती यानी वह परिवार छिन्न हो जायगा।

रोहनि उत्रा रेवति, स्वांत
कन्या जन्म आधी रात।
आप मरै माई दुख पाय
जियै तो कुल कों दाग लगाय।

अथात—रोहिणी उत्तरा रेवती और स्वाति इन तीन नक्षत्रों में अधरात्रि के समय यदि कन्या का जन्म हो तो या तो उस कन्या की मृत्यु हो जायगी या उसकी माता को अत्यन्त कष्ट होगा। यदि वह बालिका जीवित रहेगी तो यह कुल को कलंक अवश्य लगायगी।

इस आरजा का यथेष्ट प्रमाण इस उदाहरण में मिलता है कि रोहिणी नक्षत्र में अधरात्रि के समय यशोदा के पुत्री का जन्म हुआ था और उसको वसुदेवजी मथुरा लेकर आये तो पछार देने हो कंस ने उसका वध कर दिया।

पुष्य पुनरवस पहर, रोहिनि हार मार।
तीनऊँ उत्तरा, ना मिले जो चाहौ पति राज।

इस आरजा में गुनवन्ती स्त्री को चूड़ा पहनाने के सम्बन्ध में संकेत किया है। जो स्त्री परिराज धारनी हो अथवा सधवा रहना चाहती हो उसे चूड़ी पहनते समय इन नक्षत्रों का ध्यान रखना चाहिए। यदि वह पुष्य नक्षत्र और पुनरवसु नक्षत्र में चूड़ा पहनेगी तो उसका पति त्याग दूर अथवा विदेश रहेगा स्वाति और रोहिणी नक्षत्र में यदि पहनेगी तो उसके पति की मृत्यु हो जायगी

जो स्त्री पति का सुखभोग करना चाहती हो उसे अश्विनी उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तराभाद्र में भी चूड़ियाँ नहीं पहनना चाहिए।

एक पाख दो गना ।
पिरजा मरै क सना ।

अर्थात्—एक माह में ही अमावस्या को सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा को चन्द्र ग्रहण पड़े तो समझना चाहिए कि प्रजा जनों की रोग से अधिक मौतें होंगी अथवा युद्ध होगा जिससे सेना की पराजय होकर संहार होगा।

मघा, मूल अनुराधा रेवे
पुख्ख पुनरवस जो शनि सेवे।
हा हा, हूल मचे चौखंडा
पिरथी कांप उरै नौ खंडा।
कछुअक मानस कट मरें
कछुक मरें ग्रह योग।
कछुअक आपइ स मरें,
भाखत हैं 'सहदेव'।

अर्थात्—मघा, मूल अनुराधा रेवती पुष्य और पुनर्वसु इन छः नक्षत्रों का स्वामी शनि हो तो चारों दिशाओं में हाहाकार मच जाय और पृथ्वी सहित नव खण्ड में भूचाल आ जाएगा। इसके अतिरिक्त देश में ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाय कि कुछ व्यक्ति तो युद्ध में कट जायें, कुछ व्यक्ति ग्रहों के प्रताप से रोग ग्रस्त हो काल के गाल में चले जायें और कुछ अनायास अकाल कालकवलित हो जायें।

इन बुंदेलखण्डी ज्योतिष आरजाओं ने इस जनपद को ही लाभान्वित किया हो, ऐसी बात नहीं। इन आरजाओं को अन्य क्षेत्रों के ज्योतिषियों ने भी कण्ठस्थ करके इनसे बहुत से व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया है।

अब हम भी भड्डरी की कुछ ज्योतिष-सम्बन्धी आरजाओं का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

नार सुहागिन घट भर ल्यावे। दध मछली सन्मुख जो आवे।
सामें गऊ चुखावे बच्छा। येई सगुन है सबमें अच्छा।

अर्थात्—सुहागिन स्त्री सिर पर घड़ा भरे हुए सम्मुख आए या कोई व्यक्ति दही मछली लिए दिखाई दे या गाय अपने बछड़े को दूध पिलाती दर्शित हो तो ये सब शकुन शुभ होते हैं।

गैल चलत नेवरा मिल जाय। बाम भाग चखु चारा खाय।
काग दाँयनें खेत सुहाई। सफल मनोरथ समझो भाई।

अर्थात—यात्रा समय जिनके स्थान हो या जाएँ और नीलकंठ-पक्षी चारा पा रहा हो, या दाहिनी ओर कौवा नेत्र में दिखाई पड़े तो कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

कृष्ण असाढ़ी प्रतिपदा को अम्बर गरजन्त।
छत्री छत्री जूझिया निहचे काल पड़न्त।

अर्थात—आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को आकाश में बादल गरजें तो देश में युद्ध हो और अकाल अवश्य पड़ेगा।

जेठ बदी दसमी दिना, जो शनिवासर होइ।
पानी रंच न धरनि प, बिरला जीवे कोइ।

अर्थात—ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष दशमी के दिवस यदि शनिवार हो तो अवर्षण के कारण पृथ्वी पर सूखा पड़े जिससे प्राणियों की मृत्यु हो और जनसंख्या कम हो जाय।

सोम, शुक्र, गुरुवार को पूस अमाउस होय।
घर घर बजें बधाईयाँ, दुखी न दीखे कोय।

अर्थात—सोमवार शुक्रवार गुरुवार के दिवस पौष के महीने में अमावस्या पड़े तो देश में घर घर बधाई बजे और जन-जीवन सुखी रहे।

## बुन्देलखण्डी में गीता और रामायण

श्रीमदभागवतगीता और रामचरितमानस के अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार देशी और विदेशी भाषाओं में अनुवाद किये हैं। इसके अतिरिक्त इन दोनों महान ग्रन्थों के जन बोलियों में भी अनुवाद दृष्टिगत हुए हैं जो ग्रामीण जनों को परम प्रभु का शाश्वत ज्ञान प्राप्त कराने की दृष्टि से अति सुलभ हैं।

मैं यहाँ इन दोनों ग्रन्थों का ऐसा ही निरूपण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा जो बुन्देलखण्ड के विद्वान कवियों ने यहाँ की जन पदी बोलियों में अपने अपने मतानुसार अनुवाद और भावानुवाद कर अक्षुण्ण रखा है।

सर्वप्रथम मैं जनकवि 'श्री ऐनसाइ' जिनका जन्म वि० संवत १८४१ के लगभग बगम पठान कुल में हुआ था और मृत्यु वि० संवत १६०० के करीब बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थान दतिया में हुई उल्लेख करूँगा। ऐनसाइ को अरबी, फारसी का बोध हजरत फिदाहुसैन द्वारा कराया गया था, और संस्कृत का

बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य गोस्वामी श्री कृष्णदासजी द्वारा। सस्कृत का ज्ञान होने के कारण इनका मन अध्यात्म तथा भक्ति मार्ग मे रम गया जो स्वाभाविक ही था।

'एनसाइ' ने हिन्दी साहित्य को १५ ग्रन्थ भेंट किये जो अपने अप्रकाशित रूप मे दतिया के पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं। इनके नाम इस प्रकार है

१—नर चरित्र, २—सुरा रहस्य, ३—गुरु उपदेशसार, ४—सिद्धात सार, ५—भक्ति रहस्य, ६—इनायत हुजूर, ७—अनुभव सार ८—ब्रह्म विलास ९—सुख विलास, १०—भिक्षुक सार, ११—भगवत प्रसाद, १२—श्याम हितवर, १३—हित-उपदेश १४—हरि प्रसाद १५—एन बिहार।

यहा हम उनके बुंदेलखण्डी मे रचित ब्रह्म विलास के कुछ छन्द उदधृत कर रहे हैं जो अध्यात्मवाद का प्रतिपादन करते है। अवलोकन कीजिए उनका समता भाव का वर्णन—

कोउ सत असतुत करत कोउ बोलत कटु बैन।
जाखों जैसे सुख पर ताखो तसे 'ऐन'।

अब प्रभुसत्ता द्वारा जीव का चौरासी लक्ष योनियों मे भ्रमण करने के भाव का अवलोकन कीजिए—

कुंडलिया

लख चौरासी जौन की नाथ' हात भगवान।
जसे पुतली काठ की नाच गाव तान।
नाच गाव तान फिर ज्यों घोड़ा हाथी।
फेरन हारा ब्रह्म बोइ जीवन का साथी।
नाथ पकर ज्यों बैल को फेरत 'ऐन' किसान।
लख चौरासी जौन की नाथ हात भगवान।

गीता के कर्मयोग का जिसके कारण मनुष्य दुःख सुख भोगने का विवश होता है, यहा कितना सुन्दर निवाह हुआ है।

कुंडलिया

मात, पिता, सुत, कामिनी, बेटी, भाई, यार।
दुख परत जब देह प, भुगतत आप विचार।
भुगतत आप विचार कुटम दुख बाँटत नाइ।
या भुगत जा देह कर या ब्रह्म सहाई।
'ऐन' म जाडा होत है, दुख मे यह ससार।
मात पिता, सुत, कामिनी, बेटी, भाई यार।

इसके अतिरिक्त श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीराम के पावन चरित्र को सात काण्डों में प्रणीत किया, उसी को किसी लोक कवि ने अपनी सीधी सादी बुन्देली बोली में केवल छह पंक्तियों में अभिव्यक्त कर जनता को बोध कराया है।

यही उस लोककवि की विशेषता है। अवलोकन कीजिए—

एक राम इक रावना।
वे छत्री वे बामना।
उनें उनकी नार हरी।
उनें उनकी कुगत करी।
बातन बढ़गओ बातना।
तुलसी रचदओ पोथना।

## बुन्देलखण्डी लोक-कथा साहित्य

### दसा रानी की कथा

बुन्देलखण्ड में अनेक मंदिरों और पहाड़ों पर प्राचीन काल से श्री मंसादेवी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इन मूर्तियों को लक्ष्मी का दूसरा रूप कहा जाता है। भावमुद्रा शान्त, सिर पर पंचमुखी अहि मुकुट भाल पर लाल बिंदी एक हाथ में पद्म, दूसरे में शंख, तीसरे में आयुध और चौथा दाहिना कर भक्तों को अभय दान देने की मुद्रा में सुशोभित है।

इस क्षेत्र की स्त्रियाँ इन्हीं मंसादेवी की दसा रानी के रूप में उपासना करती हैं जो धन धान्य की वृद्धि की दृष्टि से की जाती है। उपासना का प्रारम्भ सूत के गंडे द्वारा होता है जिसको 'दसा रानी के गंडा लेना' कहा जाता है। यह प्रथा इस प्रकार है—जब किसी गाय, घोड़ी, स्त्री के पहला बच्चा होता है अथवा कुम्हड़ी के वंश में जब प्रथम फल निकलता है तब गंडा लिया जाता है किन्तु स्त्री के गंडा लेने में एक प्रतिबंध है कि उसके गर्भ किसी तंत्र मंत्र द्वारा या किसी अन्य साधन द्वारा न रहा हो।

गंडा (गंडा) दस सूत्र का आंजकर बनाया जाता है जिसमें नौ सूत्र कच्चे सूत के और एक जो स्त्री गंडा लेती है उसके आंचल (साड़ी का दाहिना छोर) के छोर के धागे का होता है। जो स्त्रियाँ गंडा लेती हैं, उसी दिन से एक स्थान

पर एकत्रित होकर नौ दिन दसा रानी की पाँच या नौ कहानियाँ कहती हैं। यह क्रम समाप्त होने पर दसवें दिन अपने-अपने गृह में उसका पूजन करती हैं। जो स्त्री पूजन करती है वह उस दिन उपवास रखती है और घर को गाय के गोबर द्वारा लीप सिर से स्नान करके दस फरा, दस गुलेला (यह जल में उबली हुई रोटी और गोली होती हैं) भोग के लिए बनाती है। पश्चात आटे से चौक पूरकर उस चौक पर पटडे रख उसके ऊपर चंदन की दस पुतरियाँ (दसा रानी की मूर्तियाँ) चित्रित करती है। तत्पश्चात जो सूत का गंडा पहले लिया गया था उसको दूध द्वारा स्नान कराकर प्रस्थापित करती है। पूजन के समय केवल गृह की स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। पूजन समाप्त होने के पश्चात परिवार की वृद्धा दसा रानी की कहानियाँ (कथा) प्रारम्भ करती है। कहानी समाप्त होने पर मनोकामना करते हुए अक्षत चढ़ाती है तदुपरान्त गंडा लेने वाली स्त्री मौन धारण किए हुए उन फरा और गुलेलाओं का घृत और गुड़ से भोजन करती है। भोजनोपरान्त उस पूजन की समस्त सामग्री को लेकर एक पोतिनी मिट्टी के लोटा में रख समीप के किसी सरोवर या बावरी-कुआँ में सिराने के पश्चात अपना मौन खोलती है।

दसा रानी की पूजा की यह प्रथा इस क्षेत्र के प्रायः प्रत्येक ग्राम और शहर में आज भी प्रचलित है। यहाँ की स्त्रियों का यह दृढ़ निश्चय है कि इस पूजन से गृह में धन, संतान की अवश्य वृद्धि होती है। इनके पूजन के अवसर पर जो दसा रानी की कहानियाँ कही जाती हैं उनसे भी यही आभास होता है। दसा रानी की उन प्रचलित कहानियों में से दो यहाँ दी जा रही हैं।

## ( १ )

एक माते के यहाँ चार बधुएँ थीं। तीन गृह-कार्य में चतुर एक अत्यन्त सरल सीधी और दसा रानी के चिन्तन में सदैव रत इस कारण उसको परिवार में हेय दृष्टि से देखा जाता था।

एक बार माते ने यह निश्चय किया कि यह पूजन वाली बधू ! जब गृह का कुछ काम धाम ही नहीं करती है तब इसको खेत की रक्षा करने का भेज दिया जाय। माते ने ऐसा ही प्रबन्ध किया। बेचारी खेत पर बाल न्यिय हरिण (तोता) जो कि ज्वार, बाजरा के भुट्टा को चुगने आया करते थे उनको भगाया करे।

बधू ने खेत की रखवाली की ओर बड़ी सतर्कता से की। इस कारण समीप के खेतों से माते के खेत में अधिक बड़े भुट्टे हुए। अब क्या था बधू की सब कोई सराहना करता था और जब खेत कटने लगा तब ज्वार के दानों की बजाय मोती झड़ना प्रारम्भ हो गए। काटने वाले ने यह सूचना माते को दी

तो माते आश्चर्य में पड़कर खेत पर आए। उन्होंने खेत में जहाँ-तहाँ मोतिया को दमकते देखा। तुरन्त मोतिया के भरने का प्रबन्ध किया, किन्तु चर्चा ग्राम भर में फैल गई। ग्रामवासी माते के खेत पर आकर यह दृश्य देखने को उपस्थित हो गए और अति आतुर हो माते से पूछने लगे— माते जू ! खेत में ज्वार बोई ती के मोती।'

माते ने भी आश्चर्य से उत्तर दिया — भैया हौरे हमने तो ज्वारई बोईती प का कैसो भयो जो हमाई पूजन वारी बहू जान, वानइ जो भेत रखाओ है— बइसों पूछत हैं।'

पूजन वाली वधू से पूछा गया। उसने घूँघट की ओट करते हुए सरल भाव में उत्तर दिया, 'दाउजू मैं का जानों जो हमाइ दसा रानी जान।

दसा रानी की कृपा से उस वधू का अब परिवार में बड़ा आदर सम्मान होने लगा, और माते का गृह भी ग्राम में धनी मानियों की गणना में गिना जाने लगा।

( २ )

एक माते के दो लड़के थे जिसमें एक था कनवाँ और एक था रतवाँ। कनवाँ बड़ा था किन्तु काना था, इस कारण अविवाहित रह गया था और रतवा सुन्दर था इस कारण उसका विवाह हो गया था।

भाग्यवश रतवाँ की वधू भी सुन्दर मिली थी लेकिन सास कर्कशा थी, इस कारण वधू सदा अनमनी सी रहती थी। उसको ग्राम से छह मील दूर शहर में नित्यप्रति मठा बेचने जाना पड़ता था, तदनन्तर वहाँ से लौटने पर गृह के सभी कार्य करने पड़ते थे। एक दिन जिस मुहल्ले में वह मठा बेचने जाती थी, वहाँ के एक गृह की स्त्री कहने लगी —'री मठयारी बहू ! हमने आज दसा रानी के गन्डा ल्यहैं तइ ल ल पैलउ पल गैया क बच्छा भओ है।'

वह दीन मन से कहने लगी— जो मोरी कक्को, मेरी सास बड़ी लड़कू है। मैं कैसें क कहानियाँ सुनहौं और कौन तरा गन्डा पूज पहौं।"

मठा खरीदनेवाली स्त्री ने उसका समाधान करते हुए कहा— त रोज हैंईं मठा दै जाओ कर और हैंईं कानियाँ सुन जाओ करें—रइ गंडा पूजवे की बात सो कौनउ-तरा दसवें दिन सास खों मठा बेचन को भेज दिए सोई त जौनो गंडा पूज लिय।

मठावाली बहू ने बात मान ली और गंडा लेकर अपने गाँव चली गई। सुबह आई और उसने मठा बेचा कहानियाँ सुनी, फिर गाँव चली गई। यह क्रम निरन्तर नौ दिन चलता रहा और दसवें दिन उसने किसी बहाने सास को मठा बेचने भेज दिया तथा दसा रानी के पूजन की सामग्री सँजोकर उसने विधान के

अनुसार पूजन किया, किन्तु जब वह मौन धारण किए हुए उस पूजन सामग्री को पातिनी के ढेला म लपटे हुए कुएँ म सिराने जा रही थी कि सास ने दरवाजे की साकर खटखटाई। बेचारी क तरें के तात तरें और ऊपर के ऊपर रह गए और उसने सास के भय स उस पूजन सामग्री क डगा को मठा के मौना म डाल कर तुरत जाकर किवाडो की साकर खोल दी।

सास थकी मादी आई थी बठ गई और बहू भी रसोई के वास्ते आटा माडन लगी। लेकिन सास को प्यास लग आई थी, इस कारण उसन मठा म नौन डालकर पीने की सोची, और जस ही उसने मठा के मौना मे हाथ डाला कि बहू के प्राण सूखन लगे। अब वह मन ही मन दसारानी को स्मरण करा लगी। और वह करती ही क्या ?

सास का हाथ जस जसे मौना क नीचे पहुचा वैसे उसके हाथ म एक वजनदार गीडा आया और जस उसने निकालकर देखा तो वह साने का था। ककशा तो थी ही आगबबूला होकर बहू से कहने लगी

"री जौ कौन को हर मूस क ल्याई और मौना मे डार दऔ का गाव मे स सब जनन खौ निकरवाहे।" घर मे कोलाहल मच गया मात भी सुनकर चौका म आ गए और दोना लडक कनवा रनवा भी आ खडे हुए। बेचारी बहू चौका के एक कोने म खडा सिसक रही थी।

मात को भी मातुन की बात का समथन करना पडा, कि तु गाव के मुखिया थ इस कारण बहू को प्रसन्न भाव स ढाढस बधाकर सारा वत्ता त पूछने लगे। अब बहू की कुछ हिचकी रुकी क्योकि श्वसुर के पूछन म सास की अपेक्षा प्रेम था। उसने लज्जा स घूघट सम्हालत हुए धीमी आवाज म उत्तर दिया, दद्दा मै का जानी मरी दसारानी जान।' उपरात उसन आद्यन्त सब वत्तान्त सुना दिया।

माते सोच विचारकर मातुन से कहन लगे—' री इननो सोनो होय बहू की दसारानी न दऔ क त अपन मव गानें गुरिया बनवा लय और बहू के लान बनवा लेय तोऊ बच रहै, जे लाल पीरी आखें काय प कर रइ।'

मात की बात गान गुरिया की सुन मातुन प्रसन्न हो गई। अब क्या था। सोने की लल्लरी, ठुसी, तिदाना बिचौली सब आभूषण बनन लग, और जब मातुन पहनकर निकलें तब उनको देखकर गाव क सब व्यक्ति चकित होन लगे।

माते का घर अब गाव के धनी मानियो म गिना जाने लगा जिसके फल स्वरूप उनके कनवा लडक का भी विवाह सम्मानपूवक हो गया और माते का परिवार अब पूणत सुखी जीवन बिताने लगा।

यह है दसारानी की महिमा, जो बुदेलखण्ड क प्रत्यक शहर और ग्राम की स्त्रियो क हृदय म विद्यमान है।

इस क्षेत्र में दमारानी की इस प्रकार की कहानियाँ स्त्रियों को सैकड़ों कंठस्थ हैं जो बुन्देली लोक कथा साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

# जनकवि ईसुरी

बुन्देलखण्डी लोक साहित्य के अमर गायक जनकवि ईसुरी के जीवन और उनके लोक साहित्य पर हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों द्वारा समय-समय पर पत्र पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित हुए हैं। किन्तु फिर भी यह काम नगण्य सा ही प्रतीत होता है। ईसुरी का अधिकांश साहित्य बुन्देलखण्ड में ग्राम निवासियों को ही कण्ठस्थ है संग्रहीत नहीं। वह समय-समय पर विशेष महोत्सवों और मेलों में सुनने को मिलता है।

ईसुरी के जीवन और साहित्य से प्रभावित हो हमने भी जो शोध किया है उसे सूक्ष्म रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

ईसुरी का जन्म सम्वत १८८१ के लगभग मऊरानीपुर (झांसी) के निकट मेढ़की ग्राम में जिजौतिया ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम भगवतीप्रसाद और माता का नाम गंगाबाई था। भगवतीप्रसाद के तीन पुत्र थे सन्तानन्द रामदीन और ईश्वरीप्रसाद। यह वृत्तान्त हम स्व० लल्ला वैद्य, जो अब से चालीस वर्ष पूर्व छतरपुर से झांसी आकर बस गये थे से ज्ञात हुआ था।

स्व० लल्ला वैद्य स्व० गंगाधर व्यास (छतरपुर) के घनिष्ठ मित्र थे और ईसुरी गंगाधर व्यास के यहाँ सदैव आया जाया करते थे। इसका प्रमाण यह है कि ईसुरी के फागों से प्रभावित हो गंगाधर व्यास ने भी फागों में जो रचना की है उनकी शैली और भाव-व्यंजना मिलती-जुलती-सी प्रतीत होती है। स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ हम गंगाधर व्यास का एक फाग प्रस्तुत कर रहे हैं

ना आये श्याम मोरे घोर
मैं ठाड़ी रइ बेगर पार।
कर गये प्रबल मदन हम माझो
मझया दै कम की छोर।
ऊधव मान अधैयन आये
लगर करी रई मन मोर।
गंगाधर रसिया है मोहन
ना छोड़ बन उनकौ ठौरे।

ईसुरी की माता का स्वर्गवास इनकी बाल्यावस्था में हो गया था। इस कारण इनका पालन पोषण इनके मामा जानकीप्रसाद के यहाँ हुआ था। मामा लुहर ग्राम (हरपालपुर) में निवास करते थे। ईसुरी की जब पढ़ने की व्यवस्था की गई तब इनका मन नहीं लगा, और यह ग्रामीण मित्रों के साथ अथाई पर बैठकर फागें गाया करते थे। पाण्डे के अत्यधिक श्रम करने पर इनको बड़ी मुश्किल में बारहखड़ी और चानायक ही कण्ठस्थ हो सके। यह देखकर मामा ने ईसुरी को खेती के काम में लगा दिया।

ईसुरी का कविता-काल यहीं से प्रारम्भ होता है। अब क्या था यह खेत पर बैठे खेत की रखवाली करते रहे और मित्रों को एकत्रित कर फागें रचकर सुनाते रहे तथा होरा (चनों की भुनी हुई बौंडिया) खाते और खिलाते रहे। होरा फाल्गुन मास में होता है और फाल्गुन मास बड़े राग रंग का मास होता है। इसी कारण ईसुरी ने अपने छंद का 'फाग' का नाम दिया है। यह फाग चार कड़ियों का होता है जो बुन्देलखण्ड में चौकड़िया फाग के नाम से विख्यात है। यह नरेन्द्र छन्द की यति गति में बँधा है। इस छंद में २८ मात्राएँ होती हैं और १६ तथा १२ मात्रा पर यति होती है। ईसुरी के फाग की यह विशेषता है कि यह भारतीय संगीत की श्रेष्ठ गायकी में गाया जाता है।

ईसुरी के फाग लुहर ग्राम में इतने प्रसिद्ध हुए कि उनके सुनने के लिए दूर दूर से ग्राम्य-जन आने लगे। इस कारण घौर्रा ग्राम के धीरे पंडा आकर ईसुरी के शिष्य बन गए और ईसुरी के फाग बुन्देलखण्ड के ग्राम-ग्राम में उत्सवों और मेलों के अवसरों पर ग्राम नर्तकों के साथ गा गाकर सुनाए जाने लगे। ईसुरी धीरे पंडा की फाग गायकी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वयं एक फाग में उनकी इस प्रकार प्रशंसा की है

जिनके चलें अगारू सा का,
    बड़ो मोहनी भाका।
बाके बोल लगत औरन खा,
    गोली कसो ठाका।
बठे रओ सुनो सब बेसुद,
    खर्चे रओ सनाका।
दूनर होत नाचबे बारी
    मइँ खाँ जात छमाका।
फागन खाँ इक 'धीरे पंडा'
    'ईसुरी' आयँ पताका।

फागों के कारण ईसुरी की ख्याति गाँव गाँव में फैल चुकी थी जिससे इनकी सगाई की चर्चा इनके मामा के पास आने लगी और अन्त में मौगौन के

रामप्रसाद पुरोहित की पुत्री श्यामबाई के साथ इनका विवाह संस्कार हो गया। इस समय ईसुरी २५ वर्ष की अवस्था में पदार्पण कर रहे थे।

ईसुरी की पत्नी भी अतीव सुन्दरी जैसी कि किसी प्रसिद्ध श्रृंगारकवि को प्राप्त होनी चाहिए, मिली थी फलस्वरूप इनके हृदय में भावों का प्रस्फुटन फागों में उभरकर निखरने लगा। यह आनन्द निम्न फाग की पंक्तियों में मिलता है जो उन्होंने स्वयं अपनी पत्नी के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उत्प्रेक्षालंकार में रचा

श्यामामई दोज कौ चन्दा,
डारें प्रेम को फंदा।
टातइ दिन ऐसें रउती,
ज्यौं गरे माय गलगंदा।

द्वितिया का चन्द्रमा जिस प्रकार टेढ़ा होकर स्नेह से आकाश के कण्ठ में सुशोभित होता है उसी प्रकार पत्नी श्यामा उनके गले में दुपट्टा सदृश लिपटी हुई शोभा देती रहती है। कितनी सुन्दर, सार्थक और स्वाभाविक उपमा है!

ईसुरी पत्नी के प्रेम बन्धन में इतने आसक्त हो गए कि वह उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। जब यह अवस्था उनके मामा को ज्ञात हुई तब उन्होंने बहाना बनाकर ईसुरी को उनकी ससुराल ही भेज दिया जहाँ वह आनन्दमय जीवन बिताने लगे। वहीं उनकी पुत्री गुरन बाई का जन्म हुआ। वह घवार ग्राम में बिवाही गई थी। इसके अतिरिक्त ईसुरी के और कोई संतान नहीं हुई।

लेकिन इस लोक गायक कवि का जोड़ा अधिक काल तक इस जनपद में आनन्द से न रह सका। अभी ईसुरी तीस वर्ष के ही थे कि उनकी पत्नी (श्यामा) की मृत्यु हो गई, जिससे ईसुरी को मर्मान्तक पीड़ा हुई। यह समाचार जब धौर्रा को ज्ञात हुआ तब वह आए और ईसुरी को मन बहलाने के लिए अपने धौर्रा ग्राम ले गए। ईसुरी ने वहाँ के जमींदार मुसाहिब जू के यहाँ नौकरी कर ली किन्तु मन न लगने के कारण कुछ दिनों पश्चात ईसुरी वहाँ से भी चले आए और बगौरा ग्राम के जमींदार रज्जब अली के यहाँ तहसील की वसूली पर पाँच रुपया तथा असन-बसन पर नौकरी करने लगे। ईसुरी ने बड़े चाव के साथ रज्जबअली के स्वर्गवासी होने के पश्चात भी उनकी विधवा पत्नी के समय तक इस नौकरी का निर्वाह किया। अब ईसुरी भी वृद्ध हो चुके थे। इसका वर्णन उन्होंने स्वयं अपने किसी मित्र के पत्रोत्तर में इस प्रकार किया है

जौलों रये चाकरी नौकर,
आय गये सबही के।

मय इक्ठौर रज के मारे,
जा नईं सकत किसी के।
आना आठा गांव मे हिस्सा
मजा मिलक्यित जी के।
बनें बगौरा रात 'ईसुरी'
कारिंदा बीबी के ।

बगौरा ग्राम मे एक रगरेजिन नत्तकी रहती थी जो कि ईसुरी के फाग नत्य के साथ साथ गाया करती थी । इस नत्तकी से ईसुरा स्नेह भी रखते थे। यहाँ ग्रामीण लोगो म आज भी इस प्रकार की धारणा विद्यमान है । ईसुरी ने भी इसका वणन अपने फागो म किया है । इसम दानो का पारस्परिक प्रेम बधन स्पष्ट हो जाता है ।

ईसुरी के फागा स आकर्षित होकर एक बार छतरपुर नरेश न अपने दरबार म इनका सम्मान करके एक सौ रुपया नजासाई भेंट किए । किन्तु ये रुपये उन्होने बगौरा आकर बेगम के नजर कर दिए । बगम कहने लगी— ईसुरी तुम बहुत भोले भाले हो। इन रुपया पर मेरा क्या अधिकार ? हा यदि तुम चाहो तो कुछ रुपये उस रगरजिन नत्तकी को दे दो जिसने तुम्हारे फागों को गा गाकर राजदरबारो तक तुम्हारा यश फलाया है । ईसुरी ने ऐसा ही किया । इस पर नत्तकी अत्यधिक मुग्ध हो गई ।

अब हम इसुरी के कुछ भावपूण फाग उदधत करेंगे जिसस उनकी कवित्व शक्ति और प्रतिभा का अनुमान किया जा सके । माघ का मधुर मास था, बगौरा के मात अपनी अथाई पर वसत उत्सव मना रहे थे । ईसुरी के फागा की गायकी कर रहे थे धीरे पडा और साथ म नत्य कर रही थी गाँव की प्रसिद्ध नत्तकी रगरेजिन ।

नत्तकी के पैरो की घुघरुओ की छमाछम की ध्वनि और धीरे पडा की फाग की मधुर कण्ठ ध्वनि से ग्राम के भावुक जन झूमने लग और जो फाग गाया जा रहा था वह ईसुरी ने उस रगरेजिन नत्तकी पर ही मुग्ध होकर लिखा था जिसम भाव व्यजना और उपमा उपमान का समावेश कविवर बोधा के समकक्ष है । कविवर बोधा की पक्तियाँ है

स्वेत अरविन्द प पराग पान करिबे कों,
त्याग वर बाग मनों भ ग आन बठौ है।

अब आप जनकवि ईसुरी की कल्पना शक्ति की बानगी देखिए

नना भँवर भये वारी के,
रगरेजिन प्यारी के ।
दोऊ एक भेस धारी हैं

रुचिर रेख कारी के।
सालिगराम बीच कमलन के,
चितवन अनयारी के।
लेव सुगंध फूल मर्म फूलें
मानस - ससारी के।
ईसुर परे इसक के फदे,
आसिक हैं यारी के।

साहित्यिक जन विचार करेंगे कि जनकवि ईसुरी ने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा इस फाग म उत्प्रेक्षालंकार म कितना सुन्दर वर्णन किया है। जब नायिका नायक म अनबन हो जाती है, तब उनको मनाने पर लोकोक्ति सहित गर्वोक्ति का आनन्द इस फाग म परिलक्षित हुआ है

मानस होंने के ना होंने
रजउ बोल लो नौंने।
जियत जियत लों सबके नाते,
मर घरी भर रौंने।
कौंन कौंन ने प्रान छोड दयें
को के संग कौने।
'ईसुर' हांत लग ना हुडिया
आब सीत टटौंनें।

ईसुरी की एक और उक्ति को देखिए जिस स्थान पर कविवर बिहारी नायक के मन को केवल कुराह होना बतात हैं, उसी स्थान पर ईसुरी रवि और चन्द्र तक को विमोहित हुआ घोषित करते हैं।

बिहारी का दोहा है

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ, अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार॥

अब आप इसी भाव पर जन कवि ईसुरी की इस फाग को देखिए

कसे डरे केस अनगोये,
आज लाडली धोये।
बूंदा चुअत नितम्बन ऊपर,
कम से गये निचोये।
ढरके केस भुजन प आये
मानों करिया सोये।
'ईसुर देखो छब छाजे प
भान चदमा मोये।

यहाँ उपमा उपमेय का कितना सु दर भावपूर्ण वर्णन हुआ है। सुनकर ग्रामीण जन उछल पडे थे। अब धीरे पडा ने एक फाग और छेड दिया जिसमे प्रेमी की प्रतीक्षा म प्रेमिका बिलख बिलखकर सो गई थी

मारग आदी रात लौं हेरो,
याद बिदरदी तेरी।
पीक्त रई पपीरा कसी
कहा लगाई देरी।
छिन भीतर छिन बाहर ठाडी,
आख लगी ना मेरी।
'ईसुर' तलफ-तलफ क सोगइ,
तीतुर बिना बदेरी।

वसत उत्सव की सफलता का श्रेय धीरे पडा की गायकी और नर्त्तकी को मिला। बाद म माते ने सबके माथे गुलाल लगाकर कृतज्ञता प्रकट की। अब आप ईसुरी के कुछ और फागों का आनन्द लीजिए। मुग्धा नायिका के नयनो के सम्बन्ध म उन्होंने लिखा

अखिया पिस्तौल सी भरकें,
मारन चहत समर कें।
गोली लाज दरद की दारू,
गज की लेत नजर कें।
दत लगाय सैन की सूजन,
पलकी टोपी धरकें।
'ईसुर' फर होत फुर्ती मे,
कोऊ कहाँ लौं बरके।

× × ×

दोई ननन की तस्वीरें,
प्यारी फिर तरवारें।
अलेमान गुजरात सिरोही
सुलेमान झक मारें।
ऐंच बाड म्यान घूघट की
द काजर की धारें।
'ईसुर' याम बरक्तइ रइयो
अँधियारें उजियारें।

अब एक स्वप्नावस्था क फाग का अवलोकन कीजिए

सपनन दिखा परे मोय सयाँ,
सुनों परोसिन गुइयाँ।
आपुन आय उसी सें ठाड़े,
झपट परी मैं पयाँ।
उनके दृग दोऊ भर आये,
मोरी भरी इक्याँ।
'ईसुर' आँख दगा में खुल गइ,
हतो उतै कोउ नयाँ।

इसके अतिरिक्त ईसुरी के उस साहित्य का भी अवलोकन कीजिए जिसमें ईसुरी की जनप्रियता का परिचय प्राप्त होता है। ईसुरी उस काल में इतनी मान्यता प्राप्त कर चुके थे कि उनको सामाजिक, राजनैतिक और गृह कलह में उत्पन्न समस्याओं के सुलझाने के लिए भी इस जन पद में बुलाया जाता था। इसका प्रमाण उनके अनेक फागों में मिलता है। एक बार उनको कौनिया (हरपालपुर) के दीवान की रानी का बुलावा आया। ईसुरी के पहुँचने पर रानी ने बड़ी आवभगत की। लेकिन ईसुरी को रानी बड़ी रोनी रोनीं (अप्रसन्न) सी प्रतीत हुई। बात ठीक थी क्योंकि रानी के दीवान ने एक अन्य ठकुरानी से प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, और रानी ने ईसुरी को इसी समस्या के सुलझाने के लिए बुलाया था। जब भोजन का समय आया तब रानी ने अरोने (बिना नमक) भोजन की सामग्री थाल में परोसकर ईसुरी के सम्मुख प्रस्तुत कर दी। ईसुरी ने बड़े प्रेम में वह अरोना भोजन किया और साथ ही उसका कारण समझकर एक फाग की भी रचना की जिसको उन्होंने तुरन्त दीवान साहब को बड़ी निर्भयतापूर्वक सुना दिया

भौंरा जात पराये बाग,
तनक लाज नइं लाग।
घर की कली कौन कम फूली
काय न लेत पराग।
कसें जाय लगाउत हुइये,
और अंग सों अंग।
जूठी जाठी पाकर 'ईसुर'
भाव कूकर काग।

ईसुरी के फाग द्वारा उपदेश सुनकर दीवान साहब लज्जा के भार से नत मस्तक हो अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना करने लगे। ईसुरी के इस प्रकार के अनेक प्रसंग इस जन पद में प्रचलित हैं।

एक बार बगौरा और बड़ेगाँव के मध्य की पहाड़ियों पर दो भाइयों में झगड़ा हो गया। इसका निवटारा ईसुरी ने अपने फाग सुनाकर किया। ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

तन तन दोउ जनें गम खायें,
करों फसला चायें।
नाँय बगौरा को मड़ों है,
बड़े गाँव को भायें।
माझ पारिया प झगड़ा है
'तूदा' बिना बतायें।
हो गये हैं हैरान विचारे,
कानों किये बतायें।
कानो गौजू कान लग हैं
सब घाँ मत्र बतायें।
अपनी साच खायवे को वे
नाँय कौ भाँय मिलायें।
'ईसुर' की कह मान लेओ जो,
तौ तुमखा समझाय।

अब हम साहित्य मनीषियों क सम्मुख ईसुरी क कुछ वे भाव भी प्रस्तुत करेंगे जो उन्होंने अध्यात्मभाव म डुबकी लगाकर लिखे हैं

बखरी रयत है भारे की
दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी गुदयाऊ
छाइ फूस चारे की।
जा बखरी के दस दरवाजे,
बिना कुची तारे की।
'ईसुर' कयँ चाँय जब लै लौ,
हमें कौन बारे की।

इस फाग म ईसुरी न यह भाव प्रदर्शित किया है कि जिस शरीर रूपी बखरी (गृह) मे प्राणी निवास करता है वह जगतपति की दी हुई है और वह कच्ची मिट्टी के गादो (मिट्टी सानकर बनते हैं) की उठी हुई है। अतएव लोहू मास मज्जा द्वारा निर्मित है, तथा उसक ऊपर जो छप्पर पड़ा है वह घास का है अथवा रोमावली का पड़ा है एव इसक जो दस द्वार हैं वह दस इन्द्रिया से निर्मित है जो काम क्रोध, लोभ मोह क झोंकों मे खुलते और लगत है जिन दरवाजों पर कोई ताला नहीं लगा है। इस बखरी का जगतपति की आज्ञा

मिलते ही हमको खाली कर देना पड़ेगा। इस कारण इस शरीर रूपी मकान में रहने से हमको कोई लाभ नहीं है। भाव यह है कि हम इसमें आसक्त न हों।

इसके अतिरिक्त ईसुरी ने कुछ फाग 'रजउ' को सम्बोधित करके भी लिखे हैं जिनमें यह सिद्ध होता है कि वह श्री राधिकाजी के भी अनन्य उपासक थे और उन्हें सर्वव्यापिनी शक्ति के रूप में मानते थे। निम्न फाग में यही वर्णन है

देखो रजउ काउ नें नयीं
कौन वरन तन मयीं।
को तो उनकी रहस रास है
कई दय जनम गुसयीं।
पलटें भेंट हमई सों नईं भइ,
करी कृपा हम पयीं।
'ईसुर' हमने रजउ की फागें,
कर दइ मुलकन मयीं।

ईसुरी को जब यह भास हुआ कि हमारा यह शरीर अब नहीं रहेगा तब उन्होंने अपनी आराधिका रजउ (राधिका) के प्रति जो फाग गाया वह उनकी अनन्य भक्ति का ही प्रमाण है

विधना करी देह ना मेरी,
रजउ के घर की देरी।
आवत जात चरन की धूरा,
लगती तन हेर बेरी।
लागो आन कान के ऍगर,
बजन लगी बजनेरी।
उठन चहत अब हाट ईसुरी
बाट बहुत दिन हेरी।

इस विवरण के पश्चात् उन्होंने जो भाव व्यक्त किये हैं उनसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ईसुरी एक मात्र साधक थे। वे कहते हैं

मोरी सब रजौ राधावर की
भई तुम्हारी घर की।
रात मात और रन मारो
घर में मारो नर की।
बिगुरन सत लगत है ऐसो
सूरत नारी वर की।

मि्रखानगी मोरे ऊपर,
सूदी रये नजर को ।
बदी भेंट फिर हू है ईसुर,
आगे इच्छा हर की ।

ल लौ सीताराम हमारी,
चलती बेरा प्यारी ।
ऐसो निगा राखियो हम प,
होय नजर नईं दुआरी ।
मिलक कोऊ बिछुरत नयां,
जितने हैं जिउधारी ।
ईसुर हस उडन की बेरा,
झुक आई इँधियारी ।

इसके उपरा त ईसुरी ने अपने मित्रा से कुछ निवेदन किया है जिससे उनकी उपास्य देवी श्री राधिका और बु देलभूमि के बगौरा ग्राम जहा उनको जीवन म सुख शाति का प्राप्ति हुई था, के प्रति उनकी अन य श्रद्धा के भाव झलकते हैं। वह कहते हैं

यारो इतनों जस कर लीजो
चिता अत ना दीजो।
चल्तन सिर को गिर पसीना,
भसम को अतस भींजो ।
निगतन खुद चेटका लालन,
उन लालन मन दीजो।
वे सुस्तों ना होंयें रात दिन
जिनके ऊपर सीजो ।
गगा जू लौं मरें ईसुरी
दाग बगौरा दीजो ।

ईसुरी का अ त समय म उनकी पुत्री गुरनबाई अपने गृह धवार ग्राम ले आई थी और वहीं पर ईसुरी न अपना शरीर त्यागने स पूव जो भाव व्यक्त किये हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि उनकी चेतना शक्ति अत तक प्रबल रही। यह एक सिद्ध कवि क अनुरूप ही है। उ होने लिखा है

मोरी राम राम सब खयाँ
राख लाज गुसयाँ ।

गाता है, तब ग्रामीण जनों की आत्म-तल्लीनता और बढ़ जाती है। इस अवसर पर गायक किसी युद्धस्थल का वर्णन आने पर भाव मुद्रा से अभिभूत हो जब म्यान से तलवार खींच लेता है तब दृश्य विशेष दर्शनीय होता है। श्रोता वीरता के भावावेश में उछल पड़ते हैं। निश्चय ही आल्हा गीतों की भांति क्षत्रियों को रण में रत रहने का सन्देश देता है और युद्ध में वीर-गति प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। देखिये, ये पंक्तियाँ यही भाव प्रदर्शित करती हैं

बारह बरस लौं कूकर जिये और तेरह लौं जिये सियार।
बीस बरस लौं छत्री जिये, आगे, आगे जीय को धिरकार।

अर्थात्—बारह वर्ष का जीवन श्वान का होता है और तेरह वर्ष का शृगाल का, तथा इसी दृष्टि से वीर पुरुष की आयु केवल बीस वर्ष की निर्धारित की है, क्योंकि क्षत्री में बीस वर्ष की अवस्था में पूर्ण वीरता के भावों का समावेश उसके अंग प्रत्यंगों के मध्य हो जाता है। इसी अवस्था में वह वीरभावोत्पादक भावों के पराक्रम से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। आगे वीर छन्द का गायक कहता है

खटिया पर के जो मर जहैं, नाव (नाम) डूब पुरखन को जाय।

जो क्षत्री युद्ध में वीर गति को प्राप्त न होकर विलासितापूर्ण जीवन बिताता हुआ, घर में खटिया (पलंग) पर ही पड़ा पड़ा मर जाता है वह अपने पुरखों के यश को डुबा देता है। इन दो पंक्तियों का अवलोकन और कीजिये जो प्रकृति साहस और वीरता के भाव से समवेत हैं

बादर आवें नदी बेतवा, डूबत आवे कछार।
परत आव धांधू चौंडिया मों में दाब नगन तरवार।

## कारसदेव की गोटें

श्री देवी भागवत में एक प्रसंग आया है कि हैहय वंश में अजयपाल नाम के एक राजा हुए, जिन्होंने जन-कल्याण की दृष्टि से भगवान शिव की साधना की और स्वरचित मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त की।

अजयपाल के यह मन्त्र अधिकतर आग झाड़ने, सर्प विष उतारने, जानवरों का 'खुमीटा' रोग झाड़ने तथा ढाड़ कीलन आदि के कामों में ग्रामों में प्रचलित हैं। आज आधुनिक युग में भी ग्रामीण जनों को इन पर विश्वास है।

राजा अजयपाल का राज्य उस काल म नमदा क तट पर बसी माहिष्मती नगरी से वेतवा के तट पर बसे हुए ओरछा नगर तक फला हुआ था। इसी कारण बुन्देलखण्ड म उनके मन्त्र अत्यधिक प्रचलित हैं। जो व्यक्ति इन मन्त्रो को झाडने फूकने के प्रयोग म लाते है, उनको नावते और स्यान कहा जाता है।

बुन्देलखण्ड म राजा अजयपाल क भक्त कारसदव और हीरामन हुए हैं जो शिव की साधना म सफल होकर जनता का कल्याण करते रहे तथा मृत्यु उपरान्त भी ये बुन्देलखण्ड के ग्रामो म हरदौल की भाति पूजे जाते रहे। ग्रामा मे इनक भी चबूतरे विद्यमान हैं जहा दिवाली होली दशहरा क अतिरिक्त शुक्ल पक्ष की चौथ का वठकें होती हैं जिनम कारसदेव, हीरामन की गोटें (यश गीत) गाई जाती है। गीता के साथ डमरु का भांति का एक वाद्य जिसे ढाक कहते हैं, बजाया जाता है।

चबूतरे पर सायकाल प्राथिया क एकत्र होने पर घुल्ला (जिसके सिर पर कारसदेव का भाव आता है) होम करता है। उपरान्त ढाक के साथ गोटा का गायन प्रारम्भ होता है। गायन जब अपनी पूण गति म आता है तब हर्षित होकर दवता घुल्ला क ऊपर भरकर खेलन लगना है।

दवता को आया दख विनती करने वाले चबूतरे पर आकर अपनी अपनी प्राथना करन लगते हैं। देवना उन प्राथियो की विनती सुनकर भभूति दता हुआ दुख निवारण के लिए झाडता फूकता है। अन्त म घुल्ला विनती करने वालो को सत्यनारायण की कथा या कन्याओ को भोजन आदि करान का निर्देश करता है।

कारसदेव हीरामन की गोटा क अन्तगत उनका वीरता और यश का वणन आया है जिसकी भाव व्यजना और कथानक इस प्रकार है

कारसदेव का जन्म चाच ग्राम म एक गूजर के गृह म हुआ था। इनकी माता का नाम सरनी था। सरनी के कोई सन्तान नही थी, इस कारण वह शिवजी की साधना म प्रदोष का व्रत किया करती थी।

एक बार प्रदोष क दिन जब वह सरोवर म स्नान कर रही थी तब उसको सरोवर के विकसित कमल पुष्पा पर प्रकाश दिखाई दिया। आकषणवश वह उन पुष्पो के समीप गई। वहाँ उसको एक अलौकिक प्रभावान शिशु क दशन हुए। उसके कोई सन्तान नही थी इस कारण उसके हृदय मे ममता जागृत हुई और उसने उस शिशु को गोद म भर लिया। पश्चात उस प्रभावान शिशु को लेकर वह अपन गृह आ गई।

वालक वडा तेजवान था। उसका अवलोकन कर सूय-चन्द्र की प्रभा मन्द सी लगती थी। सरनी का गृह उस दिव्य वालक के कारण आनन्द से भर गया। अतएव उसके बाझ होने का कलक मिट गया। सरनी अब उस बालक

कारस सुन मुमना की बात,
मन रओ मुसकाय।
बरल दो दो दाव रे,
बोलो साँड़ी उठाय।
अपनो बदलो लेउ चुकाय।

मुमना धरन गिरो ऐस
जस गिर टूट क डार।
बारा बरस को कारस ग्वल,
लैंक नगन तरवार।
झाड़ क मिट गये दुक्ख अपार।

इन गोटों क अतिरिक्त गोंडा म अय गाटें भी प्रचलित हैं जो आज भी इस जन पद म गाई जाती हैं। किन्तु उन सबम कारसदेव की ही यश कीर्ति का वर्णन किया गया है। कुछ और गोटों का भी अध्ययन प्रस्तुत है

इस गोट म कारसदेव और कृष्ण का तुलनात्मक भाव स वर्णन किया गया है

क भये कनया, क कारस भये
जिनन गइयन की राखी लाज।
धन धन झाँझ की गर्मा
धन - धन कारस महाराज।
हमारो सबइ हुमाओ काज।

चाँवल सी बयें दूद की नदियाँ
बाज दुहिनिया कछार।
दूदन पूतन गोरी धन, फलब,
झार पहारन कर सिंगार।
कारस तेरी होव जय्जै कार।

कारसदेव के लोक साहित्य म बुन्देली शब्दों की प्रचुरता भाव व्यंजनापूर्ण रूप से विद्यमान है जो अय प्रान्तीय प्रभावों से अछूती है और ग्रामीण जनों क हृदय म कारसदेव क प्रति जो भावात्मक निष्ठा छिपी है उसी की भावुकता इस लोक साहित्य म झलकती है।

यह गोट-साहित्य कारसदेव के दहरे (चबूतरे) के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर नहीं गाया जाता और न ही यह साहित्य प्रकाशित हुआ है। इस गोट साहित्य का संग्रह करने म हम 'बुन्देली वार्ता तथा 'ग ने गडरिया से सहायता प्राप्त हुई है।

# माता के बुन्देलखण्डी गीत

इस अध्याय में हम बुन्देलखण्ड में प्रचलित माता के कुछ गीतों का इतिहास बतायेंगे। प्रथम गीत, जिसमें प्रकृति का वर्णन है चंदेल राजाओं के युग का प्रतीत होता है। इसमें जिस जार पहाड का उल्लेख आया है, वह यासी में चंदेल द्वारा बसाये गए लट्र ग्राम के समीप ही है। इसी के निकट जगदम्बा का प्राचीन मन्दिर है जो उदिया और तेलिया पत्थर का बना है। मन्दिर के प्रांगण में एक पत्थर का चीरा गढा है जो चंदेलों का प्रमाण देता है, क्योंकि चंदेल राजाओं ने जहाँ जो स्थान बनवाये हैं वहाँ पत्थर का चीरा या दीवट बनवाया है। गीत में करौंदी वन का भी वर्णन है। यह करौंदी वन भी यासी से छ मील पश्चिम मातार भगी के तीर से प्रारम्भ होता है और ओरछा तक इसकी सीमा है।

द्वितीय गीत में जो वर्णन है, उसकी प्राचीनता पौराणिक कथा द्वारा सिद्ध होती है कि जब रावण युद्ध के पश्चात राम-लक्ष्मण को अपनी वीरता पर अभिमान हुआ, तब जानकी ने विनोद में कहा कि महाराज आपने रावण नहीं अभी रवणिया मारी हैं। वीर रावण तो पाताल में निवास करता है।

राम लक्ष्मण ने जानकी के व्यंग्य वचन सुन पाताल के रावण पर धावा बोल दिया। किन्तु राम-लक्ष्मण की उस युद्ध में यह दशा हुई कि जब रावण रण में हुंकार करे तब राम लक्ष्मण उसकी हुंकार के प्रकोप से अपनी राजधानी अयोध्या में आ गिरें। ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ। अन्त में राम ने महाशक्ति जानकी से उसके वध के लिए निवेदन किया, तब जानकी ने महाशक्ति काली का रूप धारण कर रण में जाकर उसका वध किया। इस लोक गीत का कथानक ऐसा ही ज्ञात होता है। (ये दोनों गीत हमको धन्नूराम तुल्सीराम काछी द्वारा प्राप्त हुए हैं। ये दोनों व्यक्ति मातन के गीतों के प्रसिद्ध गायक हैं।)

प्रथम गीत का अवलोकन कीजिए—

फूलों जार पहार करौंदो वन फूलो हो माय।
कौना बरन जाकी बोंडी जगतारन, कौना बरन फुल होय हो माय।
गेंउआ बरन जाकी बोंडी जगतारन, सुरंग बरन फुल होय हो माय।
पलो फूल जब टोरों जगतारन बेला भरो रंग होय हो माय।
दूजो फूल जब टोरों जगतारन, नाद भरो रंग होय हो माय।
कौना को रंग दउ सुरंग चुनरिया कौना की पचरंग पाग हो माय।
ज्वाला को रंग दउ सुरंग चुनरिया लंगुरा की पचरंग पाग हो माय।
कस के सूके सुरंग चुनरिया कस के पचरंग पाग हो पाग हो माय।

धुल्लन धूप सुरंग चुनरिया ढाबे पचरंग पाग हो माँय।
कौनें उड़ा दऊ सुरंग चुनरिया कौनें पचरंग पाग हो माँय।
ज्वाला उड़ा दऊ सुरंग चुनरिया लगुरा बधा दउ पाग हो माँय।
माइ के भुवन कौं दे परकम्मा नक परौं दोउ पाँव हो माँय।

दूसरा गीत

लिख लिख पतियाँ भेजीं राम ने तुम दुर्गा चलीं आओ हो माँय।
पातीं बाँच मनें मुसक्यानी करतीं मनें विचार हो माँय।
कहा साँकरे परे राम प पतियाँ भेज बुलाई हो माँय।
लगुरा नें कई दानी वरदानों, देवी देव मिटाय हो माँय।
तुम जो जाव मेरे भया लगुरवा, बन सौं सिंहा ल्याव हो माँय।
तीनउ लोक लगुर फिर आये, सिंह वरन नइ पाये हो माँय।
तो तुम वठौ मोरे भया लगुरवा मे सिंहा कौं ल्याउ हो माँय।
इक बन चालों दुज बन चालों तिज बन पौंचो जाय हो माँय।
बिंद - पार प डौरू बजाई सिंह उठे भाराय हो माँय।
एक सिंह कौं गइ जगतारन बो सिंहाचल धाय हो माँय।
कौना सिंह प पाखर डारौं कौना प असवार हो माँय।
कहाँ धरे तेरे जीन पलचा कहाँ धरे हथयार हो माँय।
भुवन धरे मेरे जीन पलचा पुल्लन टगे हथयार हो माँय।
दुर्गा के सज तन सब दल सज गये, सजे छतीसउ देव हो माँय।
डूडा नादिया सजे महादेव, गरुड़ सजे भगवान हो माँय।
लीली सी घोड़ी लखन की सज गइ रथ सज गये राजाराम हो माँय।
चौंसठ जोगिन के दल साजे, ल - ल खप्पर हाँथ हो माँय।
अब दानें ने दई हुकारी भगदर परी दिखाय हो माँय।
देवी के भगत प्रान ल भागे, उर छत्तीसउ देव हो माय।
डूडा नादिया प भगे महादेव, गरुड़ चडे भगवान हो माँय।
लीली सी घोड़ी लखन चढ़ भागे, रथ चड भागे राम हो माँय।
चौंसठ जोगिन के दल भागे ल - ल खप्पर हाथ हो माँय।
कौना की चल रह तीर कमनियाँ कौना के तरकस बान हो माँय।
लगुरा की चल रह तीर कमनियाँ ज्वाला के तरकस बान हो माँय।
दानों मार गरद कर डारो ल - ल राम के नाँव हो माँय।
दास सुहार भगत चितामन, रख बाने की लाज हो माँय।

# बुन्देलखण्डी लोक-नृत्य

लोक-नृत्य ग्रामीण जीवन की विकसित आनन्दानुभूति का वह अनुपमेय व आद्य अंग है जिसमें लोक-आनन्द की रसानुभूति का प्रस्फुटन होता है।

बुन्देलखण्ड में लोक-नृत्य विन्ध्य श्रेणियों के निवासी सौंरिया (आदिवासी बेतवा तीर से नर्मदा तट तक जो फैले हैं) धीवर, धोबी, बेड़िया, कजरा और ग्वाला आदि श्रावण, फाल्गुन, दीपावली तथा विवाह एवं जन्म महोत्सवों में अपना त्यौहार मनाते हुए आनन्द विभोर होकर करते हैं। समय-समय पर होने वाले इन लोक नृत्यों के सम्बन्ध में बुन्देलखण्डी लोक नृत्य विशेषज्ञ श्री मोहनलाल श्रीवास्तव का मत इस प्रकार है

'लोक नृत्य लोक कला का एक आदर्श अंग है। शब्द के माध्यम से जिस सत्य की अभिव्यक्ति होती है वह साहित्य है और गति के माध्यम से जिस प्रकाश का प्रस्फुटन होता है वह नृत्य है। साहित्य साधना-साध्य है, वाणी का तप है। नृत्य स्वयंभू है इसलिए अधिक स्वाभाविक है। साहित्य में जीवन सत्य की अनबोली छाया स्वर पाती है लेकिन नृत्य में जीवन शक्ति का आनन्द स्मर आन्दोलन चित्रित होता है। मेरा मतलब यहाँ साहित्य और नृत्य का तुलनात्मक विवेचन नहीं है वरन मैं कहना यह चाहता हूँ कि नृत्य शिशु की शैशव क्रीडा की तरह स्वाभाविक है। उसमें तारुण्य है यौवन है, उभार है गति है और सबसे परे सृजन की तल्लीनता है। यदि साहित्य ऋषि की तरह वृद्ध है तो नृत्य ब्रह्मचारी की तरह तरुण-वीर्यवान है।

'और शास्त्रीय नृत्य में भी सबसे अधिक स्वाभाविक है लोक नृत्य। शास्त्रीय नृत्य वैयक्तिक है नियमों से बँधा, सँधकर रूढ़ हो गया है लेकिन लोक-नृत्य सामाजिक चेतना का वह बहाव है जो शिकार युग से होता हुआ हजारों सभ्यताओं, संस्कृतियों के उत्थान पतन की शिलाओं से टकराता हुआ एक से दो होता हुआ, कई धाराओं में बँटता हुआ एक अनजान प्रदेश के जीवन-समुद्र की ओर बहा जा रहा है, और यही बहाव, यही ढलाव उसकी शुद्धता है। शास्त्रीय नृत्य वैयक्तिक है। वैयक्तिकता एक गाँठ है कुण्ठा है, और जो अन्य से बेमेल है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्ति भी बेमेल है। उसका आकर्षण चमत्कृति में है। इसीलिए वैयक्तिक नृत्यों में आंगिक चेष्टाओं का उन्मद प्रदर्शन तो होता है और अवश्य ही वह साधारणीकृत होकर हमारी अपनी जीवन शक्ति का अनुमान बनकर हम अपनी तल्लीनावस्था में भ्रम से भर दे सकता है लेकिन उस अवस्था के तिरोहित होते ही हममें एक पराजित भाव का संचार होता है, और नृत्य के दर्शन के उपरान्त हम अपने को प्रदर्शित सत्य (शक्ति) के सम्मुख

बलहीन असबल और असत्य अनुभव करते हैं और यही कुण्ठा है। व्यक्तिव चेतना का आदर्श सभी क्षेत्रों में (साहित्य, नृत्य संगीत आदि) कुण्ठाजन्य और कुण्ठा जनक है। वह अभावात्मक अधिक है भावात्मक कम क्योंकि हम उससे अपने अभावों का ही बोध अधिक होता है। लेकिन लोक चेतना से उद्भूत कलाओं का सत्य ऋत है वह अपने में हम समेट लेती है। उसमें हम अपने भराव का बोध होता है अभाव का नहीं। इसीलिए उसमें सरलता और ऋजुता होती है। वह व्यष्टि सत्य नहीं समष्टि सत्य है इसलिए उसमें हम अधिक बल मिलता है। इसलिए लोक नृत्य व्यष्टि शक्ति का नहीं समष्टि शक्ति का प्रकाश है। पराजय भाव और हीन भाव का जनक वह नहीं कहा जा सकता है। विलगाव वहां नहीं है। उसमें व्यक्ति प्रतीकों की अनबूझ व्यंजना नहीं है उसमें आंगिक चेहरा का वचित्र्य वर्जित है क्योंकि वह तो आंगिक चेष्टा में पर जीवन चेष्टा का समाजीकृत विधान है। अवश्य ही प्रतीक वहां भी है पर वे प्रतीक प्रश्नचिह्न की तरह रोचक नहीं वरन वे तो उत्तर की तरह गति वर्धक हैं।

आदिवासियों के नृत्य भी उपर्युक्त विवेचना के आलोक में ही देखे जायँ। सभी जगह के लोक नृत्य अपनी विशेषता रखते हैं क्योंकि लोक कलाओं में तत्कालीन संस्कृतियों की रूढ़ियों को और देशगत मान्यताओं को अपने में गला लेने की, और फिर उन्हें नये प्रतीकों में उभार देने की अद्भुत क्षमता रहती है। उदाहरण के लिए मैं बहुत दूर न जाकर बुंदेलखण्ड के दीवाली नृत्य को सामने रखता हूँ। यह ग्वालों का नृत्य है तथा और प्रान्तों में भी होता है और उन जगहों में यह व्यक्ति-नृत्य है समूह-नृत्य नहीं। लेकिन बुंदेलखण्ड की वीर भूमि में यह समूह-नृत्य तो हो ही गया है साथ ही वहां की वीरता को अपने में समेटकर बहुत ही वीरत्व व्यंजक और पौरुष प्रधान नृत्य हो गया है। अन्य स्थानों पर यह नृत्य शृंगार-नृत्य है। बुंदेलखण्ड में यह लाठी के खेलों का एक उत्कट नट-नाट्य हो गया है।

आदिवासियों के लोक-नृत्यों में वन-संस्कृति की छाया गति की परिणति पा सकी है और हिन्दू कला के कुछ सूत्र भी वहाँ खो गए हैं। हाँ, उस झीने पट का रंग उनका है। उनकी नृत्य-गति की रेखाओं का विलगाव हम नहीं कर सकते। उनके सब नृत्य समूह-नृत्य हैं। आदिवासियों का जीवन संगठित वन-जीवन है इसलिए कठिन है। वे प्रकृति से अब भी लड़ते हैं इसलिए उन्हें समूह का ही बल है। वही बल उनके नृत्यों को समूह में बाँधता है। उनके नृत्यों पर दूसरी गहरी छाया में कृष्ण-लीला के रासों का अनुमान करता हूँ। मेरे ऐसे अनुमान के तीन आधार हैं। एक तो उनके करमा-नृत्य में स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर नाचते हैं, दूसरे करमा-नृत्य कदम-वृक्ष (करमाहर) की एक

शाखा को आरोपित करके उसके चारों ओर नाचा जाता है। कदम वृक्ष कृष्ण की याद ताजा करता है। तीसरा आधार यह है कि आदिवासियों के गीतों में कृष्ण का प्रभाव स्पष्ट ही अन्य लोक गीतों की अपेक्षा अधिक है। वहाँ हनुमान मुरली बजाते हैं और वृन्दावन का उल्लेख बार बार हुआ है। वंशी का मोह उनके सब गीतों में है।

'विन्ध्य प्रदेश के शहडोल सीधी के जिले में गोंड बैगा लोगों के नृत्यों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) पहला पुरुष-नृत्य (२) स्त्री नृत्य (३) अटारी नृत्य। स्त्री-नृत्य में सुआ नृत्य और सम्मिलित नृत्यों में करमा नृत्य है और जिसमें स्त्री पुरुष दोनों भाग लेते हैं।

**करमा नृत्य**—इस नृत्य को ई० टी० डाल्टन ने विश्वजनीन कहा है, क्योंकि यह बहुत सी वन जातियों का प्रिय नृत्य है। वस्तुतः यह नृत्य वन संस्कृति का प्रतिनिधि नृत्य है। आदिवासियों के जीवन का कठिन संघर्ष जैसे पिघलकर गति की रेखाओं में ढल गया हो और अवश्य ही यह श्रम का नृत्य है।

कृष्ण भक्त वैष्णवों का रास नृत्य जैसे सृजन का नृत्य है उसी तरह मैं इसे भी आदिवासियों की रास लीला कहता हूँ। श्रम की तल्लीनता में यह भी सृजन का नृत्य है। मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ कि इसमें रासों का प्रभाव कितना है। भले ही आदिवासी महाभारत के कृष्ण से अपरिचित हों लेकिन लोक जीवन के नायक कृष्ण से वे अपरिचित नहीं है। कृष्ण लोक-नृत्य के देवता हैं और उसी का रूपान्तर आदिवासियों के घनश्याम देव है, जिनके आगे यह नृत्य होता है।

'*जीवन के हर कोने में इस नृत्य की पैठ है, यहाँ तक किसी की मृत्यु के* बाद भी आदिवासी करमा नाचते हैं। अवश्य ही यह नृत्य महा-सृजन और जीवन पर अटूट विश्वास का नृत्य है।

'यदि हम इस नृत्य के प्रतीकों का बिलगाव करें तो इस नृत्य का सहायक वाद्य मादर घन गर्जन का प्रतीक है और पुरुषों की झूम वायु का लहराकर बहना है तथा स्त्रियों की लचक हरी-हरी वन शाखाओं का झुकना है। इस प्रकार सम्पूर्ण नृत्य घन वर्षण का प्रतीक है। आदिमानव वर्षा काल से अवश्य प्रभावित हुआ होगा, क्योंकि यह ऋतु संघर्ष और सृजन प्रधान है, कर्म प्रधान है और कला यदि अनुकरणजन्य है तो इस प्रभाविनी ऋतु का अनुकरण लोक चेतना ने अवश्य किया होगा, और कला यदि अक्षुण्ण है तो वह अनुकरण अवश्य आदिवासियों के करमा नृत्य में आज भी जीवित है।

"गति योजना के प्रकारों के आधार पर इसके कई रूप हैं

(१) लहकी-करमा—लहकी शब्द का अर्थ होता है कंपन। इसमें औरत और मर्द आमने-सामने नाचते हैं। वाद्य-वादन पुरुष ही करते हैं।

औरतों की कतार हाथ पकड़े हुए झुककर बड़ी सुन्दरता और लयात्मकता से साथ पद-संचालन करती हुई आगे बढ़ती है। पुरुष एक साथ ही उछलते हैं फिर वे सीधी होकर पीछे खिसकती हैं, और पुरुष झुककर उनके सामने उतना ही आगे बढ़ता है। इस प्रकार यह क्रम बहुत त्वरित गति से आगे बढ़ता है। सारा वातावरण गीत की त्वरा, गति की झूम और वाद्य की झंकार से एकाकार होकर जीवन-स्पन्दन का सृजन करता है। इस नृत्य की विशेषता इसकी त्वरा में है।

(२) खड़ी करमा—इसका क्रम लहकी की तरह ही होता है। परन्तु इसमें झूम की उस त्वरा का अभाव रहता है जो लहकी का आकर्षण-केन्द्र है। गीत भी इसका मन्थर होता है। इसमें पुरुष खिसकती स्त्रियों का पीछा नहीं करते वरन् उनके पिछल जाने पर यथावत रहते हैं।

(३) झूमर या बगानी झूमर—यह मण्डलाकार नृत्य है। इसमें लहकी की झूम और त्वरा के साथ गति का मन्थर संगीत भी होता है। इसमें पद-संचालन या अंग-संचालन स्पष्ट और सफाई से होता है।

(४) ठलहा करमा या झमनिया—यह अर्द्ध मण्डलाकार नृत्य है। इसमें औरतें पुरुषों को घेरकर नाचती हैं। पहले स्त्रियों की कतार सीधी होती है फिर वह वाद्य ध्वनि की गति के साथ मण्डलाकार होती हुई पुरुषों को आधा घेरती है और फिर घेरा अपने पूर्व आकार को पहुँच जाता है। इसमें स्त्रियों की गति प्रधान है।

करमा की सुन्दरता पर उठाकर कदम रखने की सामूहिक संगीत नियोजना में है। यह पद-परिवर्तन का नृत्य है। आंगिक चेष्टाओं का इसमें प्रदर्शन नहीं होता लेकिन पुरुषों में अवश्य ही आंगिक चेष्टा होती है। पुरुष गले में मादर बाँधकर उमगते, अँगड़ाते मेघों की तरह झुककर और फिर उठकर नाचते हैं।

'करमा गीत' के बोल या राग के अलाप के साथ ही यह नृत्य होता है। इस नृत्य के भेद इसके आलापों में निहित रहते हैं। इस गीत के बोल हो हो रे ओ हो हाय रेगा आय हाय हाय हो रे' आदि हैं। इसमें कुछ निरर्थक शब्द भी पद पूरक का काम करते हैं तो उनके अपने प्रतीक हैं

'सुआ-नृत्य, यह औरतों का नाच है। तोता पक्षी का भारतीय लोक जीवन में विशिष्ट स्थान है। लोक-गीतों में पशु पक्षी, वृक्ष अपना प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। तोता बुद्धि विद्या-सम्पन्न पक्षी है। इसलिए वह कुछ शब्द रट लेता है। पुरुष जब जीवन से जूझने के लिए जंगल पहाड़ और नदी कछारों में चले जाते हैं तब नारी घर में अकेली रह जाती है और उसी एकान्त पीड़ा, अनुभूति और वेदना का साक्षी एक पिंजरे का तोता पक्षी रह जाता है।

भारतीय नारी का जीवन भी पिजरे के तोते से कम दयनीय नही है और इसलिए यदि सुआ और नारी का प्रगाढ सम्बन्ध यहा के लोक जीवन का एक अग बन सका, तो इसम आश्चय ही क्या! आदिवासी वन कन्याओं ने यदि अपने जीवनानन्द की अभिव्यक्ति को सुआ नत्य नाम दिया तो कुतूहल क्या!

'यह नत्य छत्तीसगढ के आदिवासी भी नाचते हैं और दिवाली के बाद होने वाली अन्नपूर्णा एकादशी से नाचा जाता है। उस दिन य एक त्योहार मनाते हैं, जिसमे स्त्रिया दिन म व्रत रखती हैं शाम को स्त्रियाँ मिट्टी का एक तोता बनाती हैं उसे थाली म रखकर घर घर म जाकर नाचती हैं उस दिन ये स्त्रियाँ पीला या हरा वस्त्र पहनती हैं कान म धान की बालिया खोसती हैं और तब सुआ गीत गाकर नाचती हैं।

सुआ की थाली बीच म रख दी जाती है, तब स्त्रियाँ वत्ताकार होकर लय से क्रमश आगे-पीछे पद चालन करती हुई और साथ ही मडल म घूमती हुई नाचती हैं। हर स्त्री एक बार झुककर स्वय ताली बजाती है। दूसरी अपनी आस पास की स्त्रिया की हथेलिया मे ताली बजाती है। इस प्रकार ताली का लयात्मक सगीत इस नत्य का प्राण है।

यह नत्य वस्तुत कृषि युग की सस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। धान खेतो पर सुआ की टोली उडान की ताली का अनुकरण जसे लोक मानस में उतरकर कलात्मक अभिव्यक्ति पा गया है।

शैला नत्य—यह पुरुष नत्य है। पौरुष की प्रतीक लाठी यहाँ अपना अन गढपन खोकर छोटी हो गई है और नृत्य के सहायक सगीत का सृजन करती है। यह शरद की चादनी का विह्वल नत्य है। पुरुष अपनी पगडी मे मोर पख खोसकर सज धजकर हाथ हाथ भर की दा गढी सवारी डडियाँ लेकर नाचत हैं। ढोल या मादर उसम भी बजता है। इसके बहुत से प्रकार होते हैं।

'यह नत्य शिकार युग की सभ्यता का सँवरा हुआ अवशेष है। हक्वारा के समूह हाका खेलत समय जिस तरह लाठी बजात है ढोल बजात हैं और ध्वनि पदा करते हैं उसी की कलात्मक पुनरावृत्ति शैला नत्य है।

इसम पुरुषो का मडल दो-तीन कदम आगे रखता है फिर दो-तीन कदम पीछे रखता है और पहले अपने दोना हाथ की डडिया एक बार सामने बजात हैं। फिर दूसरी बार हर व्यक्ति अगल बगल के व्यक्ति की डडिया स अपनी डडी बजाता है। सब पुरुष अपन मडल म भी घूमत हैं और अपनी धुरी पर भी घूम जात हैं। कभी एक पडी व बल बठ भी जात हैं और इस प्रकार जीवन की सम्पूण विषमताओ की पृष्ठभूमि का अनुमान करात हुए त्वरित गति से नाचत हैं और विशिष्ट तरह की समूह ध्वनि पदा करते हुए गीत भी गाते हैं। इन गीतो का आलाप लयात्मक और लम्बा न होकर लघु सक्षिप्त और हाँफने जसा होता

है। इसका आलाप है—तरहर, नाना ना ना नरे नानार नाना, तरहर नारे नाना आदि

इस नृत्य के कई प्रकार है

(१) भरौली शला—यह शादी के अवसर पर नाचा जाता है और मडलाकार नाचा जाता है। घेरा फल्ता सिकुड़ता है क्योंकि सब क्रम से कूदकर पीछे जाते है और हाथ हवा म फेंकते हुए फिर आग जात हैं तथा दो शला बजाते है।

(२) हरौनी शला—जब दो गाव के लोग एक दूसरे को हराने की प्रवत्ति स यह नाच नाचते है ता इसे हरौनी शाला कहते है।

(३) लहकी शला—यह मडलाकार नाचा जाता है और यह अधिक गीत प्रधान हाना है।

(४) झुलनिया लहकी शला—यह झुककर झूमकर और झूलकर अधिक तन्मयता से नाचा जाता है इसलिए इसे झुलनिया कहत है। गीत इसके साथ भी चलता है।

(५) बठक शला—जब नाचते नाचत पुरुष मडल एक एडी के बल बठ जाय और दूसरा पर आगे फेंक ले और दूसरे क्षण पहला पर आग फेंक ल और फिर दूसर पर के बल बठ जाय और शला बजाने का क्रम भी अटूट रहे तो यह बठक शला कहलाता है।

(६) शिकार शला—इसम पुरुष सीधी कतार मे रहत है और दूर दूर पर सधे खडे रहते है फिर शिकार को घेरते हुए से मडल बनाते हैं। यह एक अप्रचलित नत्य है जो बहुत कम नाचा जाता है।

अहारी नत्य—वस्तुत हम इस नत्य न कहकर नटा का खेल कहना उप युक्त समझते हैं क्योंकि इसम चमत्कृति नाम की चीज चाहे जो हो पर कला का उजाम इसम नही है। एक घेरे के एक एक व्यक्ति के कधा पर एक एक पुरुष खडे रहते हैं और एक दूसरे का हाथ पकडे रहते हैं। नीच के व्यक्ति कूल्हे मटका-मटकाकर नाचते हैं। इसमे पुरुष के पौरुष की अगडाई का प्रदशन तो होता है लेकिन यह मनोरजन प्रधान नत्य ही अधिक है। वैरियार एलविन ने इसकी व्याख्या के सम्बन्ध मे लिखा है कि शायद यह घर छत को घोषित करता है जहाँ से कोई तरुणी झांकती हो या घास की फुनगी काटने को घोषित करता है।

'लेकिन मैं इन व्याख्याओं से अतिरिक्त एक और भी व्याख्या करता हूँ। यह कृष्ण की उस लीला का अनुकरण है जिसम उनके सखा दही चुराने के लिए एक एक के कधो पर चढते थे। जो भी हो यह नृत्य आकर्षक होता है और पुरुष की नट प्रकृति का प्रदर्शन है।

"विन्ध्य प्रदेश के आदिवासियों ने अपनी इन विभिन्न नृत्य शैलियों में प्रगतिशील मानव संस्कृति की मूल आनन्द-वृत्तियों को सुरक्षित रखा है।"

(विन्ध्य भूमि, पृष्ठ ३७)

ये लोक-नृत्य आज भी कला प्रेमियों को बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थानों जैसे—ओरछा उनाव खजुराहो और बलवा घसान चम्बल तथा नर्मदा के निकट भरने वाले मेलों के अवसर पर करने को मिलेंगे।

## बुन्देलखण्डी चित्रकला

चित्र कला लोक-कला का एक अनुपम एवं आदर्श अंग है। चित्र के माध्यम से विश्व को मानव-सत्य की अनुभूति करायी जाती है। मानव जीवन में ईर्ष्या ग्लानि, वीरता और प्रेम आदि भावों का प्रस्फुटन चित्रकार की तूलिका द्वारा प्रभावोत्पादक शैली में दर्शित होता है। भारत में चित्रकला का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके अन्तर में क्षेत्रीय धरातल की बाह्य झांकी झांकती रहती है जिसका उदय समय समय पर होता है। बुन्देली चित्रकला में भी यहां की धरती का बहुविध प्रभाव अंकित हुआ है।

बुन्देली चित्रकला के सम्बन्ध में चित्रकला विशेषज्ञ श्री अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' का अभिमत है

'बुन्देली चित्रकला की परम्परा का स्रोत भित्ति चित्रों में है जैसा कि उपस्थित लोक-गीत से प्रकट होता है

आम अमलिया की नहीं नहीं पतियाँ,<br>
निमियाँ की शीतल छांय।<br>
तेहि तर बठी ननद - भौजाई,<br>
चले लागी रावन की बात।<br>
तुमरे देश भौजी रावन बनत है,<br>
रावन उरेह दिखाव।<br>
तो मैं इतनों उरे हों वारी ननदी,<br>
जो घर करो न रुवार।<br>
माँगों मैं ननदी सुरहो को गुबरा,<br>
भितिया लिपाव बोइ हाँत।

मुगल काल का प्रारम्भ होने ही अजन्ता के समय से चित्रकला की जो भारतीय धारा बहती आ रही थी, वह प्राय लोप-सी हो गई। अजन्ता की चित्रकला पर मूर्तिकला का भी प्रभाव था। कलाओं के मूल सिद्धान्त प्राय एक ही थे। मुगल काल म भारतीय चित्रकला ने मूर्तिकला का साथ छोड दिया। उसके सामने आदर्श जैसी चीज भी कोई न रह गई। धार्मिक भावना भी, जिससे उसे प्रेरणा मिलती थी, विदा हो गई। आध्यात्मिकता से भी उसका सम्बन्ध टूट गया। चित्रकार के सामने रूप-व्यजना ही प्रमुख हो गई। पहले जहा बुद्ध भगवान जैसे दैवी पुरुषो के रूप चित्रित किए जाते थे वहा पतित मुगल बादशाहो के रूप चित्रित किए जाने लगे। फल यह हुआ कि कला ने एक नया मार्ग पकडा।

"यही कारण है कि मुगल काल म चित्रकार पहली बार रूप-साम्य की ओर बढा। बादशाहो के रूप चित्रण म भाव-व्यजना की आवश्यकता ही क्या थी? उनके दरबारो की साज-सजावट अवश्य पृथक नही की जा सकती थी, दरबारियो की भी उपेक्षा नही की जा सकती थी। अत चित्रकार का काम बिसात पर शतरंज जसे छोटे-बडे मुहरे सजाना हो गया। इमारतो ने ताजियो का रूप पकडा। अत चित्रकार स्वय भी बारीकी और सूक्ष्मता की ओर बढा। छोटे छोटे चित्रो के बनाने और उनमे अपनी कारीगरी दिखाने में ही चित्रकार अपनी चरम कुशलता समझने लगा। ऐतिहासिक पुरुष तथा ऐतिहासिक घटनाएँ चित्रो का विषय बनी परन्तु इस शैली का विकास अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया।

अजन्ता की चित्रकला जहा विशालता का लक्ष्य बनाकर चली मुगल-काल की चित्रकला लघुता की ओर अग्रसर हुई अजन्ता का चित्रकार आत्मा की ओर बढता था, मुगल चित्रकार रूप की ओर बढा अजन्ता का चित्रकार भाव व्यजना को प्रमुखता देता था मुगल चित्रकार ने नफासत और बारीकी को प्रमुखता दी। अजन्ता का चित्रकार रेखाओ से अपना अभीष्ट सिद्ध करता था, मुगल चित्रकार ने रगो से किया अजन्ता के चित्रकार म आदर्श प्रधान थे मुगल चित्रकार म वास्तविकता।

'राजपूत कलम का भी आविर्भाव मुगल चित्रकला के साथ ही साथ हुआ। अत उस पर मुगल चित्रकला का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। परतु तब भी उसमे भारतीयता अधिक है। उस पर फारसी प्रभाव उतना अधिक नही जितना मुगल चित्रकला पर है। परतु तब भी लोग उसे इडो-पर्शियन कला के नाम से पुकारते हैं। कुछ लोग इडो मुगल कला भी कहते हैं। कारण यह है कि इस कलम के जितने चित्र मिलते हैं वे प्राय चार प्रकार के हैं। पहले वे हैं जिनमे फारसी की प्रेम-कहानियो के चित्रो की नकलें की गई हैं, दूसरे वे हैं जिनमे भारतीय ग्रथों से चित्रों के विषय चुने गए हैं तीसरे वे हैं जिनमे लैला-मजनू

के चित्र स्वतन्त्र रूप से रचे गए हैं और चौथे व है जिनमें फारसी पद्धति से ऐतिहासिक व्यक्तियों के रूप चित्र बनाए गए हैं।

'राजपूत चित्रकला का सामूहिक रूप से अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे आश्रयदाता न मिले हों। अकबर और जहांगीर जैसे आश्रयदाता तो उसे निश्चय ही नहीं मिले पर इसका यह फल भी हुआ है कि कलम भी स्वतंत्र रही। राम और कृष्ण ही उसके प्रमुख उपास्य रहे जबकि मुगल चित्रकार के उपास्य अकबर और जहांगीर बन गए। पर राजपूत चित्रकार रूप चित्रण की ओर अधिक न बढ सका। उसके चित्र अधिकतर कल्पना प्रधान ही रहे। वह कुछ अंशों में अजंता की प्राचीन शैली ही का ग्रहण किए रहा। उसके चित्र मुगल चित्रों से आकार में भी बडे मिलते हैं।

राजपूत चित्रकला प्राय दो भागों में विभाजित की जाती है—राजपूत राजस्थानी तथा राजपूत पहाडी। यह राजपूत पहाडी ही कांगडा कलम के नाम से प्रसिद्ध है। राजपूत कांगडा और राजपूत राजस्थानी कलम में बहुत अंतर नहीं।

'इस राजपूत कलम की ही एक शाखा बुंदेलखण्डी कलम मानी जाती है। कुछ लोगों का तो यह मत है कि बुंदेलखण्डी कलम का स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं। परंतु कुछ का मत है कि जैसे अजंता से राजपूत कलम का विकास हुआ है वैसे ही राजपूत कलम से बुन्देली कलम का भी। पर मुगल कलम का दोनों पर प्रभाव है। जो हो पर बुंदेली कलम में अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जिससे उसे राजपूत कलम से भिन्न ही मानना पडेगा। बुंदेली कलम की भारतीय चित्रकला को एक विशिष्ट देन है।

'बुंदेलखण्डी चित्रकार अधिकतर छतरपुरी कागज या जिसे ठर्रा कागज कहते हैं काम में लाता हुआ मिलता है। वह कागज को कडा करने के लिए उसके दो-तीन पन एक साथ चिपका लेता था। फिर कागज़ को चिकना करने के लिए सफेदा का उस पर कोट करता था। उसके पास रंगों की संख्या बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती। रंग भी उसके बहुत साधारण-से दीख पडते हैं। वह अधिकतर लाल पीले, नीले, हरे सफेद तथा काले रंगों से ही काम लेता है। सुनहले और रुपहले रंग भी कहीं-कहीं प्रयोग करता मिलता है, उसके रंग भी अपने घर में ही तैयार किए हुए प्रतीत होते हैं देशावर से आए हुए नहीं। वह गेरू रामरज नील, सिंदूर इंगुर प्योरी इत्यादि से ही अधिकतर काम लेता हुआ मिलता है। रंगों में सफेदा सबसे प्रमुख है। बिना सफेदा के उसकी तूलिका आगे नहीं बढ सकती।

'उसकी तूलिका भी अपनी ही बनाई है और वह इस तूलिका से इतनी बारीक रेखाएँ खींचता है कि उन्हें देखने में भी आंख को श्रम होना है।

किले के भीतर कोई राजा ठाठ में बैठा है। सामने कोई सामन्त झुककर मुजरा कर रहा है। किले पर फिरंगियों का आक्रमण हो रहा है। फिरंगियों के टेंट भी चित्रित किये गये हैं। एक टेंट में दो फिरंगी बैठे शराब पी रहे हैं। बाहर टेंट में वेश्या का नृत्य हो रहा है। कोई फिरंगी सरदार बैठा देख रहा है। इसकी पंक्ति में पीछे कुछ शिकार के चित्र बनाये गये हैं। कोई राजा हाथी पर जा रहा है। हाथी पर शेर ने आक्रमण कर दिया है, राजा उसे भाले से मार रहा है।

एक चित्र में फिरंगी सेना का मार्च भी दिखलाया गया है। आगे-आगे अश्वारूढ़ कोई फिरंगी अफसर जा रहा है उसके पीछे बैण्ड बजता हुआ जा रहा है। बैण्ड के पीछे संगीनबन्द सिपाहियों की पंक्तियाँ हैं। इस चित्र के ठीक नीचे किसी राजा की फौज का भी चित्रण है।

'मन्दिर में और भी बहुतेरे कितने ही दर्शनीय चित्र बने हुए हैं। कहीं साधुओं का आश्रम दिखाया गया है, कहीं किसी मन्दिर में स्त्री पुरुष पूजा के लिए जाते दिखाये गये हैं। राम कृष्ण की लीलाओं के भी कितने ही चित्र हैं। इन चित्रों को देखकर हम कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड ने जो चित्रकला में प्रगति की है, उपेक्षणीय नहीं।' (विन्ध्य भूमि, पृ० ४१)

बुन्देली चित्रकला का अजस्र स्रोत परम्परानुसार बुन्देलखण्ड में निरन्तर प्रवाहित होता आ रहा है। इसका प्रमाण सन् १८५७ के पूर्व झाँसी के प्रसिद्ध चित्रकार सुखलाल काछी द्वारा भी मिलता है।

सुखलाल चित्रकार द्वारा चित्रित जो चित्र उपलब्ध हैं वे अधिकतर राम के राजतिलक, कृष्ण की रासलीला, झाँसी के राजा गंगाधर राव के दरबार और रानी लक्ष्मीबाई के हैं। इनके अतिरिक्त उसने यहाँ के संत महात्माओं के भी चित्र अंकित किये हैं जो यहाँ लक्ष्मीजी के मन्दिर रघुनाथजी के मंदिर और द्वारिकादास बाबा के मन्दिर में तसवीरों के रूप में और कुछ भित्तियों पर चित्रित हैं।

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में कुछ ऐसे चित्रकार भी हुए हैं जिन्होंने चवल (चना का अर्ध भाग) पर अम्बारीदार हाथी चित्रित करके चित्रकला का और बुन्देली चित्रकारों की कुशलता का उत्कृष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है।

एक वरिष्ठ चित्रकार ने तो अपनी तूलिका द्वारा चावल पर बिहारीलाल जमनादास द्वारा सिद्ध, इन पन्द्रह अंगों को अंकित किया है जो बुन्देलखण्डी चित्रकला का ज्वलन्त उदाहरण है। इस अंकित किये हुए चावल को, जो कि हवरा मण्डी (मध्य प्रदेश) में एक व्यापारी के पास सुरक्षित है, चित्रकला मर्मज्ञ दूर-दूर से अवलोकन करने आते हैं।

सन १८५७ के गदर के बाद का समय बड़ा विलक्षण रहा। यह प्रत्यक्ष कला का संध्या-काल माना गया है। लेकिन कालांतर में बुंदेलखण्ड की पावन वसुंधरा ने एक कुशल चित्रकार को जन्म दिया जिनका नाम मास्टर रुद्रनारायण विख्यात था। यह केवल चित्रकार ही नहीं थे मूर्तिकार भी थे और इसके अतिरिक्त यह राष्ट्र भक्त भी थे। इनकी तूलिका द्वारा जो चित्र चित्रित हुए हैं वे अधिकतर वीरों के ही हुए हैं। इनमें इन्होंने ऐसे चित्रों को प्रमुखता दी है जिनमें रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों पर धावा बोल रही है। अन्य वीरों के चित्रों में क्रांतिकारी भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और चन्द्रशेखर आजाद को चित्रित किया गया है।

राष्ट्रीय क्रान्तिकारी वीरों के रुद्रनारायण द्वारा चित्रित ये चित्र प्रमुख भारतीय पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। मास्टर रुद्रनारायण कलाकार तो थे ही बड़े उदार और त्यागी व्यक्ति भी थे। इन्होंने अपने हाथों स्वयं अश्वारूढ़ झांसी की रानी की मूर्ति को निर्मित कर खण्डेरावगेट के बाहर स्थित लक्ष्मी व्यायामशाला को भेंट की थी। यह मूर्ति आज भी बुंदेली चित्रकला और मूर्तिकला का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करती है।

मास्टर रुद्रनारायण की संरक्षकता में झांसी में कई चित्रशालाओं ने जन्म लिया। उनमें प्रमुख श्रीराम चित्रशाला है जिसके चित्रकार हैं भारत विख्यात श्री कालीचरण चित्रकार।

कालीचरण बुंदेलखण्ड के उन यशस्वी चित्रकारों में से एक हैं जिन्होंने भारत के प्रमुख चित्रकार श्री नन्दलाल बोस, अवनीन्द्रनाथ टगोर, रविशंकर रावल, कनु देसाई आदि से चित्रकला में अपनी तूलिका और रंगों में श्रेष्ठता प्राप्त करके बुंदेली चित्रकला की परम्परा और मर्यादा की रक्षा की है। इनका हम मुगल कलम, राजपूत कलम या अजंता एलोरा के भित्ति चित्रों से प्रभावित स्वीकार नहीं करते। उनका स्वयं का अनुभव और अपनी तूलिका द्वारा रंग देने का स्वरक्षित लक्ष्य है जो बुंदेली परम्परा को ही लेकर चल रहा है।

कालीचरण की चित्र रुचि भक्ति भाव-व्यंजना में ही अधिक है जिसके लिए वह एकान्त में एकाग्र मन से साधना करते हैं। उनका कहना है कि चित्र उपासना का साधन है। इसका परीक्षण मैंने उनके समीप बैठकर स्वयं किया है। वह अपनी साधना में मग्न हैं—तूलिका चल रही है, भाव उभर रहे हैं। इसमें वे कभी डूब और कभी उछल से अपनी मुखमुद्रा में दर्शित हो रहे हैं। खटका होते ही चौंक पड़े, और मुस्कराकर कहने लगे—क्षमा करना मित्रजी, मैं देख नहीं पाया।

उनके भक्ति भावनापूर्ण चित्रों में धनुषधारी राम, कुरुक्षेत्र के कृष्ण अर्जुन, शिव पूजन गौ-पूजन भगवान बुद्ध और प्रेमभावपूर्ण चित्रों में, दमयन्ती

प्रतीक्षा, रूप का अन्त आदि विशिष्ट हैं। इसके अतिरिक्त कालीचरण ने राष्ट्रीय नेताओं के जो चित्र अंकित किए हैं, उनपर मास्टर रुद्रनारायण का प्रभाव झलकता है और इसको वह बड़ी उदारता से स्वीकार करते हैं। राष्ट्रीय नेताओं में गांधी कस्तूरबा, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू के चित्रों को विशेष महत्त्व प्राप्त है और इनमें से अधिक चित्र जर्मनी से प्रकाशित हुए हैं तथा कुछ भारत की राजधानी दिल्ली में।

कालीचरण के चित्र बड़े सजीव भावपूर्ण बोलते से प्रतीत होते हैं, जिनका रंग अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। इनके चित्रों की ख्याति भारतवर्ष के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में है। नगर या ग्राम का ऐसा कोई मन्दिर या गृह नहीं होगा, जहाँ कालीचरण की तूलिका से निःसृत चित्र तस्वीर या कलेण्डर के रूप में सुशोभित नहीं हो रहा होगा।

इसके अतिरिक्त कालीचरण ने चित्रकला को एक नवीन रूप और दिया। उन्होंने मूंगफली के छिलके द्वारा बिना कोई रंग दिये भगवान बुद्ध और राष्ट्रपिता गांधी के चित्रों को अंकित किया है, जिसमें गांधीजी के चित्र को सर्वोच्च प्रदर्शनी में प्राथमिकता प्राप्त हुई है। यह चित्र गांधी संग्रहालय में सुशोभित है।

मूंगफली के छिलके द्वारा चित्र निर्माण, इस बुन्देली चित्रकार की विश्व चित्रकला को एक नवीन देन है।

## बुन्देली वाद्य और गायन कला

उस्ताद श्री कुदउसिंह— दतिया के महाराज भवानीसिंह और समथर के राजा चतुरसिंह गायन वादन कला के प्रेमी और चतुर पारखी थे। समथर राज्य राजा चतुरसिंह के पूर्वजों को महाराजा भवानीसिंह के पूर्वजों द्वारा सेंवढा विजय के पुरस्कारस्वरूप दिया गया था। इस कारण दतिया नरेश समथर के राजा को अपना आश्रित और छोटा मानते थे।

सन् १८६० की बात है। सेंवढा के बीहड़ वन में एक पंजाबी बाबा रहते थे। वह महान् संगीतज्ञ थे। वह कभी कभी अपनी मौज से दतिया के प्रसिद्ध पखावजी कुदउ उस्ताद के घर आया करते थे। महाराज भवानीसिंह को जब यह विदित हुआ तब वह बाबा का गायन सुनने को अति उत्सुक हुए। पंजाबी बाबा विरक्त थे। इस कारण उनका गायन किसी प्रलोभन द्वारा नहीं सुना जा सकता

था। वह तो कुदउ उस्ताद जो उनके भक्त थे, उनके यहां आने पर ही सुना जा सकता था।

एक दिन महाराज भमानीसिंह को यह स्वर्ण अवसर मिल ही गया। उनका समाचार मिला और वह कुदउ उस्ताद के घर पधारे। कुदउ उस्ताद और पंजाबी बाबाजी ने भमानीसिंह का कला प्रेम देख जुहार करते हुए यथेष्ट सम्मान किया।

पूज्य बाबाजी का गायन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने ध्रुपद में सुरीली तानें भरी पखावज में संगीत कर रहे थे कुदउ उस्ताद। ध्रुपद मुख्य चौताल का होता है। परन्तु कुशल वादक जब अपनी योग्यता से ब्रह्म ताल, लक्ष्मी ताल और सूर ताल की गति प्रस्तुत करता है तब ध्रुपद में चार चांद लग जाते हैं। कुदउ उस्ताद ने अपनी पखावज द्वारा यही विशेषता प्रस्तुत की थी। महाराज भमानीसिंह ने उस्ताद की प्रशंसा करते हुए उनके हाथ चूम लिए और बाबाजी के सम्मुख मस्तक झुकाकर बोले—'मैं आपके गायन में जो आनन्द अनुभव करता हूँ उसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता।'

इस संदर्भ में बाबाजी ने कुदउ उस्ताद के वादन की प्रशंसा करते हुए कहा—'रजउ तुम बड़े भाग्यशाली हो जो कि तुम्हारे राज में पखावज का ऐसा कुशल कारीगर वास करता है।'

पंजाबी बाबा के इन शब्दों से प्रभावित हो महाराज ने अपने दरबार में कुदउ उस्ताद को आमन्त्रित कर नित्यप्रति सात रुपया गजासाई और भण्डार से रसद (भोजन सामग्री) तथा आवश्यकता पड़ने पर दीवान से सौ रुपया प्राप्त करने की घोषणा की और पंजाबी बाबा के लिए एक सुन्दर आश्रम पुरोहित के बगीचे के मध्य बनवा दिया।

कुदउ उस्ताद बड़े औलादौला थे। एक-न-एक कलाकार उनके यहां नित्यप्रति आया ही करता था। राज से जो प्राप्त होता था वह व्यय हो जाता था। इसके अतिरिक्त उनको महीने दो महीने में दीवान से रुपया मांगना पड़ता था। दीवान को कुदउ उस्ताद का यह विशेष खर्च खटकने लगा और वह कभी कभी उस्ताद से हास्य में कह भी देते— उस्ताद ऊलजलूल खर्च अधिक न किया करो।

एक बार टीकमगढ़ में एक कत्थक (नर्तक) आया। उस्ताद ने उसके समारोह के लिए विशेष प्रबन्ध किया। इसके लिए उन्होंने दो सौ रुपये की दीवान से मांग की। दीवान ने रुपये तो दिये किन्तु कुछ ताना‍कशी के साथ। उस्ताद के मन को यह कसक गया और वह नृत्य समारोह उपरान्त दीवानखाने में पहुंच दीवान के सम्मुख 'राज का घोषणापत्र' वापस रख यह शब्द कहते हुए चल दिये— दीवान साहब राम राम।

दीवान ने उस्ताद का रुख देख महाराज को तुरंत हल्कारा भेजा। महाराज घोड़े पर सवार हो शीघ्र आये। उस्ताद को जाते हुए देख पूछने लगे उस्ताद, कहाँ की तयारी की ?"

उस्ताद महाराज को जुहार करते हुए कहने लगे—'जा हमाई सीक ममाहैं।" महाराज ने बहुत मनाया लेकिन जब उस्ताद को मुरकते न देखा तब यह शब्द कहते हुए विदा किया— उस्ताद और सब जगह जाना परन्तु समथर न जाना।"

कलाकार हठी तो होते ही हैं। उस्ताद समथर ही पहुंचे और अपने आने की सूचना राजा चतुरसिंह को भेज दी।

राजा चतुरसिंह अपने यहाँ दतिया के किसी भी कला कामदार के आने में अपना महान गौरव समझते थे, और आज तो उनके यहाँ दतिया का वह श्रेष्ठ पखावज-वादक आया था जिसका यश पूरे बुंदेलखण्ड में छाया था। वह अत्यन्त प्रसन्न हो कुदउ उस्ताद को लेने आये और उस्ताद का राजसम्मान के साथ स्वागत करके ठहरने का उचित प्रबन्ध कर दिया।

आवभगत (अतिथि सत्कार) में चार मास व्यतीत हो गए। एक बार भी वादन का अवसर नहीं आया। उकताकर राजा को समाचार भेजा कि हम दरबार से विदा की आज्ञा चाहते हैं। समाचार प्राप्त होने पर राजा चतुरसिंह उस्ताद के पास आये और कहने लगे—'उस्ताद आप अभी कुछ दिन हुए आये हैं साल दो साल तो विश्राम कीजिए फिर जाने की सोचिए। उस्ताद प्रसन्न मुद्रा में कहने लगे गरीबनवाज हमको मुफ्त की रोटी तोरना पसन्द नहीं।'

चतुरसिंह उस्ताद की इस ईमानदारी और कला के स्वाभिमान की बात सुन अत्यन्त प्रभावित हो कहने लगे— दशहरा आ रहा है उस्ताद !'

उस्ताद ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा— तब महाराज एक मस्त हाथी को फीलखाने में खोज करा ली जाय।' उन दिनों गजराज नाम का एक उन्मत्त हाथी फीलखाने में था। दशहरे के दिन किले के मैदान में उस्ताद के पखावज वादन का आयोजन रखा गया। राज घोषणा सुन जनसमूह एकत्रित हो गया। सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया।

राजा चतुरसिंह का दशहरे का दरबार भरा। दरबार के उत्तर प्रकोष्ठ में कुदउ उस्ताद का आसन लगाया गया और दक्षिण प्रकोष्ठ में मस्त गजराज को फीलखाना की सुरक्षा में बाँध दिया गया।

कुदउ उस्ताद ने निवेदन किया कि जब हम संकेत करें गजराज को खोल दिया जाय। यह सुन जनता भय से सशंकित हो उठी, क्योंकि मस्त हाथी को भरी सभा में छोड़ देना बड़ा आश्चर्यजनक था। परन्तु ऐसी ही विषम परिस्थिति में उस्ताद की वादनकला की परीक्षा होनी थी।

कुदउ उस्ताद ने अपनी आराध्य देवी भगवती का मन म स्मरण कर पखावज पर प्रथम ताल दी जिसकी गमक सुन सभाजन आकर्षित हो उस्ताद की ओर एकाग्रचित्त हो गय। इसके उपरान्त उस्ताद ने निवेदन करत हुए अपनी पखावज पर गजपण प्रस्तुत करने की घोषणा की और उसकी मात्राओ का ज्ञान कराते हुए पखावज पर ताल दी।

अब क्या था, ताल की गति माधुय स जो स्वर ध्वनि प्रस्फुटित हुई, उसने दरबार और उपस्थित जन समूह के अन्तस्तल को माहित कर आन द स भर दिया। तदन तर उस्ताद ने गजपण की गमके गिराई। फिर शन शन क्रमागत अलकार भरे, इसके उपरान्त लय द्रुत और अति द्रुत की ताल दी और लय इतनी विलम्बित कर दी जिसकी ध्वनि से आकाश गूज उठा।

ठीक इसी समय उस्ताद ने हृदय म आद्यशक्ति भगवती का ध्यान धर फीलवान को बधे हुए मदमत्त गजराज का खोल दन का सकेत किया। फीलवान ने सकेत पाकर मस्त गजराज को खोल दिया। मदमस्त गजराज गजपण की ताल से रागाम्मत्त हो झूमता हुआ आया और कुदउ उस्ताद की पखावज पर अपना विशाल मस्तक रख दिया। उसके मदमस्त भाल स सहस्रा अमृत की बूदें स्रवित हो उस्ताद के चरणो को पखारने लगी। यह लक्षित कर उल्लसित जन समूह और दरबार क सरदार मुक्त कण्ठ स कुदउ उस्ताद की प्रशसा करने लग।

राजा चतुरसिंह न उस भरे दरबार म कुदउ उस्ताद की भूरि भूरि प्रशसा करत हुए तिलक किया, पखावज का पूजन किया और भुजा म स्वण कंकण बाध एक सहस्र मुद्रा तथा उसी गजराज को भेंट कर विदा किया।

राजा चतुरसिंह को जुहार कर उस्ताद ने दतिया को प्रस्थान किया और दतिया पहुच समथर स पुरस्कार मे मिले हाथी को राज के फीलखाने म बाध अपने घर चले आये। फीलवान ने यह समाचार दीवान साहब को दिया। दीवान ने चकित हो महाराज को खबर भेज दी।

महाराज भवानीसिंह पधारे और प्रसन्न मुद्रा म दीवान से कहने लगे— दीवान साहब जब तो अकेले उस्ताद का ही खच था। अब इस गजराज का भी बोझ आपको उठाना पडेगा। गुणी और कलाकारो से स्पष्ट होने पर यही मजा मिलती है। उस्ताद कुदउसिंह का स्वगवास सम्वत १९६० म दतिया नगर म ही हुआ। उनकी समाधि दतिया स लगभग एक मील पूर्व उन्नाव के माग पर झाड दरवाजा के समीप बनी हुई है।

**श्री झल्लू उस्ताद टीकमगढ़**—उस्ताद कुदउसिंह के सौ शिष्य थ, जिनम ख्याति प्राप्त शिष्य श्री मदनमोहन मउरानीपुर वाल ही थ जा अधिकतर अयोध्या निवास करते थे। इनके ही शिष्य श्री स्वामी रामदासजी हुए हैं,

जिनकी शिष्यता स्वीकार करके बिजना के राजा श्री छत्रपतिसिंह ने पखावज वाद्यकला का अनुपम मान प्राप्त करके सन १९६४ में भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी सम्मान प्राप्त किया है।

उस्ताद कुदऊसिंह के एक पुत्री थी जो कि बांदा के अयोध्याप्रसाद को ब्याही थी। अयोध्याप्रसाद के पुत्र थे शम्भु प्रसाद, जिनके दामाद श्री रामदास ने बम्बई निर्मित फिल्म 'झनक झनक पायल बाजे' में गोपीकृष्ण के नृत्य के साथ पखावज की संगति करके पखावज की वाद्यकला द्वारा बुन्देलखण्ड को पुनः गौरवान्वित किया।

महाराज भवानीसिंह का स्वर्गवास सम्वत १८६४ श्रावण कृष्णा द्वादशी को हो गया। लेकिन उनकी कलाप्रियता आज भी बुन्देलखण्ड की प्रेरणा का विपुल स्रोत बनी हुई है। सन १९६० में कुदऊ उस्ताद जैसे पखावजी का अभाव राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के हाथी के उन्मत्त होने पर हमको खटका। यदि दिल्ली में कोई गजपरण का बजाने वाला पखावजी होता तो राष्ट्रपति के उन्मत्त हाथी की हत्या गोलियों से न की गई होती।

बुंदेलखण्ड आधुनिक युग में भी अपनी पखावज की प्राचीन परम्परा को जीवित रखे हुए है।

**स्व० उस्ताद आदिल खां**—बुंदेलखण्ड के अंतर्गत ओरछा राज में प्रवीण राय, चन्द्र सखी हरिराम व्यास आदि शास्त्रीय संगीत के प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

इनकी संगीत परम्परा आज भी इस भू भाग में प्रचलित है। बनारस की कजरी, पंजाब का टप्पा राजस्थान का रसिया जिस प्रकार विख्यात है उसी प्रकार बुंदेलखण्डी शास्त्रीय संगीत में 'देद' को प्रमुख स्थान प्राप्त है जिसके बोल हैं—

> मोरी खोइ पनियां की गल,
> सिपाइ राजा छोर्गे बुरज को बठवों।

बुंदेलखण्ड में यद्यपि इस राग के अनेक गायक ग्वालियर दतिया आदि में हैं लेकिन उस्ताद आदिल खां इसके प्रमुख सिद्ध गायक माने जाते थे। ये इसका बड़ा ख्याल छोटा ख्याल एक ताल दादरा और फिर तान तोड़ में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। इनकी गायकी की यह विशेषता थी कि इनके ख्याल में ध्रुपद के अंग की तान चलती थी। उस्ताद आदिल खां की गायन कला के सम्बन्ध में यहां पद्मभूषण डा० वृन्दावनलाल वर्मा के एक लेख का अंश प्रस्तुत करना चाहूंगा।

सन् १९२८ की बात है। ग्वालियर में एक मराठे सज्जन तबला बजाने वाले आए। उनको अपने तान ज्ञान का और तबला बजाने का बड़ा अभिमान था। तबला वह बजाते भी बहुत अच्छा थे मराठा सज्जन अपने शास्त्र के

आचाय थे और उन्होंने अनेक बडे बडे उस्तादो के कठिन गायन के साथ तबला बजाया था। उनको अपने फन पर नाज था। एक और सज्जन थे, जिन्होंने मराठे आचाय का तबला सुना था, उनके ताल की तारीफ की। इस पर मराठे सज्जन ने नम्रता तो प्रकट की नही, जरा दम्भ के साथ बोले—'मैंने श्री कृष्ण राव पडित के साथ बजाया है। उन्होंने मेरा लोहा माना है। और भी बहुत से बडे बडे उस्तादो के साथ बजाया है और उनको हराया है। आज उस्ताद आदिल खा की उस्तादी की परख करनी है।

"आदिल खा पहले जरा मुस्कराए। फिर उनकी त्योरी बदली, होठ फडके और दबे। एक क्षण उपरान्त गला सयत करके बोले—'देखिए रावसाहब उस्तादो की जगह मदा से खाली है। इसलिए इतनी बडी बात नही कहनी चाहिए। आज जो यहा इतने लोग हैं आनन्द के लिए इकट्ठे हुए हैं झगडा फसाद सुनने के लिए नही।

'रावसाहब न माने। कहने लगे—'यह तो अखाडा है उस्ताद! लोगो को मुठभेड म ही आनन्द प्राप्त होगा।'

तभी उस्ताद ने चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—शुरू करिए। उस्ताद ने तम्बूरा लिया। ध्रुवपदाग ख्याल आरम्भ किया। इस प्रकार का ख्याल केवल उस्ताद का घराना गाता है। इनके पिता स्वर्गीय विलास खा बहुत बडे गवय थे और पितामह उस्ताद मिट्ठू खा का देहान्त उस समय के धौलपुर नरेश के दरबार म एक प्रतिद्वन्द्विता म तान लेते लेते हुआ था। मिट्ठू खा के पिता पुरदिल खा और पुरदिल खा के पिता केसर खा तथा केसर खा के पिता मन्न खा सब अपने जमाने के नामी गवये थे। इस घराने का ख्याल ध्रुवपद के अग से उठता है और उत्तरोत्तर तान सजीव ख्याल का रूप धारण करता चला जाता है। यह परिपाटी और किसी गवये म श्री ओंकारनाथ और फयाजखा का छोडकर नही है। अन्य गवयो के ख्याल की मनोहरता शुरू से ही लय की अति द्रुत गति की कारीगरी म विलीन हो जाती है। वे आरम्भ से ही तानें लेने लगते हैं और ख्याल के कण नही भरते। इसीलिए अनेक ध्रुवपदिये इस परिपाटी को नापसन्द करते हैं और यहा तक कहते हैं कि ख्यालिये तो बसुरे होते हैं। परन्तु आदिल खा के घराने की परिपाटी इस दोष से सवथा मुक्त है।

उस्ताद आदिल खा ने उस रात अपने घराने की परिपाटी का एक ख्याल उसी सहज ढग मे आरम्भ किया। परन्तु एक अन्तर के साथ लय इतनी विलम्बित कर दी कि ताल का पता ही नही लग रहा था।

थोडी देर तक तबले के उक्त आचाय ने परनो और टुकडो म अपने अज्ञान को छिपाया परन्तु यह करामात बहुत देर तक नही चल सकती थी। आदिल खा ने टोककर कहा—'सम पकडिए सम।'

'सम कहाँ से पकडते ! तबलिये की समझ म ताल ही नही आया था। उस्ताद हसे और उ होने अपने हाथ की ताली स ताल देना शुरू किया। बोले—'अब तो समझिये। हाथ से ताल देता जा रहा हूँ। परन्तु लय इतनी अधिक विलम्बित थी कि तबलिया न तो ताल को समझ सका और न 'खाली' भरी' को। सम तो अब भी उससे कोसो दूर था।

झख मारकर खीजकर लज्जित होकर तबलाशास्त्री ने तबला बजाना बद कर दिया। कठावरोध हो गया। हाथ जोडकर उस्ताद से बोला— मैं माफी चाहता हू। मैं नही जानता था कि आप इतन उस्ताद हैं। यह ताल मैंने कभी नही बजाया। ब्रह्मताल लक्ष्मीताल इत्यादि तो बहुत बजाए है परतु यह ताल नही। इसीलिए चूक गया।

"उस्ताद को एकाएक हसी आई। तम्बूरा रखकर और गम्भीर होकर बोले— बहुत सीधा ताल है। आप उसे प्राय बजाते है।'

तबलिया ने आश्चर्य से कहा— ए' ?'

उस्ताद बोले— जी हा परतु घमड नही करना चाहिए। बुजुग घमड को बुरा कह गए है। जो लोग उनकी बात को नही मानते मुह की खाते है। गवय के गले का साथ भग तबला बजाने का हाथ कस कर सकता है ? आपका दाप नही दाप घमड का है।'

'तबलिया बिल्कुल ढल चुका था। उसी नम्रता के साथ उसने पूछा— उस्ताद मैं अब भी बहुत कोशिश करन पर ताल नही समझा। बतलाइए कौन सा ताल था ? आप कहते है कि मैं इसको प्राय बजाता हूँ। मैं कहता हूँ कि मैंने इसको पहले कभी बजाया ही नही।'

उस्ताद ने तम्बूरा हाथ म लिया। बोल बजाओ तिताला है।

' तिताला !' अचानक अनेक कठो स निकल पडा— तिताला।'

(प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ, पृ ठ ५६३)

महान सगीतज्ञ उस्ताद आदिल खा जो अपनी बुन्देलखण्डी सगीत की आन बान को लिए इस प्रान्त को गौरवान्वित करते थे ६६ वर्ष की अवस्था म पदार्पण कर रहे थे। वही शान वही तान वही मुस्कान और वही स्वाभिमान जो किसी शास्त्रीय सगीतज्ञ म होना चाहिए। एक दिन अनायास उनका निधन हो गया।

तृतीय उन्मेष

# बुन्देली सस्कृति और साहित्य

# बुन्देलखण्ड में वसन्त मे प्रचलित त्योहार, व्रत, मेले और लोकगीत

*किसी प्रदेश की सस्कृति को वहा के वन पवत, सरिताएँ और पशु पक्षी—* अभिप्राय ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक सम्पदा पूणत प्रभावित करती है। हम बुदेलखण्ड के सम्बध म तो यह पूणत सत्य हुआ दखते हैं। बुदेलखण्ड विघ्याचल, हस पवत, स्वणगिरि उदयगिरि सतपुडा आदि के उच्चशृग मुकुटो से सुशोभित, बट, पीपल बीकर, पाकर नीम आम जामुन अचार खिन्नी, सागौन शीशम, पलाश, अजुन आदि बक्षा स आच्छादित, बना, हरसृगार काकर करौंदी आदि वन पुष्पो की मद मद सुग ध से सुगधित एव यमुना बेतवा पुष्पावती चम्बल केन धसान नमदा, टास, सिघ, सुखनई आदि सरिताओ की पवित्र धवल धाराओ से सवलित धवलित एव सिंचित पावन प्रदेश है।

कविकुल गुरु कालिदास ने बुदेलखण्ड को भारत के मध्य भाग म स्थित दशाण देश *माना है। इसके नगरों व ग्रामो के नर-नारी बुदेलखण्डी बोलते* हैं। एक तत्कालीन कवि ने बुदेलखण्ड क महाराज छत्रसाल के समय की क्षेत्र सीमा का उल्लख इस प्रकार किया है

> इत जमुना, उत नमदा, इत चम्बल उत टोंस।
> छत्रसाल सों लरन की रही न काऊ होस।

उत्तर म जमुना दक्षिण म नमदा पश्चिम म चम्बल और पूव दिशा म टास नदी तक—महाराज छत्रसाल ने विजय प्राप्त कर बुदेलखण्ड की सीमा को इस प्रकार प्रस्थापित किया था। बुदेलखण्ड की भूमि के सम्बध म एक बुझौवल भी इस जनपद म प्रचलित है

> मस बधी है ओरछा पडा हुसगाबाद।
> लगवया है सागरे चपिया रेवा पार।

अर्थात दूध देन वाली भस जो बुदेलखण्ड भूमि का पोषण करती है, वह ओरछा नगर म बधी है और उसका दूध पान करने वाला बच्छा हुसगाबाद म बधा है तथा उसका दोहन करने वाला सागर म अवस्थित है एव दूध का पात्र नमदा के तट पर है। इस प्रकार इस बुझौवल से भी यह सिद्ध होता है

कि बुन्देलखण्ड की भूमि का विस्तार ओरछा की बेतवा नदी से नर्मदा की माहिष्मती नगरी तक रहा है।

बुन्देलखण्ड के भू भाग की संस्कृति के यहाँ के प्रत्येक नगर और ग्राम में प्राय समान रूप से दर्शन होते हैं। तीज-त्यौहार, व्रत, उत्सव तथा मेले भी प्राय एक ही ढंग से प्रतीत होते हैं।

तृतीय उन्मेष में हमने बुन्देली संस्कृति की एकता का परिचय कराने के लिए ही यहाँ के विभिन्न जनपदों में प्राचीन काल से प्रचलित व्रतों मेलों और त्यौहारों का अध्ययन किया है।

गनगौर का पूजन—गनगौर का पूजन चैत्र शुक्ल तृतीया को होता है। इसमें अधिकांशत सुहागिन स्त्रियाँ दिन भर उपवास करने के बाद सायकाल पार्वती का पूजन करती हैं। पूजन में चढ़ाने के लिए स्त्रियाँ रेहन (चने की दाल का आटा) के आभूषण बनाती हैं और रेहन के नैवेद्य के ही गनगौरा बनाती हैं। इसकी बनावट कान की माला के सदृश होती है।

यह गनगौरा प्रसाद में पुरुषों को वितरण नहीं किये जाते केवल स्त्रियों को ही बाँटे जाते हैं। इस पर एक कहावत यहाँ प्रचलित है

गनगौर के गनगौरा पुरुष खाँ न देऊ एकउ कौरा।"

पूजन के पश्चात घर की वृद्धा स्त्री अन्य सुहागिनियों को कहानी सुनाती है जो इस प्रकार प्रचलित है

"एक बार शिव-पार्वती किसी वन खण्ड में विचरण कर रहे थे। इतने में पार्वती को प्यास लगी और वह समीप के एक सरोवर पर जल पीने को गई। पान के लिए अजुलि में जल लेते ही उनके हाथों में एक पुष्प आ गया। जब उन्होंने दुबारा जल लिया, तब दूवा आ गई। यह देखकर वह बड़े आश्चर्य में पड़ गई, और बिना जल ग्रहण किये लौटे पर आकर भगवान् शिव से सारी घटना कह सुनाई। शिव ने विचार मग्न होकर उत्तर दिया कि पार्वतीजी! आज तुम्हारा पूजन का दिवस है। नगर नगर ग्राम ग्राम से सधवा स्त्रियाँ तुम्हारा पूजन करने को आतुर हैं, और तुम वन में भ्रमण कर रही हो। तुम आज इस वट वृक्ष की छाया में बैठ जाओ, क्योंकि पूजन का समय हो गया है और यहाँ पर स्त्री समूह तुम्हारा पूजन करने को आने वाला है।

'पार्वती भगवान शिव की आज्ञा मानकर उस वट वृक्ष की छाया में बैठ गई। थोड़ी ही देर में वह क्या देखती हैं कि महिला समुदाय पूजन के लिए आ रहा है। वह भगवान शिव से प्रार्थना करने लगी कि जो स्त्रियाँ मेरा पूजन करने यहाँ आ रही हैं, उनको देने के लिए तो मेरे पास यहाँ कुछ भी नहीं है।'

शिव ने हँसकर उत्तर दिया—पार्वती तुम बड़ी भोली हो, तुम्हारे पास

यहाँ देने को सब-कुछ है। तुम अपनी दाहिनी पती को कमण्डल के जल में डुबा दो। वह कमण्डल का जल अमृत बन जाएगा, उसे तुम पूजन के लिए आई हुई स्त्रियों पर छिड़क देना जिससे उनको आजीवन सुहागिन रहने का वरदान मिल जायगा।'

'पार्वती ने शिव की आज्ञा का पालन करते हुए दाहिनी पैती को कमण्डल के जल में डुबा दिया। वह जल अमृत बन गया। उन्होंने पूजन के लिए आई हुई स्त्रियों पर शिव का नाम लेकर वह अमृत जल छिड़क दिया। इससे उन महिलाओं को आजीवन सुहागवती रहने का वरदान मिल गया।'

गनगौर-पूजन में स्त्रियों के हृदय में सदैव यह भाव समाहित रहता है कि हम यह पूजन करेंगी तो हमारे पति जीवित रहेंगे। इससे हम सदैव सुहागवती रहकर संसार के सुख भोगों को भोग सकेंगी। कितनी सुन्दर प्रेरणा मिलती है महिला समाज को इस गनगौर पूजन से। अनन्तकाल से बुन्देलखण्ड में यह गनगौर पूजन की परम्परा चली आ रही है।

**श्री नवदुर्गा पूजन और जवारों का मेला**—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवदुर्गा का पूजन आरम्भ होता है। इसी दिन जवारे (जौ) मिट्टी के घड़ों में बोये जाते हैं। बोने की विधि इस प्रकार है। थोड़े गेहूँ या जौ को रात्रि में भिगो लिया जाता है, फिर उनको राख में सानकर घड़ों में (प्रायः नीचे के अर्द्ध भाग में) खाद डालकर और होम करके बो दिया जाता है। बाद में नित्यप्रति प्रातः पानी देकर और सायंकाल होम करके उसे दीप ज्योति दिखाई जाती है फिर ढोलक, मृदंग, मंजीरा, झाँझ वाद्यों के स्वर में स्वर मिलाकर सामूहिक रूप से भवानी के भजन गाये जाते हैं।

इन जवारों के विषय में ऐसी मान्यता है कि जवारे यदि लम्बे और पीले रंग के उठते हैं तो भविष्य में आने वाली फसल को उत्तम समझा जाता है और जवारे घड़ों में छोटे ही रह जाते हैं तो भावी फसल की उपज अच्छी नहीं समझी जाती। जब जवारों को बोये हुए नौ दिन हो जाते हैं तब रात्रि में विधिवत होम पूजन करके आरती उतारी जाती है और दसवें दिन सायंकाल को उन जवारों के घड़ों को स्त्रियाँ अपने सिरों पर रखकर भवानी के गीत (लोकगीत) गाती हुई नगर या ग्राम के बाहर सरोवर या सरिता में सिराने (विसर्जन) के लिए टोली बनाकर चलती हैं। गीतों के साथ मृदंग, झाँझ आदि भी बजाये जाते हैं।

इस अवसर पर घर का वृद्ध पुरुष (मुखिया) एक थाली में जलता हुआ चौमुखा दीपक रखकर जवारों के आगे चलता है। उसके पीछे कुछ व्यक्ति बाना (त्रिशूल) लिये हुए चलते हैं और तत्पश्चात् एक या दो व्यक्ति बाना धारण करते हैं। जिन व्यक्तियों के गालों पर बाना छिदा होता है वे झूमते चलते

हैं। इन सबके पीछे जवारा के घटो को सिर पर धारण किये हुए सुहागिन स्त्रियाँ चलती हैं।

इस प्रकार की सैकड़ो टोलियाँ जब नगरो या ग्रामो से बाहर लोकगीत गाती हुई सरोवर या सरिता तक जवारे सिराने के लिए चलती है, तब उनकी शोभा देखने ही बनती है। इस अवसर पर जो लोकगीत गाये जाते है, वे अधिकाश सांस्कृतिक आध्यात्मिक और भक्ति भावना से पूर्ण होते है। उन लोकगीतो में से अध्ययन की दृष्टि से कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे है

उड चल रे परवत वारे सुवना,
घर अगना न सुहाय मोरी माय।
के उड चल भया बाग बगीचा,
के विन्ध्याचल डाग हो माय।

अर्थात् रे! उच्च शिखर पर निवास करने वाले प्राण पखेरू इस गृह रूपी पिंजडे से उड चल यानी मुक्त हो, क्योकि यह विषमता रूपी गृह का आगन अब मन को सुहावना नहीं लगता। यदि तेरे पंख बंदी रहने के कारण विशेष उडान भरने की शक्ति नही रखते तो किसी उद्यान या फिर विंध्याचलगिरि की उस डाग (वन) में उड चल। इस अध्यात्म प्रधान लोकगीत के सदश ही भक्तिभाव से पूर्ण एक और प्रतीक गीत का अवलोकन कीजिये

कसे के दरसन पाउरी
माई तेरी सकरी दुअरियाँ।
माई के दुआरे इक भूकों पुकारे,
देओ भोजन घर जाउरी। माई तोरी
माई के दुआरे इक अधरा पुकारे,
देओ नैना घर जाउरी। माई तोरी
माई के दुआरे इक कोढ़ी पुकारे,
देओ काया घर जाउरी। माई तोरी
माई के दुआरे इक बाँझ पुकारे,
देओ लालन घर जाउरी। माई तोरी

इस भक्तिभाव पूर्ण लोकगीत में यह प्रदर्शित किया गया है कि माँ, तेरे मन्दिर के द्वार सकीर्ण (छोटे) हैं इसलिए हम तुम्हारे दर्शन नहीं हो पा रहे है। गीतकार लिखता है कि मा! तेरे मदिर के द्वार पर एक भूखा दरिद्र व्यक्ति खड़ा है उसको अन्न प्रदान करके तृप्त कीजिये। एक नेत्रविहीन भी खड़ा है उसको भी चक्षु प्रदान कर दिव्य कीजिये। एक कुष्ठ रोगी भी खड़ा है। उसको स्वर्ण काया का वरदान देकर स्वस्थ कीजिये एव एक बाँझ

स्त्री भी तुम्हारे मंदिर के द्वार पर खड़ी है। उसको भी पुत्रवती होने का वरदान देकर सन्तुष्ट कीजिये।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित जवारा का मेला आदि शक्ति भगवती की मान्यता का प्रतीक है जो इस जनपद में प्राचीन काल से ही शक्तिदायक और सिद्धिदायक उत्सव के रूप में प्रचलित है। इस क्षेत्र में रहने वाली काछी, धीमर, गडरिया, कोरी, धोबी, चमार, महतर आदि जातियाँ इसको बहुत बड़े त्यौहार के रूप में मानती हैं।

जब जवारे सिराये जाने लगते हैं, तब भगवती के नाम में होम किया जाता है। तत्पश्चात् मंदिरों पर चढ़ाकर, बकरा, कुम्हड़ा या नींबू काटकर बलिदान किया जाता है। इसके उपरान्त भक्तगण बड़ी तन्मयता के साथ आरती उतारकर नाचते हैं। नाचते-नाचते जब कोई व्यक्ति भावावेश में हुंकार भरने लगता है तब भगवती को प्रसन्न अथवा सिरे आई हुआ समझकर उससे अपनी मनोकामना प्रकट करते हैं। यह व्यक्ति जिस पर झूमता तथा हुंकारें भरता हुआ प्रार्थना करने वाले की पिछली भूलों का संकेत करता है और उपाय के रूप में अनेक प्रकार की मान्यताओं जैसे कन्याओं को भोजन कराना, ब्राह्मण भोजन कराना अथवा सत्यनारायण की कथा आदि बचवाने का निर्देश करता है। अंत में वह प्रार्थी की वर्तमान पीड़ा से मुक्ति के हेतु भभूत देता हुआ, गुल्लाट खाकर गिर पड़ता है। इसको 'भवानी खाग ले गई' कहते हैं।

श्रीराम तथा केशवदास के जन्मोत्सव ओरछा में एक विशाल मेला चैत्र शुक्ल नवमी को, श्रीराम और केशवदास की जयन्ती के उपलक्ष्य में लगता है। ये दोनों महोत्सव यहाँ एक साथ बड़ी सजधज से मनाये जाते हैं।

केशवदास की पुण्य जयन्ती के शुभ अवसर पर बुन्देलखंड के साहित्य प्रेमीजन कवीन्द्र केशवदास के जन्मस्थान—जो अभी भी जीर्ण शीर्ण अवस्था में विद्यमान है—पर जाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

ओरछा भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्रों में से एक है। इसके सम्बन्ध में स्वयं कवीन्द्र केशवदास ने अपने काव्य में लिखा है

वारिये नगर और ओरछे नगर पर।

आचार्य कवीन्द्र केशवदास ने नगर की व्याख्या करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि नगर की मान्यता उस शहर को प्राप्त होती है जिसका राजा धर्म प्राण हो और जिसके पास पर्याप्त सैन्य शक्ति हो जिसकी सेवा में सौ महारथी एक सहस्र शूर तथा एक सहस्र सामंत एवं एक लाख भट हों।

इसके अतिरिक्त उस नगर में पंडित वैद्य कवि गायक नृत्यकार मूर्तिकार, चित्रकार और धनीमानी व्यापारी तथा जौहरी निवास करते हों।

उस नगर के भू भाग में वन उपवन पर्वत और सरिताएँ प्रवाहित होती हैं जिनके शीतल जल से तृप्त होकर शेर, तेंदुआ, साँवर, हिरण आदि वन पशु स्वच्छन्द विचरण करते हैं। जिस नगर का ऐसा स्वरूप हो उसको नगर की मान्यता प्राप्त होती है। कवीन्द्र केशवदास कहते हैं कि इस प्रकार से बसे हुए नगरों को हम ओरछा नगर पर न्योछावर करते हैं।

कवीन्द्र केशवदास के कथनानुसार ओरछा राज्य के राजाओं में धर्मप्राण राजा मधुकर शाह वीरसिंहदेव, चम्पतराय छत्रसाल पहाड़सिंह इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवियों में कवीन्द्र केशवदास, हरिराम व्यास चन्द्रसखी, राजधर मिश्र का विशेष स्थान है। यहाँ भवन निर्माण-कला के प्रतीक विशाल दुर्ग दुर्ग के प्राङ्गण में जहाँगीर महल, नृत्य महल आदि और समीप ही गगन चुम्बी श्री चतुर्भुज नाथ का मन्दिर स्थित है, और नृत्यकला में सर्वश्रेष्ठ प्रवीणराय तथा चित्रकला में भवानी नामक चित्रकार एवं मूर्तिकार इस राज्य की शोभा बढ़ाते रहे हैं। ओरछा नगर में पहले पंडित, वैद्य और धनी-मानियों की अपार गणना थी।

वन उपवन और नदियों के सम्बन्ध में जो कहा गया है वह भी सही है। बेतवा और जामनेर नदियों का संगम आज भी दर्शनीय है। समीप तुंगारण्य—वह बीहड़ वन जहाँ तुंग ऋषि ने तपश्चर्या की थी, विद्यमान है। यहाँ बेतवा के कंचना घाट का शीतल जल पीकर वन पशु स्वच्छन्द विचरण करते हैं।

हरदौल के लोकगीत—इतिहासवेत्ताओं की दृष्टि से बुन्देलखण्ड का अभ्युदय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। बुन्देले तथा चन्देल राजाओं द्वारा बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा के निमित्त बेतवा नदी के तट से नर्मदा नदी के तट तक कलापूर्ण मन्दिर प्रासाद दुर्ग, तालाब स्मारक निर्मित कराये गए थे।

इनमें महाराज वीरसिंह जू देव प्रथम के निर्माण कराये हुए बावन किले बावन महल बावन बावरी अधिक प्रसिद्ध हैं। इस गणना में झाँसी का दुर्ग दतिया का पुराना महल, चंदेवा की बावरी और दिनारे का सरोवर आता है।

इन्हीं महाराज वीरसिंह जू देव के पुत्र जुझारसिंह जू देव के लघु भ्राता हरदौल थे, जिन्होंने बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा के निमित्त हँसते हँसते विषपान कर लिया था। प्रथम उन्मेष में हम इनका आख्यान बता आये हैं। हरदौल के चबूतरे (स्मारक) इस प्रदेश के प्रत्येक ग्राम में आज भी विद्यमान हैं।

इस जनपद में हरदौल की यह गाथा भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपनी बहिन कुंजावती को मरणोपरान्त भात दिया था। हरदौल के ऐतिहासिक प्रमाण के

लिए यहां कुछ प्रचलित लोक गीतों की पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं

नजरिया के सामने तुम हमरे लाला रहयौ।
तुमने जनम लयौ एरछ में।
तुमरौ जाहिर नाव जगत में।
तुमने कीनों राज खल्क में।
जस दर्शन हमखों दीने,
ससेइ सबखों दइऔ।
नजरिया के सामने तुम हमरे लाला रहयौ।

इस लोकगीत में उनके जन्मस्थान, राज्य और दर्शन प्राप्ति की पुष्टि की गई है। दूसरे लोकगीत का और अवलोकन कीजिये

हमाये हरदौल लाला ऐसे गजत हैं
जसे इन्द्र अखाड़े।
पवन के हनुमत हैं रखवारे।
काना सो दल ऊनये हो
लाला काना कर मिलान।
बुन्देला देस के हो, रया राव के हो,
बेटा साव के हो, तुमरी जोय रही तरवार।
बिजली चमके चबल माय।

अर्थात् हमारे हरदौल लाला युद्ध में इस प्रकार गरजते हैं जिस प्रकार इन्द्र के अखाड़े में मल्ल गरजते हैं और रक्षा करने में भी वह इस प्रकार समर्थ हैं जिस प्रकार वायु के प्रकोप से श्री हनुमान रक्षा करते हैं। आगे यह जिज्ञासा प्रकट की गई है कि तुम्हारा सैनिक दल कहां से चला है और कहां पर पड़ाव डालेगा? हे देश के वीर बुन्देला! हे राजाओं के राजा हे श्रेष्ठ पुरुषों के वीर सुत! तुम्हारी बाट तलवार देख रही है क्योंकि चम्बल नदी की घाटी के मध्य बिजली की तरह शत्रु सेना दमक रही है। इस लोकगीत में उनके पराक्रम और युद्ध की अभिरुचि की पुष्टि होती है। आगे के लोकगीत की कुछ पंक्तियों का अवलोकन और कीजिये

जिन डारौ हो, लाला हरदौल झूला बिरछ प जिन डारौ।
जो तुम झूला बिरछ प डारौ, तुमरी आजी हो ठाड़ी पछताय।

इस लोकगीत में वात्सल्य भाव का समावेश है। लाला हरदौल को वर्जित किया जा रहा है कि तुम्हारी कुमारावस्था है तुमको वृक्ष की डाल पर झूला डालकर नहीं झूलना चाहिये। यदि तुम झूलोगे तो तुम्हारे गिरने के भय से तुम्हारी आजी के हृदय में यह आशंका बनी रहेगी कि कहीं हमारा लाड़ला गिर न पड़े।

अछरू माता का मेला—बुन्देल भूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य और यहाँ की प्राचीन संस्कृति का दर्शन वास्तविक रूप से बुन्देलखण्ड के पवित्र तीर्थ स्थान अछरू माता के मेले में ही होता है।

बुन्देलखण्ड की विशेषता यह है कि यहाँ पर छहों ऋतुएँ समय समय पर प्रकट होकर इस प्रदेश की प्रदक्षिणा किया करती हैं जैसा कि इस सवैया में वर्णित है

मलयागिरि की अत ऊंची पहारियाँ
बिंद की पारियाँ देख लजाउतीं।
धरती पै बुंदेल के जनमे धौं
जियें दे उनकी तिरियाँ ललचाउतीं।
कयें 'मित्र' जू तीनऊँ धरें सुगंद क,
बीजना लके डुलायबे आउतीं।
झुक झूमतीं लूमतीं पाँयन चूमतीं
छऊ रितु परकम्मा लगाउतीं।
(लोकगाथिनें पृष्ठ १०)

आपको मधु ऋतु का पूर्ण आनन्द इसी अछरू माता के मेले में मिलेगा। जब आप मड़िया ग्राम की सघन करौंदी की डाग (वन) में होंगे तब करौंदी के छोटे छोटे श्वेत पुष्पों की सुगन्ध आपको बरबस मोहित कर विश्राम करने को बाध्य कर देगी। यह मेला बीहड़ सघन वन पहाड़ी के मध्य आयोजित के नाम से चैत्र शुक्ल से एक माह तक रहता है।

इस मेले में बुन्देलखण्ड के रीति रिवाज, वेष भूषा और बुन्देली लोकगीतों का आनन्द सभी कुछ देखने और सुनने को मिलेगा। अछरू माता का यह मन्दिर ललितपुर और टीकमगढ़ के मध्य मड़िया ग्राम के निकट बीहड़ वन में अवस्थित है। इस स्थान की विशेषता यह है कि पठला (पहाड़ का एक सा भाग) पर एक जल कुण्ड बना है जिसकी गहराई का पता अभी तक नहीं लग सका है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कुण्ड की थाह लेने के सम्बन्ध में इस जन पद में यह चर्चा अवश्य है कि वीरसिंह देव प्रथम ने इस कुण्ड में अपनी बर्छी डाली थी जो कि कई महीनों पश्चात मीलों दूर वीरसागर में निकली थी।

इस मेले में बुन्देलखण्ड की संस्कृति का स्पष्ट दर्शन होता है। ग्राम जन अपनी-अपनी बैलगाड़ियों और गडरा सजाये हुए दूर दूर से इस मेले में आते हैं। सदियों से चले आ रहे यहाँ के रीति रिवाजों और प्राचीन त्योहारों का इन लोगों से अच्छा ज्ञान हो जाता है।

बुन्देलखण्ड में पहले ब्याह-सगाई जैसे सम्बन्ध ऐसे ही मेलों में निश्चित किये जाते थे। माता पिता लड़के और लड़की से बिना कहे सुने यह सम्बन्ध

तय कर देते थे और उनकी किशोरावस्था में ही विवाह हो जाया करते थे।

विवाह के समय टीका और दहेज भी कन्या का पिता अपनी इच्छा से ही देता था। वर का पिता किसी प्रकार की माग नहीं करता था। अविवाहित लड़किया बघेला घालती थी और विवाहित आंचल। विवाह होने पर जब लड़की ससुराल जाती थी तब वह घूघट घालकर जाती थी जिसे श्वसुर गृह की मर्यादा का पालन करना कहा जाता था।

स्त्रियां पुनः यह मर्यादा पालन करती थीं कि वह अपने नवजात शिशु को गोद में लेकर अपने माता पिता अथवा अन्य बुजुर्गों के सम्मुख नहीं निकलती थी। बहुत से घरानों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है।

विवाह के पश्चात जब वधू श्वसुर गृह से मातृ गृह को आती थी तब वह अपने आंचल को बघेला के रूप में कर लेती थी। यह पद्धति आज भी बुन्देलखण्ड के प्रत्येक ग्राम में अवलोकन करने को मिलेगी।

ग्राम्य जन प्राय घुटना तक रंगी हुई धोती, शरीर पर अगरखा या कुरता अथवा पूरी बाहों की बंडी (फतुई) पहने दिखाई देंगे। इसके अतिरिक्त सिर पर कनढपा (टोपा) अथवा साफा बांधे, गले में गलगन्दा (पिछौरा) और परों में नन्बूदार पनया (जूता) पहने होंगे। झब्बूदार पनया के पीछे एक ऐतिहासिक तथ्य है। इसका निर्माण राजा शिशुपाल ने करवाया था। शिशुपाल चन्देरी का राजा था। उसने श्रीकृष्ण के मुकुट को अपने जूते के अग्र भाग में लगवाने की दृष्टि से इस जूते का निर्माण करवाया था। झब्बूदार जूता वही कहलाता है। ग्राम्यजन आधुनिक युग में भी अधिकांशतः ग्रामों में ऐसा ही जूता पहनते हैं।

अभी जिस पोशाक का वर्णन किया गया है वह साधारण जनों की होती है। इसके अतिरिक्त यहां की रजवाड़ी पोशाक और ही है जिसे वे व्यक्ति पहनते हैं जिनको राज्य से किसी प्रकार का पद प्राप्त होता है।

रजवाड़ी पोशाक में दोनों लाच (लाग) लगी पांव के पंजों तक धोती लम्बा कतया या जरीदार अगरखा और सिर पर सेला या साफा, तथा कांधे पर लटकती तलवार या बन्दूक दिखाई देती है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही अन्तर है। साधारण घर की महिलाएँ हिरमिजी रंग की धोती का कछौटा मारे हुए, गले में चांदी की खंगौरिया हमेल और माथे की बेंदिया तथा माथे में टिकली लगाये होंगी एवं बांहों में चांदी के बिजुला बाजूबन्द और हाथों की कलाई में चांदी के बगुवा ककना, दौरा और चूरा पहने होंगी। पैरों में छीताफरी पजना तथा पैर की अंगुलियों में मोर की जनक के बिछिया पहने होंगी।

राज पद प्राप्त घरानों की महिलाएँ रेशमी या तीन खांप का लहँगा उसपर

चूनरी और उसके ऊपर रंगीन पिछौरा ओढ़े होंगी जिनके सर में माने की ल्लरी, बिजौरी निशानों अथवा तुर्री सुशोभित हो रही होंगी। हाथों में सोने के कंगना पटला और चूरा तथा पैरों में टीकमगढ़ी पजना पहने होंगी। यदि कोई महिला साथ या कोई आभूषण पैरों में पहने होगी तो समझना चाहिए कि वह किसी राजगढ़ी के सरदार की पत्नि होगी। किन्तु साधारण और असाधारण दोनों प्रकार की महिलाएँ परम्परानुसार घूँघट घाटे हुए ही इस मेले में दिखाई देंगी।

इस विशाल मेले में दूर-दूर के व्यापारी क्रय विक्रय करने आते हैं बुन्देलखण्ड में जो खाद्य वस्तुएँ उपजती हैं अथवा निर्माण की जाती हैं वे सब इस मेले में उपलब्ध होती हैं।

मेले में एक ओर चिरौंजी, धना जीरा, मिर्च, महुआ आदि का बाजार लगा होगा तो दूसरी ओर गाढ़ा (खादी), लूगा कमची और ऊनी कम्बलों का तीसरी ओर महावर जपौरा, महरौनी टीकमगढ़ आदि में निर्माण किए गए पीतल, कांसे के बर्तनों का। चौथी ओर कास अथवा पीतल के ढले हुए कला पूर्ण रजवाड़ी साज से सज्जित हाथी घोड़ा ऊँट रथ आदि खिलौना था।

यहाँ के ये खिलौने इतने कलापूर्ण होते हैं कि सारे भारतवर्ष में इनकी खपत है और स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त तो इनकी ख्याति विदेशों तक फैल गई है। एक और बड़ी आश्चर्यजनक बात का मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ। यहाँ की स्त्रियाँ पैरों में जो पजना चूनरी पहनती हैं वे विदेशों में सिगरेट के विश्राम पात्र (ऐश ट्रे) के रूप में परिवर्तित होकर शोभा पा रही हैं।

इस मेले में पशुओं का जो बाजार लगता है उसकी ख्याति अन्य प्रान्तों तक में है। इस बाजार में अच्छी नस्ल के घोड़े बैल बिक्री के लिए आते हैं। इनकी कीमत एक हजार से पाँच हजार तक होती है।

जिस लोक साहित्य का मैंने पहले उल्लेख किया है वह इस मेले में ग्राम वधटियों के मुख से श्रवण करने को मिलता जिसे प्रत्येक पथिक रुककर सुनने को विवश हो जाता है।

श्रवण कीजिए यह ग्राम युवतियाँ पाली बाँधकर लोकगीत गा रही हैं

> अरे हाँ बिरहुलिया के गाड़े बरा ढोले भये।
> अरे हाँ बिरहुलिया की क घर सास दुसायता,
> उर के ननदी के बोल
> बिरहुलिया के गाड़े बरा ढोले भये।

भावज अपनी सहेली से यह भाव व्यक्त कर रही है कि हमारी ननद जो हाथों में बरा (चाँदी का बाहों में पहनने का आभूषण) पहने थीं वह उसके किसी कष्ट के कारण उसके हाथों में ढीले पड़ गये हैं। उत्तर में सहेली कहती

है कि तुम्हारी ननद की सास दूसरे विवाह की सौतेली होगी या उसकी ननद व्यंग्य भरे कटु वचन कहती होगी। यह सुनकर भावज सहेली से फिर कहने लगती है

> अरे हां बिरहुलिया की न घर सास दुसांयती,
> उर ना ननदी के बोल,
> बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये।
> अरे हां बिरहुलिया क घर तनक से बलमा,
> उर वाही की भारी सोच।
> बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये।

सहेली न ता ननदी की सास ही दूसरे विवाह का है और न ननद ही व्यंग्य भर कटु वचन बोलती है। अनमेल विवाह के कारण उसको पति अबोध मिले हैं। इससे वह चिंताग्रस्त हो दिन प्रतिदिन शरीर से दुबली होती जाती है। एस भाव पूर्ण लोक गीतो का आनन्द आपको बुन्देलखण्ड के अछूत माता के मेले म ही प्राप्त होगा।

# वसन्त ऋतु के लोकगीत और सरस्वती आह्वान

ऋतुराज वसंत का आगमन देख बुन्देलखण्ड के वन प्रागण म करधई कोकेर कवा (अर्जुन वक्ष) कचनार महुआ आम और अन्य वक्ष के फूल प्रफुल्लित हो उठते हैं और पलाश तो ऐसा फूलता है माना पिछला वैर सम्हाल कर वियोगिनियो म विरह की आग लगाने को ही उद्यत हुआ हो किन्तु उन्ह कुछ दिनो के लिए बचा लिया वन के इस उदार वक्ष न जिसकी प्रत्येक डाली पुष्पो के भार से भारावनत हो रही थी। उस पर पुष्पो या श्यामा और वह कमल म बन्दी होने वाला स्वार्थी भ्रमर कहा! वह छोटा भौरा पक्षी, जो ठाक भ्रमर सदृश होता है, वन के पुष्पो के पराग का पक्षियो का सदेश देकर सामूहिक रूप से रस गंध और माधुर्य का आनन्द ले रहा था लेकिन कुसुम धनु ताने अप्रत्यक्ष रूप स कामदेव आ ही गया और समस्त भूत प्राणियो म व्याप्त हो गया जिसके आघात से बचारी ग्राम वधू जिसे ऐसा ही आघात सहना पडा था विरह वेदना स व्याकुल होकर बिलख बिलखकर यो कहन लगी

> चना मैंने बागर जोत बये।
> जब बे चना भये दो-दो पतउअन,

सौतिन खोंट लये।

चना मैंने बागर जोत बये।

जिस प्रकार पड़ती भूमि को किसान अपने अथक परिश्रम द्वारा उवरा बनाकर उसमें चने के बीज बोता है और चनों के पौधा में जब दो दो दल प्रस्फुटित होने लगते हैं तब मनचले पथिक उनको खोंट लेते हैं, ठीक उसी प्रकार की अवस्था इस ग्राम्य वधू की हुई। उसने अपने जीवन की साधना शक्ति अपने जीवन धन यानी पति को प्राप्त करने में लगाई थी। और जब उसे सिद्धि प्राप्ति की आशा हो रही थी तभी उसकी व्यवहारकुशलता और सुन्दरता से ईर्ष्या करने वाली किसी कुपथगामिनी (कुलटा) स्त्री ने उसके पति को अपने चंचलता पूर्ण व्यवहार और कामलिप्सा के छद्मवेषी जाल में फंसाकर उसके कोमल किसलययुक्त चने के दो दलों (पति के हृदय को) को खोंटकर, मोहित कर नष्ट कर दिया था जिससे वह व्याकुल हो रही थी।

भावज की इस विरह-व्यथा को देखकर उसकी ननद आकर उसके विकल मन को यों संतोष देने लगती है

कसी भौजी अनमनी कसो बदन मलीन।

कसे ननों लाल दोउ, कसो भौं छब दीन।

मनयारे की मनि लई क काऊ ने छीन।

क हिरना हिरनी तजी क मांजो ब्यापो मीन।

भावज! तुम अंतस मन में क्या दुखी-सी दिखाई पड़ रही हो? तुम्हारा यह कमल वदन क्या कुम्हला गया है? ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे किसी मणि वाले सर्प की मणि का किसी ने अपहरण कर लिया हो। या वन में किसी बहेलिया ने हिरण को अपने जाल में फंसाकर हिरणी से उसका विछोह कर दिया हो। या वर्षा की प्रथम बूंदों (मांजा) से पीड़ित मीन की भांति कोई पीड़ा तुमको व्याप्त है।

यह स्वाभाविक है कि जब कोई भावुक मानव अगाध वियोग-सागर की गहराई में गोता लगाकर मानो मोती की खोज करता है तब समुद्र-अन्तस्तल के बुद्बुद ऊपर उठ उठकर लहरों में अपनी करुण व्यथा कहने में सन्ताप का स्वयं अनुभव करते हैं। ठीक यही अवस्था उसकी भावज की हुई। वह अपने मनोभावों को न रोक सकी और अपने आँचल द्वारा आँसुओं को पोंछती हुई ननद से कहने लगी

बिन्नूल! तोरे बोल धूल भय मोय।

तुम्हा को बिरवा निम डारों

तब सुगारो हाथ।

बिन्नूम! तोरे बोल धूल भये मोय।

जो जो मूल सये जा तन मे
का का कउ में रोय ।
विरहुल ! तोरे बोल फूल भये मोय ।
सास ससुर की करी खुशामद
रोजई पावन धोय ।
विरहुल ! तोरे बोल फूल भये मोय ।
हार सजोओं जिनके लाने
मन मुतइन खा पोय ।
विरहुल ! तोरे बोल फून मये मोय ।
हौत सयाने भये विराने
बीज बिथा की बोय ।
विरहुल ! तोरे बोल फूल भये मोय ।

इस लोकगीत मे लोकजीवन में घटित अनमेल विवाह की घटना का सही स्पष्टीकरण हुआ है। वियोगिनी भावज न अपने शब्दो द्वारा ननद से तुलसी के बिरवा को जल चढाने, सास-ससुर की सेवा करने और पति के लिए मन मोतियों के हार सजोने का जो उल्लेख किया है वह सब उसकी सतत प्रेम साधना का प्रतीक है। लेकिन जब उसका पति यौवनावस्था म आता है औ वह किसी अन्य स्त्री के प्रेम बन्धन म बँध जाता है तब इससे अधिक कष्ट कारक दुख नारी जीवन म और क्या होगा ! यही उसने अपनी ननद पर प्रकट किया है। उसकी इस विरह व्यथा को सुनकर ननद उसको धैर्य देने लगती है

चना खुटे खुट जान द भाग न खोटो होय।
खुटत चना दिन दिन बढ़ें भर हैं मन की खोय।

भावज ! चना के कोमल नवीन पत्तो को यदि किसी ने खोट (नोच) लिया है तो कोई चिन्ता की बात नही क्योकि चने का पौधा तो खुट जाने पर भी दिन प्रतिदिन दुगुना हरा भरा और फूलता फलता है। तुम्हारे प्रियतम तुमको निकट भविष्य म फिर प्राप्त होगे जिसस तुम्हारी मन रूपी खाय (अनाज भरने का स्थान) शीघ्र भर जायगी। इसके उपरान्त ननद भावज म कुछ मर्म की बातें कहकर फिर समझाती है

लाख टका की बात मैं तुमसौ कऊ निबेर।
जल उर कुल खां मिलत मे निठुवां लगत न देर।
राखें रूऔ बात खां तुम कुलवन्ती नार।
अपनी लाज न भर को अपनी जाग उघार।

जा बसन्त रित होत है सांचउ क वे पीर।
तजत समाद समाधिया, धीर होत वे धीर।

भावज! तुमसे मैं लगाम से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहती हूँ। जल और कुल को मिलन म विलम्ब नहीं लगता और तुम तो अति प्रतिष्ठावान कुल की वधू हो। अपनी नीची बात कहन म स्वय लजाती हो। जो पति म भूल हुई है वह ऋतुराज बसन्त के प्रभाव क कारण हुई है क्योंकि इस ऋतु की शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु के झोंके मनुष्य की क्या गणना समाधिस्थ ऋषि मुनियो की समाधि तक छुड़ा देते हैं और ज्ञानी पुरुष अज्ञानी बन मोहित हो जाते हैं।

माँ सरस्वती के आह्वान के सम्बन्ध म जो प्रथा बुन्देलखण्ड म प्रचलित है अब हम उसका उल्लेख करेंगे। भारतीय मनीषियो के मत से प्रत्येक ऋतु का आगमन अपने समय से लगभग एक मास पूर्व ही होता है। जैसे ज्येष्ठ *कृष्ण अमावस्या को बरसात का त्योहार मनाया जाता है और बरसात प्रारम्भ* होती है अषाढ़ से। उसी प्रकार बसन्त ऋतु का आगमन माघ शुक्ल पचमी को होता है और बसन्त ऋतु चैत्र से प्रारम्भ होती है। इसके अतिरिक्त विद्वानो का एक निश्चित मत यह भी है कि जब जब भक्त साधना युक्त आराधना करते हैं तब-तब पृथ्वी पर महा शक्तियो का आविर्भाव होता है और जब जब महा शक्तियों का उदभव होता है तब तब आगामी ऋतु उस मगल महोत्सव म अगवानी के लिए पहले ही आती है।

इसी दृष्टि से माता शारदा के जन्मोत्सव का आनन्द प्राप्त करने के लिए बसन्त ऋतु एक मास पूर्व ही उपस्थित होती है और यह उचित भी है क्योंकि बसन्त ऋतु जिस प्रकार सब प्राणियो को आरोग्य प्रदान करती है, उसी प्रकार माता सरस्वती सब कलाओं और सब विद्याओ की दायिनी हैं।

कवि कुलगुरु कालिदास ने ऋतु सहार काव्य म बसन्त वर्णन करते हुए लिखा है

द्रुमा सपुष्पा सलिल सपद्म,
स्त्रिय सकाम पवन सुगन्ध सुखा
प्रदोषा दिव साश्चरम्य
सब प्रिये चारुतर बसन्ते ॥

बसन्त पचमी से ही बसन्त ऋतु का आविर्भाव होता है और चैत्र मास तक इसकी सीमा है— मधु बसन्त चैत्रेच। इस ऋतु म नयी चेतना, नव *जागृति तथा नये सस्कारों का* सचार होता है। गीता म भी भगवान कृष्ण ने विभूतिपाद योग अध्याय म अपने को ऋतुना कुसुमाकर ही कहा है। इसी ऋतु म फूल फूलने और सरोवरो म कमल विकसित होते हैं। ऐसी चेतना और

स्फूर्ति प्रदायक ऋतु म बुदेलखण्ड मे माता शारदा का जन्मोत्सव होना स्वाभाविक ही है।

अवलोकन कीजिये माँ वीणा पाणि भक्त के वशीभूत होकर अपन वाहन हस पर बिना सवार हुए ही, अति व्याकुल 'उपायन पायन' ही पधारी है। यह उक्ति बुदेलखण्ड के यशस्वी कवि स्व० नरोत्तमनाम पाण्डेय 'मधु' रचित निम्न छन्द म भली भाति परिलक्षित है

टेरयौ जब 'मधु' ने जननी कहि
है अनुरक्त सुभक्ति अधीना।
पाय पयादे प्रमोद पगी चली,
हसहू कौं निज सग न लीना।
धाय क आय गई अति आतुर,
चार भजा यौं सजाय प्रवीना।
एक मे पकज एक मे पुस्तक
एक मे लेखनी एक मे बीना।
(दैनिक भास्कर ग्वालियर वि० २६ जनवरी १९६० पृष्ठ ७)

मा शारदा के पदार्पण करते ही, कला प्रेमियो के हृदयो म ललित कलाए और कवियो के हृदयो मे काव्य की मधुर ओजमयी कल्पनाएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं

कवियों की कल्पना प्रकाशमयी वाणी सुन,
अधम उलूक उडगण लजने लगे।
त्रिविधि सुगन्ध सनो बहने समीर लगी,
शुक अलि कोकिलों के कठ भजने लगे।
मित्र' मत मोद मान पुष्प पल्लवो की गोद
स्वर्ण रश्मियो से मजु पुष्प सजने लगे।
वीणा धारिणी के कज कोमल करों में
वर-वीणा के सुरीले तार तार बजने लगे।

मा वीणा पाणि की वीणा के सुरीले तार झकृत होते ही समस्त प्राणियों के हृदयो म आनन्द की नवीन चेतना अनुप्राणित होने लगी। अवलोकन कर कुसुमायुधधारी कामदेव मदमग्ध हो वसन्त ऋतु द्वारा जड चेतन म रस सचार करने लगे। फलस्वरूप विरहिनियो के धैर्य का बाध टूटने लगा। बुन्देलखण्ड के विख्यात कवि स्व० काली कवि रचित इस छन्द म यही वर्णन द्रष्टव्य है

अगन आग मनोभव की यह,
जाग परेगी पराग के धूलन।

टूक करेजन को करिहै, यह
कोकिल कूक की हूक की हूलन ।
कालों' भला कहियो उनसों अब,
आय बसंत गयो वन कूलन ।
स्वास उसासन हो उड जायगी,
लाश जरगो पलास के फूलन ।

अब क्या था वसन्त ऋतु के पदार्पण करते ही शिशिर प्रकोप से सिकुडे हुए वन प्रांगण के वृक्ष और वल्लियों में नवीन कोपलों के अंकुर फूटने लगे और विन्ध्यगिरि की बीहड घाटियों में करौंदी मकोरा आदि के छोटे छोटे बिरवा पनप उठे। वर्षाकाल से रुद्ध कोकिला के कोमल कंठों में सुमधुर स्वर गुंजित होने लगा। नीरस हृदयों में नवीन मधु रस का संचार होने लगा, किन्तु यही सब सुख के साधन पथिकों और विरहिणियों को विरह की दारुण व्यथा देने लगे तपस्वियों की तपस्या भंग करने लगे। लोक कवि स्व० ईसुरी का यह वर्णन देखिये

अब रितु आई बसंत बहारन,
पान फूल फल डारन ।
बागन बनन, बंगलन, बेलिन,
बीथी नगर, बजारन ।
हारन हद्द, पहारन, पारन,
धवल धाम जल, धारन ।
तपसी, कुटी, कंदरन माहीं,
गई बैराग बिगारन ।
ईसुर अंत कंत हैं जिनके,
तिनें देत दुख दारुन ।

ऋतुराज का प्रभाव केवल वन बाग, वीथियों में बगर और हार पहाड तथा सरिताओं की धवल धाराओं एवं कन्दराओं तक ही सीमित नहीं रहा, वरन वह तपस्वियों और वैरागियों तक भी फैल गया। इसके अतिरिक्त उन विरहिनियों की व्यथा का तो वर्णन ही क्या किया जाय, जिनके प्रियतम घर में नहीं हैं। उनको तो वसन्त की बहार दारुण दुख देती ही है।

वसन्त के आगमन पर सभी नगरों और ग्रामों में मेले भरने लगे। इन अनेक मेलों की भांति एक विशाल मेला बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थान अमरगढ़ के समीप नाद नगिया ग्राम में और दूसरा पुष्पावती के तट पर उनाव ग्राम में भरता है। उनाव बुन्देलखण्ड का प्रमुख तीर्थ स्थान माना जाता है। यहाँ श्री बालाजी (सूर्यदेव) का मन्दिर है। इस स्थान पर प्रसिद्ध तांत्रिक अमरसिंह भैयरा ने तांत्रिक सिद्धि प्राप्त की थी।

यहाँ फाग के मेले म तो ऐसा प्रतीत होता है कि भूतल पर स्वग उतर आया हो। चारो ओर ग्रामीण युवक और युवतियो द्वारा रग गुलाल की मारा मार होती है। कोई भी व्यक्ति बिना रग गुलाल के बच नही सकता और जहा सध्याकाल हुआ कि नगडिया पर चोट पडी। अब क्या है लोक कवि ईसुरी की फागो का समा बधने लगा। ढोलक, नगडिया कीगिडी और थाप की मधुर झकार क स्वरा म स्वर मिलाकर चारो ओर से फागो का मधुर रस भाव गूजन लगा।

बुन्देलखण्ड म माघ मास से फाल्गुन मास तक बसत तथा होली उत्सव बडी धूम धाम क साथ मनाया जाता है। देखिय य किसान युवतिया की टोली पाली बाँधकर अपन कोमलकान्त स्वरो द्वारा बसत गीत गा रही है

सखि आई बसत बहार
कुइलिया कूक उठी।
फूलन लद गइ विध्य पारियाँ।
बौर भार लद गइ डारिया।
नगई नोंनी नई नारिया।
सज - रूप के भार।
कुइलिया कूक उठी। सखि
खेतन मे सरसों है फूली।
डोंगन फूली सखा टूली।
फूल करोंदी मद मे भूली।
फूल उठी कचनार।
कुइलिया कूक उठी। सखि
गद मिलीनी वर भोर सो।
देत झकोरा चऊ ओर सों।
मन ठग लेतइ जगा पौर सों।
मार विरह की मार।
कुइलिया कूक उठी। सखि

सजनी! बसत की बहार चारो दिशाआ म छा गई है जिसके प्रभाव मे कोकिल मधुर स्वर म कुहू-कुहू शब्द कर कूजने लगी है। पवन श्रेणिया रग बिरग वन पुष्पो क भार स लद गइ हैं। नव युवतिया अपन स्वाभाविक सौंदय म युक्त गई ह। खेतो म सरसो और वनस्थली के मध्य शखपुष्पी तथा करौंदी क श्वेत पुष्प छिटक उठ हैं। इसक कारण यह त्रिविधि सुगध मनी वायु प्रात काल स आकर पौर (गृह का प्रथम कोष्ठ) म एसा धाका देता है कि मेरा मन विरह-वेदना स व्याकुल हो उठता है।

यह था युवतियो द्वारा गाया जाने वाला बसंती लोकगीत। अब युवकों द्वारा गाये लोक कवि 'ईसुरी' के फाग का आनन्द लीजिये

अखियाँ जब काऊ सों लगतीं।
सब सब रातन जगतीं।
झपतीं नईं झीम न आय,
क्यू उसनीदीं भगतीं।
विन देखें जे दरद दिमानी
पके घता सौं दगतीं।

ये अनियारी आँखें जब किसी से प्रेम करने लगती हैं, तब इनको रात्रि भर जागते ही जाता है। न ये फिर झपती हैं, न झुकती हैं। ऐसी अवस्था में यदि प्रेमी हाँ' कह दे तो ये उनींदी ही उसके पीछे भागती हैं और कदाचित प्रेमी का दर्शन इनको प्राप्त न हो तो उनमें उस विरह के कारण पके हुए फोड़े जैसा दर्द होता है। इस फाग के बंद होते ही दूसरे फड़ की टोली रजकी का फाग गाने लगती है।

देखो रजउ उतै पटियाँ पार,
सिर सबहार उघार।
भौंतिन माँग भरी सेंदुर सों
बेंदा लेत बहारें।
ठाँडी हतीं टिकीं चौखट सौं
सेजईं अपने द्वार।
काम, समर में सिर काटन सौं
खोंस दो तरवारें।

लोक कवि ईसुरी ने 'रजउ' शब्द का प्रयोग कहीं ईश्वर और कहीं प्रेमिका के अर्थ में किया है। लेकिन भाव एक सा ही प्रतीत होता है क्योंकि सच्चे प्रेम की परिभाषा प्रेमी अथवा प्रेमिका के रूप में जिन साहित्यिक तथा अध्यात्मवाद के आचार्यों द्वारा की गई है उसमें ईश्वर की तुलना सत्य प्रेम से की गई है जो प्रेमी अथवा प्रेमिका के हृदय में व्याप्त रहता है।

यहाँ प्रेमी कह रहा है कि हमने अपनी प्रेमिका को पटिया काढे और पूरा सिर उघारे हुए देखा। उनकी माँग मोतियों से गुथी हुई और सिंदूर से भरी हुई थी तथा उनके सुन्दर माथे पर जड़ाऊ बेंदा दमक रहा था। वह अपना पूर्ण शृंगार किये हुए सहज भाव से द्वार की चौखट से टिकी खड़ी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उनकी दो सिर की पटिया थीं या काम समर में कामी का सिर उतारने के लिए दो तलवारें थीं।

बुन्देलखण्ड के पावन अंचल में ऋतुओं के स्वागत उपलक्ष्य में होने वाले

ये सास्कृतिक और साहित्यिक मेले इस सारे जन पद को सदव आनन्द की मुखर प्रेरणा एव अनुभूति प्रदान किया करते हैं।

# ग्रीष्म ऋतु के तीज-त्यौहार, व्रत, मेले और लोकगीत

**अक्षय ततीया**—अक्षय ततीया का महत्त्वपूण त्यौहार वशाख शुक्ल ततीया को बुन्देलखण्ड के प्रत्यक शहर और ग्राम म बडे उत्साह एव उल्लास के साथ मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड की पावनभूमि ऋतुराज वसन्त की विदाई ऋतु वन प्रागण क हरित पल्लवित वक्षो को प्रोत्साहित कर रही थी। पवन देव अपने शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु के झोको से प्राणियो के हृदयो को हर्षोल्लसित कर रहे थ।

बरुआ सागर की पहाडी अपनी प्राचीन परम्परानुसार स्वण मुकुटो को सजाय हुए अभिवादन करने को प्रस्तुत थी। वन-पथ करादी की मन्द-मन्द भीनी गन्ध मे भर गया था। आम्र और महुए के वक्षा न अपने हरित पल्लवो म भेंट के लिए फूलो का सजो लिया था। मल्लिका ने भी माना आरती उतारन के लिए अपनी कोमल डालियो के करो म वत पुष्पो को सुसज्जित कर लिया था।

सूयदव की स्वण रश्मियाँ बिखरते ही प्रत्येक द्वार उरन (पोतकर लीपना) गिरन से सुशोभित होन लगा था। घर आगन भी धेनु के हरे गोवर से लिप गय थे। उस पर रागोडा द्वारा अनक प्रकार के चौक पुर गय थे। कन्याएँ अपन हाथो द्वारा बनाई हुइ कलापूण पुतलियो का श्रृगार करके पूजन की उमग म फूली नही समा रही थी। नवयुवक भी अपनी अपनी रग बिरगी पतगो म कन्ना बाधकर उडान और लडाने क चावा स भर थे क्योकि अकती (अक्षय ततीया) का आज पावन त्यौहार था।

बुन्देलखण्ड की प्राचीन परम्परानुसार देवर हर्षोन्मत्त हो चमरा क गम्ब ल्डारे ल्योदर लिय अपनी अपनी भावजो म पतियो के नाम पूछन को उल्लसित और आतुर थे। सायकाल होते ही ग्राम की प्रत्येक गली आनन्दपूर्ण लोकगीतो से गूजन लगी। सभी बाल वद्ध हृदयो म नवीन उत्साह लिय अकती का त्यौहार मनाने म तल्लीन थे।

अक्षय ततीया की इस प्रदेश म प्रचलित पौराणिक कथा इस प्रकार है। देवताओ के अनुरोध करने पर कामदेव न अपने तीक्ष्ण कुसुमशरों स भगवान्

शंकर की समाधि में विघ्न उपस्थित कर दिया। नेत्र खुलने पर उन्होंने देखा कि संसार के ये सब चेतन तथा काम के वशीभूत हो रहे हैं। तब अति क्रुद्ध हो उन्होंने अपना ज्वालामय तीसरा नेत्र खोला जिससे कामदेव क्षणभर में जलकर भस्म हो गया।

पति वियोग से दुखित होकर रति स्वयं शंकर की शरण में जाकर पति को पुनः प्राप्त करने की प्रार्थना करने लगी। औढर दानी शंकर ने बिलखती हुई रति को अभय अभय वरदान देते हुए कहा कि आज से तेरा पति अनंग (अतनु) रूप में रहकर विश्व के प्राणियों में चेतन इच्छा भाव से ही व्याप्त होगा। तभी से यह अक्षय तृतीया का त्यौहार चैत्र शुक्ल तीज से पूर्णिमा तक बड़ी सज धज के साथ मनाया जाता है। भगवान् शंकर ने कामदेव को अनंग नाम से सम्बोधित किया था। इस कारण आज के दिन देवर और ननदें सुगन्धित पुष्पों से लदी वल्लरी की टहनी बनाकर अपनी अपनी भावजों को मार कर उनसे उनके पतियों का नाम पूछते हैं। इस त्यौहार से सम्बन्धित आध्यात्मिक तत्व से परिपूर्ण यह लोकगीत इस जनपद में प्रचलित है

हँस हँस पूछें देवरा सिया जू सों,
 कहा पिया को नाव जू।
कौन वरन देइया कौ के बस रउत
 बसन को गांव जू।

देवर मायास्वरूपा जगतजननी श्री जानकी से विनोदभरे शब्दों में पूछ रहे हैं कि तुम्हारे पतिदेव का क्या नाम है? ध्यान दीजिए, जिसका पति जगत पति है अनेक नामों से पुकारे जाने पर भी अनामी है, और अनेक देह धारण करके भी विदेह है तथा जो भक्तों के वश में होने हुए भी बन्धन मुक्त है एवं प्रत्येक प्राणी के हृदय में वास करता हुआ भी आश्रयरहित अनिकेत है उसका क्या नाम है? क्या धाम है? कितना सुन्दर भाव है इस लोकगीत का। इसके अतिरिक्त एक और लोकगीत में कवि का भाव चयन देखिए यहाँ बुन्देली वीरों की गाथा का विशद वर्णन है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

जिन पूछौ दतिया के दिमान
 नाव पिया को जिन पूछौ।
मेरे पिया की सुनत गजना,
 चौंकत रय दिल्ली के सुल्तान।
नाव पिया को जिन पूछौ,
 जिन पूछौ दतिया के दिमान।
नाव पिया को जिन पूछौ
 मोरे पिया की कुल कीरत के।

झूम रये धरती प निशान,
नाव पिया को जिन पूंछो ।
जिन पूछो दतिया के दिमान,
नाव पिया को जिन पूछो ।

बुन्देलखण्ड क राज्य मे सैनिकों को वीरतापूर्ण काय करने पर 'दिमान' की पदवी से विभूषित करने की प्रथा थी। उनके पति दतिया के दिमान' की पदवी से विभूषित थे।

इसीलिए वह अपने देवर से 'दिमान सम्बोधित करके कह रही है कि तुम मेरे पति का नाम क्या पूछत हो ? रण म मेर पिया की हुकार और गजना सुनकर दिल्ली क सुलतान तक चौंकते थे। और उनकी वीर भुजायें रण म शत्रुओं का सदव मान मदन करती रही हैं। उनकी कुल की कीर्ति क चिह्न सदैव पृथ्वी पर झूमते रह हैं।

वसन्त ऋतु बीत जाती है। ग्रीष्म की लू-लपटें विरहिणियो के हृदयो को झुलसाने लगती है। इस समय एक सखी को वियोग म दुखी देख उसकी सहेली कहने लगती है

डावन सूख चुनरिया,
उर वन सूख कचनार ।
गोरी धन सूख मायक,
काऊ हीन पुरख को नार ।

जिस प्रकार छत पर धूप म साडी सूखती है और जिस प्रकार वन मे बिना प्रयोग के कचनार की कलिका भी मुरझा जाती है ठीक उसी प्रकार रस हीन पुरुष (क्लीव) की पत्नी भी विरहाग्नि म जलते जलते मात गृह म रहत रहते, सूख जाती है

लूह लपट सों सूखतइ ज्यों,
नदियन की धार ।
ताकों लख दुख तलयन,
छाती होत दरार ।

जब ग्रीष्म ऋतु की तप्त वायु से नदिया की धाराओ का प्रवाह बन्द हो जाता है, तब उसके दुख म दुखित होकर छोटे छोटे तालाबो क हृदया मे भी सूखकर दरारें पड जाती हैं। कितना सुदर करुण भाव इस लोकगीत म प्रदर्शित किया गया है

जसे ग्रीषम लपट सों
होत पहार अगार ।

लगे विरहानल लपट,
जरत वियोगिन नार ।

जिस प्रकार ग्रीष्म काल में तपकर पहाड़ अग्नि के आकार सदृश प्रतीत होते हैं उसी प्रकार विरह रूपी अग्नि के झोंकों से वियोगिनी स्त्री का हृदय भी जल जाता है ।

एक दूसरे लोकगीत का भाव और अवलोकन कीजिए । इसमें विरहिणी भावज ननद से अपनी मन व्यथा का वर्णन कर रही है

ननद बाई कैसे के धीर धरौं,
गओ बसन्त रितराज मसूकें ।
ग्रीषम लागे जरौं ।
ननद बाई कैसे के धीर धरौं ।
तपो तलयन की ओगत भइ
तिन सों हेत डरौं ।
ननद बाई ! कैसे के धीर धरौं ।
छुईमुई की नाइ ननद मन
कुल की लाज मरौं ।
ननद बाई ! कैसे के धीर धरौं ।
तुमइ कओ जा जोवन नया
का विध पार करौं ।
ननद बाई ! कैसे के धीर धरौं ।

ननद ! तुम ही विचार करो कि मैं पति के विलग रहने पर किस प्रकार हृदय में धैर्य धारण करूँ । बड़ी कठिनाई से बसंत बीता । अब ग्रीष्म जलाने को आ गया और उसके आते ही इन शीतल जलाशयों की उसने अपने प्रकोप से जो दुर्गति की है, उसको देखकर मैं अपने हृदय में अत्यन्त भयभीत हो रही हूँ । और कुल की लज्जा रखने के लिए मन को इस प्रकार मारे रहती हूँ, जिस प्रकार वन में छुईमुई किसी की छाया पड़ने से मुरझा जाती है । किन्तु ननद तुम स्वयं विचार करो कि इस प्रकार मेरी यह जीवन नैया कैसे पार होगी ?

ननद बड़ी चतुर थी, वह भावज को भाव भरे शब्दों में यों समझाने लगी

जैसे बीत बसंत गओ तैसें ग्रीष्म बिताय ।
नदियन को तो का चली सुरिया लौं भर जाय ।
जो बिरछा झुरसा गये लपट लूह अगार ।
वे हरया के फूल हैं, करहें भमर गुंजार ।
जिन बिरछन की छाँय में पछी बिलम न पाँय ।
तिन बिरछन की छाँय बस रोज फूल फल खाँय ।

जे धन बिलम बिसूर रइ उरिया की परछाय।
वे धन बलम निहोर है बइ उरिया[1] की छाय।

ननद ने भावज को चिर शाश्वत भावना द्वारा आश्वासन दिया कि भावज! जिस प्रकार वसन्त बीत गया उसी प्रकार ग्रीष्म भी बीत जायगा और जो तुम कहती हो कि ग्रीष्म के प्रताप से तालाब, सरिताएँ आदि सूख गई है सो अब शीघ्र ही वर्षा के लगते ही नदियाँ और तालाबों की क्या झुरियाँ (गगरा का लघु रूप) तक भिरन लगेंगी। जो वृक्ष तप्त वायु के झोकों से झुलस गये हैं वे वृक्ष हरे भरे होकर फूल फल देंगे और उनपर पक्षीगण कलोल करेंगे तथा भ्रमर मधु का पान करके तृप्त होंगे।

इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ पति वियोग में अपने अश्रुओं को बहाती रहती हैं और उरिया की छाह में खड़ी पति की प्रतीक्षा किया करती हैं वे सभी अपने प्रियतम के साथ उसी छाँव में वर्षा की जलधारा से भीगती हुई मनुहार करती दृष्टिगोचर होंगी।

# वर्षा ऋतु के तीज त्योहार, व्रत, मेले और लोकगीत

ग्रीष्म ऋतु व्यतीत हुई और वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में जेठ दोगरे पड़ने लगे (जेठ मास में पड़ने वाली बड़ी बड़ी बूँदें)। बादल गरजने लगे किन्तु वियोगिनी भावज को अपने जीवन धन ने दर्शन नहीं दिये। हाँ, दर्शन दिये उन काले कजरारे भयावने बादलों ने जो उसकी विरह व्यथा को गरज तरजकर और बढ़ाने लगे। ठीक यही हाल उन बड़ी बड़ी बूँदों ने किया जो अम्बर से धरती पर स्वयं गिरीं और उस बेचारी वियोगिनी के मन को भी ले गिरीं।

अभी तक तो उसको सन्तोष देने के लिए उसकी ननद उसके पास थी, किन्तु अब वह भी अपनी ससुराल चली गई। उसके आने में एक मास का विलम्ब है। वह सावन मास में रक्षाबन्धन के अवसर पर आयेगी। तब तक उसको कौन धैर्य बंधाये! इस कारण वह अपनी विरह व्यथा आकाश में छाये हुए काले बादलों को ही सुनाने लगी

ओ कजरारे बादरा सुनियों मो सदेस।
मो दुखिया के छाय हैं सजना काऊ देस।

---

१ उरिया—वर्षा तथा धूप बचाने के लिए द्वार पर उरई की सींकों द्वारा बनता है।

कारो रूप डरावनों अपनों होंई दिखाय।
जी डर सर्मा आ मिलें ऐसो रचो उपाय।
पालन पोषन सबन को करतई नेव निभाय।
हरियाउत धरती सबइ निज बुंदिया बरसाय।
गरज तरज, घनघोर धुन होंइ जाय सुनाय।
अपनी बिरहुल बीजुरी होंई जाय चमकाय।
मो दुखिया की तुम करो इतनी कऊँ सहाय।
तो आंखन मे राखहों कजरा तुमे बनाय।

हे काल बादलो! मुझ दुखिया का यह सन्देश सुनो! मेरे पति किसी अन्य प्रदेश में छाये हुए हैं। इस कारण तुम अपना यह भयावना रूप उस प्रदेश में दिखाकर ऐसा उपाय रचो जिससे मेरे पति घर आ जाएँ क्योंकि तुम प्राणीमात्र पर एक सा स्नेह रखने वाले म हो। मेरी विनती है कि यह अपना घनघोर गर्जन और ये बडी बडी बूंदें वहीं जाकर गिराओ तथा अपनी इस बहन बिजली को उसी स्थान पर जाकर चमकाओ जिसके प्रभाव से मेरे पति घर आ जाएँ। यदि तुम विरह से व्यथित इस नारी की सहायता करोगे तो मैं तुमको अपने नयनों में काजल का रूप देकर रखूँगी।

तब तक चातक पक्षी 'पिऊ पिऊ' के बोल सुनाने लगता है और मयूर घनघोर काले बादलों को देखकर उन्मत्त हो नृत्य करने लगता है। उसका नृत्य तंत्र के सदृश और बोल—वे तो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कामदेव का मंत्र पढ रहे हों।

पियु पियु पपिहा की रटन, पिय की सुरत कराय।
बिथित वियोगिन की बिथा औरइ दई जगाय।
नचत मोर के करन है कछू विरह को तन्त्र।
बोल बोल मानों पढ़त कामदेव को मन्त्र।

अब उस बेचारी को चारों ओर सब अपने विरोधी ही दृष्टिगोचर होने थे। जब किसी की ऐसी अवस्था होती है तब उसके सामने एक ही उपाय होता है कि आत्मसमर्पण करते हुए विरोधी की ही वन्दना करे। इसने भी यही विचार करके वन्दना प्रारम्भ कर दी

पियु पियु बोल सुनाय पपरा
जिन अब जिया जराव।
मोरे पिया परदिसवा में छाये,
हुइ जे सबद सुनाव। पियु पियु
जा कइओ बेदरदी पिया सों
अब अपने घर जावं।

धना ! विसूरत रय तुमाई,
, जाक जरन जुडाव । पिपु पिपु
जो इतनी कइ करो हमाई
पुर बिरह के घाव ।
सुबरन चोंच मडाउं पपरा,
हीरन जडों जडाव । पिपु, पिपु

यह तो उमने केवल चातक का रिझान की बात कही । अभी उसे मयूर का भी मनाना था, क्योंकि मयूर जब काली घनघार घटाओ का अवलोकन कर वन प्रागण म उच्च शृग पर बैठ स्वर साधकर बोलता है तब समस्त प्राणियो क हृदय हिल उठते है । तब इस बचारी विरहिणी की तो बिसात ही क्या थी ! वह व्याकुल हो मयूर की भी मनुहार करन लगी

कूक कूक क मोरे जिया खों,
काय जराउत मोर ।
पिय बिछोय सो मोर जिया मे,
बसइ उठत हिलोर । कूक कूक
पुरवया की बर बरई
छाई घटा घनघोर ।
भओ सबइ बिद उलटो विधना,
की खों दइये खोर । कूक, कूक
जों कउँ जा जा कूक सुनाओ,
पिय कानन लग मोर ।
कनक कटोरन भर भर प्याऊँ,
दूद बतासा घोर । कूक कूक

यह बात स्वाभाविक ही है कि जी क पाव न फटी बिवाई । वा का जाने पीर पराइ, लकिन यहाँ ता तीनो व्यथित थ वियोगिनी पति वियोग म, मयूर काले बादला की गजना सुनकर और चातक स्वाति नक्षत्र की बूदो के लिए । लेकिन इन तीना म चातक की व्यथा श्रेष्ठ थी ।

यहा यह बात ध्यान दन योग्य है कि जा अत्यन्त दुखी होना है वही किसी दुखी हृदय की पीर का पहचानता है । इस कारण चातक के हृदय म नारी की व्यथा सुनकर विशेष चोट लगी और वह भाव भरे शब्दा म फिर बोलकर कहने लगा

आउन सावन दओ धन । गावन देओ मोय गीत ।
तोय झुलाऊ पिया सग जो मैं साचो मीत ।

हम तुम दोऊ नेम सों गीत पिया के गाँय ।
तुम पियु सों हम स्वाति सों अपनी प्यास बुझाँय।
बनन की जब भुजरियन सिरव पर गुहार ।
तब बीरन घर आय हैं, बाँद बाँद तरवार।
धीर धरो धन—जीव मे, आउन सावन देव ।
हम तुम दोऊ, मनईं मन, गौर बडाव नेव ।

चातक पक्षी वियोगिनी को घन के बोल सुनाकर उड गया। वर्षा की हरियाली अमावस की बाट किसान जोहन लगे।

**सावित्री व्रत**—बुन्देलखण्ड म ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या (हरियाली अमावस्या) से वर्षा प्रारम्भ होती है और इसी दिन सौभाग्यवती महिलाए सती सावित्री का व्रत रखती है। इस व्रत म दिन भर उपवास किया जाता है और सध्याकाल मे वट वक्ष का पूजन। इसके उपरात व्रत रखने वाली स्त्री पहले वट वक्ष की तीन नवीन कोपलो को ग्रहण कर फिर पा ना (जिस भोजन म नमक नही होना है) ग्रहण करके व्रत खोलती है। यह व्रत बुन्देलखण्ड म सौभाग्यवती महिलाएँ बडी श्रद्धा स रखती है।

**वन देवी और वन दवता का पूजन**—इस जन पद मे आषाढ माम म वर्षा प्रारम्भ होते ही वन देवी और वन दवता का पूजन बडी श्रद्धा भक्ति से किया जाता है। पूजन की प्रचलित प्रथा यह है कि पुरा पडौस के नर नारी अपने कुटुम्ब सहित समीपस्थ सरिता या सरोवर के किनारे जाकर कच्ची रसोई (दाल भात कढी आदि) या पक्की रसोई बनाकर वन देवी और वन देवता का पूजन करते है। फिर वक्ष की डाल पर झूला डालकर झूलते हुए आनन्द मनाते है।

**कुन घुसू**—आषाढ शुक्ल पूर्णिमा को इस क्षेत्र के प्रत्येक परिवार मे गृह वधुओ का पूजन किया जाता है। यह त्यौहार 'कुन घुसू' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर सास स्वय गृह के चारो कोनो को पातनी मिटटी द्वारा पोत कर फिर उन पुते हुए चारो कोनो म चार पुतलियाँ हल्दी द्वारा चित्रित कर चन्दन, अक्षत और पुष्प चढाकर गुड घन का नवद्य लगाकर आरती उतारती है और नमन करती हुई यह कामना करती है कि ह धनधरी बहू! घर म लक्ष्मी बनकर, धन धान्य और सतान से इसे भरना।

इस कुन घुसू के पूजन से आपका ध्यान पारिवारिक सामजस्य की श्रेष्ठ भावना की ओर अवश्य ही आकर्षित हुआ होगा। यह बात निर्विवाद सिद्ध है, कि व घर सदव फूलते फलते देखे गये हैं जिनमे वधुओ का यथोचित सम्मान होता है और जिन गृहो म कष्ट के कारण वधुओ के अश्रु गिरा करते हैं, वे प्राय नष्ट हो जाते है। इसका प्रमाण महाभारत म द्रौपदी के आँसुओ

द्वारा कौरवों और सीता के आंसुओं से रावण के विनाश से मिलता है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाली प्राचीन भारतीय संस्कृति इसी त्यौहार द्वारा सिद्ध होती है।

## सावन मास के व्रत, त्यौहार और मेले

सावन मास बुन्देलखण्ड में सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है। इस महीने में सबसे अधिक व्रत, त्यौहार और उत्सव मनाये जाते हैं तथा ग्राम ग्राम में मेले भरते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन दिनों शरीर में मन्दाग्नि रहती है। इस कारण भ्रमण उपवास और उत्सवों में मन में जो उल्लास होता है उससे पाचन क्रिया बढ़ती है और शरीर में शक्ति की वृद्धि होती है। इस मास में स्थान स्थान पर जो मेले भरते हैं उनसे संगठन और एक दूसरे से सामंजस्य होने के कारण सामाजिक शक्ति में अभिवृद्धि होती है। मेलों में अन्य क्षेत्रों के जो स्त्री पुरुष एकत्र होते हैं उनसे अनेकानेक विचार धाराएं प्रस्फुटित होती हैं और इस प्रकार पूरी संस्कृति को बल प्राप्त होता है।

बुन्देलखण्ड में सावन मास आ गया है। धर्म परायण व्यक्ति भगवान शिव की आराधना करके उन पर बिल्व पत्र चढ़ाकर रामायण का पाठ कर रहे हैं। कुछ वन भ्रमण और कुछ बेतवा पहूज धसान आदि सरिताओं की उछलती हुई धाराओं का आनन्द लेने के लिए चल दिये हैं। घर की बालाएँ और बालिकाएँ हाथ परों में मेंहदी रचाकर झूले पर सावन के मधुर गीत गाने लगी हैं। देखिये यह है एक मेंहदी का गीत

कौना से मादी आई हो सौदागर लाल
कौना धरी बिकाय, मादी रचनू मोरे लाल।
आगम से मादी आई हो सौदागर लाल
पच्छिम धरी बिकाय मादी रचनू मोरे लाल।
काये से मादी बाटिओं सौदागर लाल,
काये मे लइओं पोंछ मादी रचनू मोरे लाल।
सिल लोढ़ा से बाटिओं सौदागर लाल
लिओ कचुरलन पोंछ मादी रचनू मोरे लाल।
कौना रचाई दोऊ छींगुरी सौदागर लाल,
कौनो रचायें दोऊ हांत मादी रचनू मोरे लाल।

देवरा रचाई बोऊ छींगरी सौदागर लाल
भौजी रचाये बोऊ हात, मोरी रचनें मोरे लाल।
कौना की रच धरी भई सौदागर लाल,
कौना की रच गई लाल, मोरी रचनूं मोरे लाल।
भौजी की रच धरी भई सौदागर लाल,
देवरा की रच भई लाल मोरी रचनू मोरे लाल।
किये बताऊ बोउ छींगुरी सौदागर लाल,
किये बताऊ बोउ हात, मोरी रचनू मोरे लाल।
देवरा बताऊ बोउ छींगुरी सौदागर लाल
पिये बताउ बोऊ हात मोरी रचनू मोरे लाल।

ग्राम ग्राम म सावन का मला भरता प्रारम्भ हो गया है। ग्रामीणजन अपने अपने गड्ला और गाड़ियों को सजाकर मेला देखने चल दिये हैं। मार्ग म उल्लासपूर्ण ग्रामीण युवतियाँ गीत गाती जा रही हैं जिससे मार्ग बड़े आनन्दपूर्वक कट रहा है। तब तक सतप्त भूमि को अपनी नन्ही नन्ही बूँदो म तृप्त करने के लिए मेघराज अपने दल-बलसहित छा जाते हैं। उनको देख कर ग्रामीण युवती अपनी गाड़ी हाँकने वाले स कहने लगती है

गाडी वारे मसक देओ बल,
अब पुरवया के बादर ऊनये।

गाडीवान! तनिक बैलो को त्वरित हँका तो दो क्योंकि पूर्व दिशा मे घनघोर बादल उठे हैं।

काना बदरिया ऊनई
काना बरस गये मेघ।
अब पुरवया के बादर ऊनये,
गाडो बारे मसक देओ बल
अब पुरवया के बादर ऊनये।

इस लोकगीत म गीतकार ने भावपूर्ण चित्र खीचा है। युवती कहती है कि कहाँ स यह बदरिया उठकर आई है और कहाँ पर मेघ बरस गया है? आगे की पंक्तियो के भाव का अध्ययन कीजिये। वह युवती कैसा सुन्दर भाव प्रदर्शित कर रही है

अगम बदरिया ऊनई,
उर पच्छिम बरस गये मेघ,
अब पुरवया के बादर ऊनये।
गाडी बारे मसक देओ बल
अब पुरवया के बादर ऊनये।

युवती यह भाव प्रदर्शित कर रही है कि विचार रूपी बादल अग्र भाग से अर्थात अन्तस मन मे उठे और बिना स्नेह का सिंचन किये पीछे बरसकर चले गये हैं। इस लोकगीत मे कितना सुन्दर चमत्कृत भाव गीतकार ने प्रदर्शित किया है।

**सावन तीज**—सावन शुक्ला तीज का बुन्देलखण्ड के वैसे तो प्रत्येक नगर और ग्राम म वृन्दावन के सदृश झूले का उत्सव मनाया जाता है पर ओरछा, झासी और सागर म यह महोत्सव विशेष दर्शनीय है।

**नाग पचमी का मेला तथा पूजन**—सावन शुक्ला पचमी को नाग पचमी होती है। इस अवसर पर स्त्रिया सर्पों का पूजन करती और उन्ह दूध पिलाती है। इस प्रथा के कारण यहा ही नही वरन भारतवष म यह कहावत प्रसिद्ध है कि भारत क व्यक्ति सर्पों को भी दूध पिलाने की क्षमता रखते ह।' यह सर्पों क पूजन की प्रथा इस क्षेत्र म तब से चली आ रही ह जब यहाँ महाराज हैहय का राज्य स्थापित था। इसके अतिरिक्त इन्हा दिनो झासी क गोपाल बाग म रामायण का वहत मेला भरता है जो बुन्देलखण्ड प्रान्तीय रामायण महासभा द्वारा सचालित है।

**गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती** सावन शुक्ला सप्तमी को गोस्वामी तुलसीदासजी की जय ती इस जन पद म सोल्लास सोत्साह मनाइ जाती है। इस अवसर पर राजापुर मऊरानीपुर झासी आदि म विशेष आयोजन होते हैं। इस अवसर पर इस क्षेत्र म वहत कवि सम्मलन, रामायण प्रवचन आदि कायक्रम होते है। कई स्थानो पर गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। इनम झासी के गोपाल बाग और राजापुर म स्थापित मूर्तिया विशेष रूप स दर्शनीय है।

**सावन शुक्ला नवमी का पूजन**—सावन शुक्ल नवमी क दिन स्त्रिया का एक त्योहार होता है जो स्त्री पुरुष दोनो को शुद्ध मन स एक दूसरे क साथ व्यवहार करने का सदुपदेश भी देता है। इस पूजन म बरती जाने वाली प्रथा भी विचित्र है। पूजन क उपरान्त जो कहानी कही जाती है वह भी विलक्षण है।

नवमी क दिन स्त्रिया व्रत रखकर सायकाल कुठिलिया (मिट्टी का पात्र) पर गोबर या पातनी मिट्टी द्वारा नौ पुतरियाँ लिखती हैं और फिर विधिवत पूजन करके उन्हें पकवान चढ़ाकर यह कहानी कहती है

वहुत समय की बात है कि एक गरीब ब्राह्मण व उसकी पत्नी थी। पडितजी पढ़े लिखे नही थ। इस कारण खेती किया करत थ। उनकी पडितानी जीभ की बड़ी चटोरी थी। जब पडितजी खेत पर जाने लगते तब उनको वह ज्वार, बाजरा की रोटी बाधकर विदा कर देती और फिर नित्यप्रति पकवान

बनाकर खाया करती। यह बात धीरे धीरे पूरा पड़ोस में फैल गई। एक दिन की बात है कि सावन सुकल नवमी की पूजा का दिन था। पड़ोस की स्त्रियां ने पंडितजी से कहा कि 'पंडितजी, तुम तो खेत की रखवारी को चले जाते हो और यहां घर में पंडिताइन दिन पकवान बनाकर गुलछर्रें उड़ाती है। न मानो तो आज नवमी की पूजा है घर रहकर देख लो।

पंडितजी बड़े सरल और सीधे थे इस कारण उनको पड़ोस की स्त्रियों के कहने का पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ और लाठी बांधकर खेत को चल गये। लेकिन मार्ग में कुछ विचारकर घर लौटे और पंडिताइन की दृष्टि बचाकर उसी कुठिलिया में अन्दर छिपकर बैठ गये जिसकी उनकी पत्नी नवमी लिखकर पूजन करती थी।

सायंकाल पंडिताइन ने कुठिलिया पर नमैं लिखकर अपनी पूजा विस्तारी और अनेक प्रकार के पकवान बनाकर नमैं से यह प्रार्थना की कि नमैं बाई नमैं बाई मोंं बिड़इ खेव। नमैं खा रय और दर्में खां परजव सारे कुठिलिया में से आवाज आई कि 'हूँ'। पंडिताइन प्रसन्न हो गई और उसने पुनः प्रार्थना की। फिर आवाज आई कि 'हूँ।' अब क्या था वे फूली न समाई और अपनी पड़ोसिनों से जाकर कहने लगी कि हमारी नमैं तो बोलत है किन्तु उनकी पड़ोसिनों ने कहा कि हमें तब विश्वास होगा जब तुम हमारे सामने हूँका भरवाओ।

इस पर पंडिताइन अपनी पड़ोसिनों को घर लाकर फिर नमैं से कहने लगी नमैं बाई नमैं बाई मो बिड़इ खेव और नमैं खा रेव दमें खा घर जेव।

कुठिलिया में से फिर आवाज आई 'हू।'

यह सुनकर पड़ोसिनें आपस में कानाफूसी करने लगी। जब पंडितजी को मालूम हो गया कि पड़ोस की स्त्रियां जमा हो गई है तो वे कुठिलिया से बाहर निकलकर गुस्सा होकर पंडितानी से कहने लगे— कमरी जे ज्वार बाजरा की रोटी मारे लाने और जे पकवान अपने लाने ? '

अब पंडितानी लाज शरम के मारे गड़ी जाय। इधर पंडितजी क्रोध के मारे लाल हो गये। तब पड़ोसिनों ने उनको संतोष दिलाया कि अब कभउँ पंडितानी ऐसी भूल नई कर हैं। लेकिन पंडितजी के मन में बात लग गई और वे बदला लेन की सोचन लग।

एक दिन उन्होंने पंडिताइन से कहा कि आज खेत में हर की पूजा हुए। जासों पूजा के लाने छप्पन भोजन बना दिऔ। पंडिताइन तो चटोरू हती ही प्रसन्न होके उनने छप्पन भोजन बनाये। लेकिन जब भोजन तयार हो गये सोइ पंडितजी एक बड़ो छवला लाय और सब पकवान भर के खेत खों चलत भ पंडितानी सो हंसकर बोले—'हर की हरायनी काउ खा न दवो बायनी।

पंडितजी की जा बात सुनकर पंडितानी अवाक रह गई, और मन म अपने करे पै विचार करन लगी—जसो व्योहार हमने पंडितजी के सगे वर्तो वह की उनने बदलो लओ है। अब हम कभउँ दुभाती नईं कर है नातर घर कसे चल है। तब से पंडित और पंडितानी एक दूसरे म सद व्योहार बतत भय रउन लगे।"

यह बुदली कहानी इस बात की प्रतीक है कि पति पत्नी को एक दूसरे के साथ किस प्रकार सद व्यवहार बरतना चाहिए।

झूले के गीत—सावन शुक्ला एकादशी से प्रत्यक उद्यान तथा गृह म झूले पड जाते हैं और घर घर युवतियां सावन के मधुर गीत गान लगती हैं। देखिए उम उद्यान से सावन के मधुर गीत की ध्वनि आ रही है

ऐ जी घन उमड घुमड घराय,
चऊँ दिस घिर चले महाराज।
ऐ जी धर गजमतवारन रूप,
झूम घन भिर चले महाराज।
ऐ जी कऊ नानों नानों बुंदियन मेव
बरस रस फिर चल महाराज।
ऐ जी कऊँ गरजत तरजत लरत,
कऊ लर, मुर चले महाराज।
ऐ जी कऊ कोइलिया के बोल
जिया बिच घुर चले महाराज।
ऐ जी कऊ होत 'मित्र' मनुहार,
कऊ मिल फिर चले महाराज।

बादलों के दल के दल उमड घुमटकर दशों दिशाओं को घेरने लगे है और कहीं उन्मत्त हाथी की भांति झूम झूमकर और कही घूम घूमकर एक दूसर से सघष कर रह है तथा कहीं-कहीं न ही न ही बूदो द्वारा रसमयी वर्षा करके चलत फिरत नजर आ रहे ह। कहीं-कहीं उमग म गरज तरजकर लडकर विलग हो रहे हैं। इसी प्रकार कहा कहीं बाग बगीचो म कोकिल मधुर बोल सुनान म मग्न है और कही पत्नी अपन प्रियतम के साथ वर्षा के आनन्द म आत्म विभोर हो मनुहार कर रही है। इसके अतिरिक्त कहीं पति पत्नी प्रेम रस सिक्त एव तप्त होकर विलग हो रहे है।

इस लोकगीत म कवि न बादलों के अनेकानेक रूपों म चित्र प्रस्तुत किय हैं। अब चातक की ओर बात का देखिए। वह अपन प्रेमी मेघों की शुद्ध मन स आराधना करते करत जब प्राण त्याग कर देता है, तब गीतकार उन निर्मोही

बादलों के प्रति यह भावना प्रकट करता है

> बदरा कौनई बात बुमाई।
> रटत रटत तुमखों चातक ने,
> अमई समाव लगाई। बदरा
>> तुमरोइ ग्यान ध्यान तुम रोई,
>> गा जग, उमर बिताई।
>> तुमरोइ एक आसरो जी खों,
>> वइखों पीठ दिखाई। बदरा

बादला! तुम्हारी यह बनम्य परायणता की बात कही रहो जबकि तुम्हारे प्रेमी चातक ने तुम्हारे नाम की रट लगा-लगा के समाधि ले ली है। जिस चातक ने तुम्हारी प्राप्ति के लिए अमित साधना की और जिसका केवल एक तुम्हारा ही आश्रय था उस उस पवित्र प्रेमी चातक का ही तुमने पीठ दे दी ?

> बउत रई जो के गंगा जू
> सिर आने लौं आई।
> मरत मरत तइ प नइ तौने
> तन कउं चौंच डुबाई। बदरा
>> अपने मों मारत रयें तुम तो
>> अपनी बडी बड़ाई।
>> स्वांती नखत निकर गओ
>> सूखों, निठुआ बूंद न आइ। बदरा

तुम्हारा प्रेमी चातक जब तुम्हारे अनन्य प्रेम म मूछित पडा था तब क्या कहा जाय! उसके समीप जीवनदायिनी माता गंगा प्रवाहित हो रही थी। किन्तु उस आन बान वाले चातक ने, उसके पवित्र जल म अपनी चोंच तक नही डुबाई। बादलो! तुम तो अपने मुख स स्वय अपनी प्रशंसा किया करते थे। लेकिन स्वाति नक्षत्र कोरा अर्थात बिना बरसे निकल गया। तुमने अपने प्रेमी चातक के लिए एक बूंद भी नही गिराई।

> अब काये प उनयें फिरतइ,
> चउं दिस सन सजाइ।
> किये सुनाउत गरज दिखाउत,
> की खों जा प्रभुताइ। बदरा
>> बरसत रऔ बजर धरती प,
>> रातइ दिन झिरलाइ।

करिऔ कौनउँ जतन न बापे,
जमवे की हर आई। बदरा

(लोकगायनी पृ० ६७)

बादला! अब किस बिरते (बूते) पर अपनी यह सेना सजाये हुए चारों दिशाओं में घूमते हो? किसको यह गरजन तरजन सुना रहे हो, तथा किसको अब अपनी इस प्रभुता का वैभव दिखा रहे हो? अरे अब इस ऊसर धरती पर तुम नित्यप्रति मूसलाधार वर्षा द्वारा चिर लगाये हुए प्रयत्न करते रहो। क्या मजाल जो उस पर हरे तृण का अंकुर भी जम जाय!

यह लोकगीत अपने स्नेही के प्रति कैसी आदर्श कर्तव्य परायणता का प्रतीक है! अब हम दिनारा ग्राम के 'भुजरियन के मेले' की चर्चा करेंगे।

भुजरियन का मेला—झाँसी से चौबीस मील दूर एक दिनारा नाम का ग्राम है। यह ग्राम प्राकृतिक दृष्टि से बड़ा ही रमणीय है। इस ग्राम के समीप स्व० वीरसिंह जू देव प्रथम द्वारा निर्मित कराया हुआ एक लाल पत्थर का दुर्ग सदृश तालाब है। उसके निकट पहाड़ों पर एक सिद्ध की गुफा है। इन्हीं के नाम से यह भुजरियन का मेला सावन शुक्ल चौदस को भरता है, और पूर्णिमा तक रहता है।

इस मेले में ग्रामीण युवतियों द्वारा बुन्देली लोकगीतों को सुनने का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। देखिये ग्रामीण जन अपनी अपनी बैलगाड़ियाँ सजाये हुए आ रहे हैं। उन सहस्रों गाड़ियों में से किसी एक गाड़ी में जो स्त्रियाँ बैठी हुई हैं वे बिल्वाई गीत गाती चली आ रही हैं। यह गीत लम्बी यात्रा के समय गाया जाता है। अब उसका रसास्वादन कीजिए।

रथ टाँड़ें करौ रघवीर, तुमाये संग चलौं बनवासा खों।
तुमाये काये के रथला बने, काये के डरे हैं बुनाव? तुमाये
ऐ जू चंदन के रथला बने, उर रेशम डरे बुनाव। तुमाये
ऐ जू को जू रथ में पौंडिऔ, उर को जो हाँकनहार। तुमाये
रानी सीता जू रथ में पौंडिऔ, उर राम जू हाँकनहार? तुमाये

इस गीत के सुनते ही, भगवान राम के वन गमन का स्मरण हो आता है। इसी प्रकार सहस्रों की संख्या में यात्री लोकगीत गाते हुए सरोवर पर उस स्थान पर उपस्थित हो जाते हैं जिस स्थान पर मेला भरता है। यह सरोवर कलापूर्ण तो बना ही है। इसके अतिरिक्त इसकी विशेषता यह है कि यह इतना विशाल है कि सोलह ग्रामों के खेतों को अपने जल द्वारा सींचता है। नहरों के अतिरिक्त, पुष्पानदी का उद्भव इसी दिनारा ग्राम के सरोवर से हुआ है।

इस ग्राम के अतिरिक्त अन्य ग्रामों की स्त्रियाँ भी सरोवर में भुजरियाँ सिराने आती हैं। जिस समय भुजरियाँ सिरती हैं, उस समय भाग के दोनों

और ग्रामीण जनता की कतारें लग जाती हैं। जो स्त्रियाँ भुजरियाँ सिरा कर आती हैं वे भुजरियों के चार चार पीतांकुर इन कतारों में खड़े हुए व्यक्तियों का वितरण करती चली जाती हैं। जिस व्यक्ति को भुजरियाँ प्राप्त होती हैं वह व्यक्ति बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ नमन करता हुआ उनके पैर पड़ता है।

इसके उपरान्त सरोवर पर बंदूक चालन की प्रतियोगिता होती है। यह जन साधारण में वीरोचित भाव जाग्रत किये बिना नहीं रहती। प्रतियोगिता का रूप यह होता है कि सरोवर में नीबू डाल दिया जाता है जो लहरों के थपेड़ों से लहराया करता है। इसे लक्ष्य बनाकर निशानेबाज अपनी अपनी बारी से निशान लगाते हैं।

जिस प्रतियोगी की प्रथम गोली से नीबू उड़ जाता है वह प्रथम श्रेणी का विजयी समझा जाता है। इसी प्रकार दूसरी गोली और तीसरी गोली से नीबू उड़ाने वाले प्रतियोगी क्रमानुसार विजयी समझे जाते हैं। इस प्रतियोगिता में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्रति वर्ष पुरस्कार वितरण किया जाता है।

बुन्देलखण्ड में दिनारा ग्राम में भुजरियन का मेला वीरता प्रदर्शन और प्राचीन संस्कृति को उजागर करने की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

**रक्षा बन्धन का त्यौहार**—रक्षा बन्धन के त्यौहार की महत्ता अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बुन्देलखण्ड में अधिक है। यह त्यौहार वीर आल्हा-ऊदल के समय से अधिक प्रचलित है। रक्षा बंधन की प्राचीन प्रथा की रक्षा महाराज ओरछा नरेश मधुकरशाह ने अकबर के दरबार में स्वयं अपने हाथ में रक्षा बन्धन बंधवा कर की थी।

बुन्देलखण्ड के प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम में रक्षा बन्धन की पूर्णिमा के लिए विदेश गये हुए भाई दूर दूर से घर वापस आ रहे हैं। किन्तु इस शुभ त्यौहार पर एक बहिन का भाई नहीं आ पाया है। दूसरे दिन रक्षा-बन्धन की पूर्णिमा है। यह बहिन इस लोकगीत में भाई के प्रति अपने करुण भाव व्यक्त कर रही है

> **बीरन ! तेरे बिन कोउ नयाँ,**
> **राखी का बँदवया।**
> **एक दिना सावन में राखौ**
> **सँग गुद मोरे भया।**
>> **को ल्याहै मोय मोरे बीरन**
>> **बारी - हरी चुनरिया।**
>> **को कुल्लन की बनी कुल**
>> **बेलन की लाल घँघरिया।**

को चदन को हार भाल टिकली
की छपक जुनया।
वीरन ! तेरे बिन कोउ नया
राखी को बँदवया।

भाई ! तेर विना हमारी राखी (रक्षा बन्धन) का बधवान वाला कोई नही है और सावन के त्योहार म एक ही दिवस शेष रह गया है। आकर मेरी सुधि लीजिय। वीरन ! तुम्हारे विना कौन वह ओढने की चूनर लायगा जिसम मोर पपीरा (चातक) छप रहते ह। और वह घघरिया भी जिसका फूल तथा वेला को रग द्वारा छापकर अथवा रेशम द्वारा काढकर कुस्टा कलापूण ढग से बनाते हैं। (बुदलखण्ड म एक कुस्टा जाति रहती है जो कर्घे द्वारा रेशमी अथवा सूती वस्त्र बडे कलापूण ढग से बुनती है।) आग बहन कुल की परम्परा और बुदेलखण्ड की सस्कृति की रक्षा की स्मृति दिलाती हुई कहती है

जुर मिल, दुश्मन लरन लराई
गेवडें बाहर आगये।
बाद बाद मन क मनसूबा,
खूब पमारो गा रये।
तुम बिन धाँद दुधारी कों,
उनके मोरा मुरकया।
वीरन ! तेरे बिन कोउ नया,
राखी को बँदवया।

अरे भाई अब तो ग्राम के समीप ही शत्रुओ न अपना खेमा गाढ लिया है, और युद्ध की दृष्टि स मन म मनचाहे विचार करके अपनी वीरता की गौरव-गाथा गा रह हैं। ऐस गाढे समय म तुम्हार विना ऐसा कोई वीर नही जो दुधारा तानकर समरागण म उतरे और शत्रुओ को पराजित कर बुन्देलखण्ड की सस्कृति और कुल की परम्परा की रक्षा कर सके। आगे वह यह भाव भी प्रदर्शित करने लगती है

भुजा उठा जो पाँच पान को
बीरा आन चबाव।
कोई छाती रोप भुजरियाँ,
मोरों आ सिरवाव।
साचउँ 'मित्र' वीर कोई
बना फो, लाज रखया।
वीरन ! तरे बिन कोउ नयाँ,
राखी को बँदवया। (लोकगायना पृ० १०१)

भाई ! सभा मध्यकालीन पात्र का प्रश्न-बीड़ा लगा हुआ रखा है। इस बीड़े को ऐसा कौन साहसी वीर है जो अपनी भुजा द्वारा ग्रहण करके चबाये और परियों के वारों को अपने व स्वयं पर झेलकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। फिर अपने हाथ से बहन द्वारा रक्षा बन्धन बंधवाकर, इन भुजरियों को सरोवर में सिरवाये।

जो इतना सबल होगा वही भुजरियों के मान की और बहिन की लज्जा की रक्षा करे। भाई कल्लार की सामर्थ्य रक्षा करेगा। यह है इस सावन के मेले की महत्ता जिसमें बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा का भाव जुड़ा हुआ है।

भाई को बुन्देलखण्ड के त्योहारों की परम्परा और कुल की आन बान का ध्यान था। वह अपने ग्राम में आया, जहाँ उसकी बहन और ग्राम की बहनें उसकी बाट जोह रही थीं। उसके आने की खबर फैल गई। अब क्या था बाग के आम और कदम्ब की डालियों पर झूले गिर गये। उद्यान मल्हार राग की मधुर ध्वनि से गूँजने लगा। कोकिलें मुक्त-कण्ठ से युवतियों के स्वर-से स्वर मिलाकर कूकने लगीं, जिससे वन प्रांगण आनन्द विभोर हो उठा।

सायंकाल भाई के संरक्षण में सरोवर में भुजरियाँ सिराई गई और बहनों ने अपने अपने भाइयों को रक्षा बंधन बाँधकर राखी का त्योहार मनाया। भावजों ने अपने अपने पतियों को उल्लसित होकर मनुहार द्वारा प्रेम पाश में बाँध लिया।

धनिन खों भया मिले भौजिन खों भरतार।
धनिन की राखी बँदी भौजिन भई मनुहार।

सावन मास जिस प्रकार अपनी प्रकृति द्वारा बुन्देलखण्ड के मेलों और त्योहारों की शोभा बढ़ाता है उसी प्रकार भादों भी। किन्तु दोनों महीनों का अपना अपना पृथक महत्त्व है।

अब इस दो लोकगीतों का अध्ययन कीजिये जिनमें नारी और प्रकृति के सौन्दर्य को गीतकार ने भावपूर्ण शैली में सँजोया है

सवनों सुहावनों पपिहा रट,
उर भदवों सुहावनी मोर।
तिरिया सुहावनो जब लग,
बारो खेल पौर की दोर।

सावन मास जब सुहावना लगता है जब आम की डाल पर चातक पछी के पियु पियु के बोल सुनाई देते हैं और भादों मास सुन्दर मन भावना तब लगता है जब मोर घनघोर घटनाओं को देख प्रेम उन्मत्त हो नाच उठता है। इसी प्रकार युवती भी तभी सुशोभित होती है जब उसकी गोद का बालक द्वार पर खेलता दृष्टिगत होता है।

इस लोकगीत म प्रकृति और नारी के साम्य रूप का चित्रण किया गया है। अब हम भारतीय संस्कृति के प्रतीक उस लोकगीत का उल्लेख करेंगे जिनमे बहिन अपने भाई को इन्द्र के अखाड़े म मल्ल युद्ध द्वारा साहस दिखाने के लिए उत्प्रेरित करती है।

सावना गरजे रे भदवाँ बरसे,
बरस अरे, अब धरती सौं उभरी न दूब।
बीरा! मोरे इन्द्र अखाड़े खेलिओ।

सावन के बादल केवल गरजकर ही रह गये। हाँ भादो के बादल अवश्य कुछ बरसे हैं। लेकिन इस थोड़े वर्षण से धरती पर अभी पूर्ण रूप से दूब तक तो जमकर नहीं उभरी है और मेरे भाई को इन्द्र के अखाड़े म लड़ने को जाना है। इसके अनन्तर वह कहने लगती है

देओ तो माई मोरी, खुरपी टिपरिया
टिपरिया अरे, दूबा खोदन खों मैं जाओं।
बीरा! मोरे इन्द्र अखाड़े खेलिओ।

माँ, मुझे खुरपी और टोकरी तो दे मैं खेत म जाकर दूब खोद लाऊँ। इसके उपरान्त वह कहती है

बो दूबा मोरी गइयाँ जो खहैं
खहैं अरे, बे देहैं गगर भर दूद।
बीरा! मोरे इन्द्र अखाड़े खेलिओ।

माँ जिस दूब को मैं खोद कर लाऊँगी उसको हमारी गायें खायेंगी जिससे वे गागर (घड़ा) भरकर दूध देंगी। इसके पश्चात वह यह भाव प्रदर्शित करती है

बो दुदुआ मोरे बिरन जो पीहैं
पी हैं, अरे बे लहैं असुर दल जीत।
बीरा! मोरे इन्द्र अखाड़े खेलिओ।

उस दूध को मेरा भाई पियेगा जिससे उसके शरीर म अपार बल होगा, और तब वह असुरो के दल को तथा प्रतिद्वन्द्वियों को अपने मल्ल-युद्ध के कौशल से विजय कर सकेगा।

# भादो मास के तीज-त्योहार

भा । ट्रग छ' बलभद्र जयन्ती या हरछट (हलछट) के नाम से विख्यात है। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक नगर और ग्राम में यह अत्यन्त उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाई जाता है। लेकिन इसका प्रचलित रूप कुछ परिवर्तित-सा प्रतीत होता है।

महिलाएं प्रातःकाल से उपवास रहकर सूर्यास्त पर पलाश के पत्र पर चन्दन द्वारा एक पुतला (बलभद्र) चित्रित कर उसको जरिया और काँस द्वारा बाँधकर, उसका पूजन करती हैं। नैवेद्य में मक्का, ज्वार, जवा मटर तेवरा, बाजरा, चना, इन सात अनाजों को भूनकर और इनके साथ महुआ और खीरा द्वारा भोग लगाकर आरती उतारती हैं और फिर विसर्जन करती हैं। लेकिन व्रत रखने वाली स्त्री यह पदार्थ ग्रहण नहीं करती। वह हल से बिना जुते अनाज या फल आदि ग्रहण करती हैं। जैसे हरियल समा के चावल, मानुसने की खीर, ककोरा आदि और बिना शक्कर के दूध (केवल भैंस का)-दही पीती है।

पूजन के पश्चात् एक कहानी कही जाती है जो अत्यन्त भावपूर्ण और सत्य की प्रेरणा देने वाली है। यह कथा इस प्रकार है

एक मठयारी गाँव में मठा बेचन को चली। अब वा गाँव में पौंच नइ पाई हती के वाकी गैल में पेट पिरान लगो वा छेवल के रूख के तरे बैठ गई। बैठतनइ वाके मौंड़ा हो परो, तब बाने जा सोची के मठा तो बेचइ आऊँ और बाई बिचार से नजदीक लगे जरिया और कांस के पेड़न तरें अपनो मोडा ढाँक के तथा हरवारो जो उतै खेत में हर चला रओ तो बासें जा कै के 'ओ हरवारे कक्का, हमाई जा थाती देखे रइओ मैं गाँव में मठा बेच आऊँ', इतनी कै के चली गई।

गाँव में आज हरछट को व्रत हतो और वा मठयारी ने भैंस की जगाँ गया को दूद बेच दओ। इतै जी जाँगाँ वा अपनी थाती धर आई थी, का भओ के धोके में वा थाती के ऊपर हर चल गओ और जब हरवारे खा रोवे की आवाज सुनाई दई तो बाने जाके देखो के एक मोडा जो ढको परो हतो बाके पेट के ऊपर हर चल गओ जा सों वाको पेट फट गओ। जो देख हरवारे के मन भीतइ दुख भओ और बाने तुरतई ऊ की जरिया के काँटन और काँस से वाकी पेट सी सिया के जैसइ को तैसो होइ धर दओ।

मठयारी गाँव में मठा बेच के आई और बाने अपनी थाती समारी, तो वा टेर दक रान लगी, काय सें के वाको मोडा को पेट सिया हता, और बो सिट पिटानो तक नइ। तब बाके रोवे की आवाज हरवारे ने सुनी तो बो तुरतइ

आन क कहन लगी—री, तन कौन मो आज पाप करो जीसो तर गभवारे मोडा क पट म हूर चल गओ।

वा सुन क कहेन लगी क—'आ मारे कक्का, और तो मैंने कोनउँ पाप नईं करो पैं आज मैं गाव म गया को दूध बेच आई, और हरछट को व्रत हतो। आज के दिना उपास करने वारी जनी भस को दूद मठा खात हैं।

जा मठयारी की बात सुन क हरवारो बोलो जो ता तने सबसें बडो पाप करो। लौट पावन जा, और जिन खों तन गया को मठा बैंचो होय, उनस क आ बा जा बात क सुनतनईं गाँव म गई और जिन घर वाने मठा दओ हतो क क जब वान खेत मे आन क दखो तो वाको लरका जगिया तर परो कहर कहर रा रऔं हतो। देख के मन म प्रसन्न होके मोडा खा पिरिया म धर क अपने घर आई, और आके वाने भस के गोबर सा लीप के हरछट खों छेवल के पत्ता पैं लिखो और विधी सों पूजन करक अपनी भूल चूक मनाई और फिर जा कई क हे हरछट जैंसी हमाई फेरी तसी सबइ की फेरिओ।

अध्ययनशील व्यक्ति विचार करेंगे कि हरछट की इस बुदेलखण्डी कहानी म सत्य की प्रतिष्ठा को कितने सुदर ढग स सजोया गया है।

**श्रीकृष्ण जन्मोत्सव और मेला**—भादो कृष्ण अष्टमी को बुदेलखण्ड में श्रीकृष्ण ज मोत्सव मनाया जाता है जो ब्रजभूमि से किसी प्रकार कम नहीं होता। इस अवसर पर प्रत्येक गृह गौ के गोबर म लीपकर पवित्र किया जाता है। घर क बड बूढे व्रत रखते हैं और अधरात्रि मे रोहिणी नक्षत्र आन पर परिवार के सभी व्यक्ति एकत्र हो श्रद्धापूवक श्रीकृष्ण भगवान का ज मोत्सव मनात हैं। पूजन की प्रथा इस प्रकार है। बाल कृष्ण की मूर्ति को पहले यमुना जल म स्नान कराकर खीरा काटा जाता है। इस नरा छीनना कहते हैं। इस अवसर पर यह लोकगीत भी इस प्रदेश म गाया जाता है

**ऐसी मिजाजिन दाई, लाल को नरा न छीन।**
**नरा न छीन मों हूँ न बोल**
**ठाडी ओंठ बिदोले।**
**कन्यया को नरा न छीन। ऐसी**

मूर्ति को स्नान कराने क उपरात नवीन वस्त्राभूषण धारण कराकर सिंहासन पर पौढा कर गुड के लडड जिनम सोठ पीपरामूर आदि मवा मिला रहता है) और पजारी पचामृत खीरा तथा मिष्टान्न का भोग लगा आरती उतारते है। तत्पश्चात प्रसाद वितरण करके व्रती पुरुष अपना व्रत खोलता है।

कृष्ण जन्म क उपलक्ष्य म बुन्देलखण्ड क विभिन्न नगरो और ग्रामों म बड

बडे मेले भरते हैं जिनमें ओरछा, छतरपुर, तालवहट और सागर के मेले विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

अनेक नगर तथा ग्रामों में 'दधयान' होते हैं। यह प्रथा इस प्रकार है पीतल अथवा मिट्टी के पात्र में दही, दूध और पंचमेवा भर कर उसमें सोना और रस्सी बाँधकर उसे मध्य में अधर लटका दिया जाता है। इसे युवकों के झुण्ड-के झुण्ड एकत्र होकर लूटते हैं। जो व्यक्ति लूट लेता है उसको पुरस्कार में सवा रुपया प्राप्त होता है।

इसी उत्सव के उपलक्ष्य में यहीं कहीं गुड की पारी (पाडी) बाँधी जाती है और इसका संचालन महिलाएँ करती हैं। खजूर के एक सूखे तने को मैदान में गाड दिया जाता है। उसके शिरो भाग पर एक पोटली में पाँच सेर गुड और सवा रुपया बाँध दिया जाता है। इसकी रक्षा के लिए लम्बे लम्बे हरे बाँस लिये चारों ओर ग्रामीण युवतियाँ उपस्थित रहती हैं। इनमें एक महिला अधिष्ठात्री होती है जिसकी आज्ञा द्वारा कार्य संचालित होता है।

गुड बँधने के उपरान्त संचालिका युवतियों का व्यूह बनाकर नवयुवकों को उस बंधी हुई गुड की पारी तोडने का संदेश देती है। संदेश सुनते ही युवकों की पार्टी हाथों में जरी (वार रोकने की) और लकडियों से अपनी रक्षा करते हुए टूट पडती है। *यह देख युवतियाँ रोकने की दृष्टि से उन युवकों पर बाँसों* द्वारा प्रहार करती हैं। लेकिन युवक युवतियों के प्रहार को अपने साहस से झेलते हुए अपने पर वार करने वाली युवतियों के झुण्ड में धँस उस गडे हुए खजूर के तने पर चढकर पारी लूट लेते हैं।

बडा वीरतापूर्ण संघर्ष छिडता है कितनों के ही सिर खुल जाते हैं। हाथ-पैरों में चोटें आ जाती हैं। किन्तु विशेषता यह है कि संघर्ष में किसी प्रकार मर्यादा का उल्लंघन या अशिष्टता का व्यवहार नहीं होता। जो युवक उस गुड की पारी को तोड लेता है उसको संचालिका तिलक करके पुष्पमाला पहनाती है। अन्य युवतियों द्वारा भी वह सम्मानित होता है।

यह 'गुड की पारी' का उत्सव बुन्देलखण्ड की संस्कृति और यहाँ के युवक तथा युवतियों की साहसिक वीरता का द्योतक है।

**पीर बादशाह का मेला**—बुन्देलखण्ड के कुछ नगर और ग्रामों में भादों कृष्ण एकादशी को पीर बादशाह का मेला भरता है। यह हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का प्रतीक है। पीर बादशाह की मान्यता अधिकतर मेहतरों, धोबियों कोरियों और मुसलमानों में है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों में भी इनकी मान्यता है। जनश्रुति के अनुसार पीरशाह ठाकुर थे जिनको माता द्वारा दूसरों का उपकार करने का आदेश मिला था। ये माता की आज्ञा पाकर आजीवन सेवा कार्य करते रहे।

जिन जिन स्थानों पर मेल भरते हैं, वही इनके चबूतरे बने हैं। वहाँ वे घुल्ग (भवन) के सिर पर आकर खेलते हैं और अपनी पीठ पर एक लाहे की साँकरो गुही (मुष्टिका के बनाव की—जिसको झमर कहते हैं) बडे वेग से पटकत रहते हैं। जब य खेलने लगते हैं तब प्रार्थी प्राथना करते हैं। उसे सुनकर य उमका कष्ट दूर करने का भभूत देते हैं। इस मेले म जो भक्त आते हैं उनके हाथा म मोर पख से सुसज्जित बडे-बडे बाँस और डमरू होते है। वे डमरू बजात और गीत गाते चलते है।

हरतालिका व्रत—बुन्देलखण्ड म भादो शुक्ल तीज को हरतालिका व्रत रखा जाता है। यह प्राय अविवाहित और सधवा महिलाएँ ही रखती है। यह व्रत णवती की साधना का प्रतीक है। पुराणो म दूसरी कथा आई है।

व्रत म अन्न फल फूल, जल आदि कुछ ग्रहण नही किया जाता। सध्याकाल म शिव की आराधना प्रारम्भ होती है जिसम चार प्रहर के चार होम होत है। रात्रिभर महिलाए जागरण करके भक्ति भावना स गायन करती है। ब्रह्ममुहूर्त म व मृतिका की उस प्रतिमा को जिसका कि पूजन करती है आरती उतारकर समीप के सरोवर या सरिता म सिराने ल जाती है। तदुपरा त व्रत खोलती है।

हरतालिका व्रत क पूजन स सबधित जो लोकगीत इस क्षेत्र म प्रचलित हैं उनको हम यहा प्रस्तुत कर रहे है

पट खोल दो सभू चढाऊँ सिसिया पट खोल दो।
एक डर है, मोय हा, अरे भोला सास ससुर को।
दूजें भोलन सौं लागी अँखिया। पट खोल दो
एक डर है मोय हा अरे भोला, जेठ जिठानी की।
दूज भोलन सौं लागी अँखियाँ। पट खोल दो

हट पर गइ गौरा नार महादेव।
मढिया बना देओ बाग मे।
काये की मढिया बने,
उर काये के लागें किवार।
महादव मढिया बना देओ बाग मे।
सोने की मढिया बने।
उर रूपे के लागे किवार
महादेव मढिया बना देओ बाग मे।

श्री गणेश जन्म और जल विहार—श्री गणेश जन्म उत्सव इस क्षेत्र म महाराष्ट्र स किसी प्रकार भी कम उत्साह से नही मनाया जाता है। यह उत्सव

गणेश चतुर्थी से प्रारम्भ होता है और भादो शुक्ल एकादशी को जल विहार के दिन समाप्त हो जाता है।

झाँसी छतरपुर, सागर, देवरी, ग्वालियर मऊरानीपुर आदि स्थानों में इस उत्सव के विशेष मेले भरते हैं। मऊरानीपुर में इस उत्सव की मान्यता अन्य शहरों की अपेक्षा अत्यधिक है। प्रत्येक धनी मानी गृह में सोने, चाँदी और अभ्रक आदि के मन्दिर सजाकर गणपति की प्रतिमा स्थापित कर झांकी बनाई जाती है। इस अवसर पर झाँकी का अवलोकन करने के लिए बहुत दूर दूर से यात्री आते हैं। यह उत्सव जल विहार एकादशी तक रहता है।

एकादशी के संध्या समय स्थानीय श्रीराम कृष्ण के मंदिरों की ओर से जुलूस निकलता है। ये मंदिर सोने चाँदी द्वारा अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से सुसज्जित होते हैं। ये सुखनई नदी पर भगवान के जल विहार के लिए जाते हैं और पूर्णिमा तक यह विहार उत्सव निरंतर चलता रहता है।

इस अवसर पर नगरपालिका द्वारा रामलीला, नाटक नौटंकी की व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ बहुत रूप में मैर सम्मेलन और कवि सम्मेलन का आयोजन भी होता है जिसमें भारत के ख्याति प्राप्त कवि भाग लेते हैं।

ऋषि पचमी व्रत—भादो शुक्ल पंचमी को ऋषि पंचमी का व्रत भी बुन्देलखण्ड में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक मनाया जाता है। इस व्रत का आधार महाभारत काल का एक आख्यान है। यह इस प्रकार है

'राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से प्रश्न करते हैं कि जो स्त्रियाँ रजस्वला काल में गृह-कार्य करती रहती हैं और इस कारण जिन्हें पातक लगता है उसकी निवृत्ति किस प्रकार होती है ?

'श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि एक समय इन्द्र को वृत्तासुर दैत्य के वध का पाप लगा था। तब इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की थी। ब्रह्मा ने तब उस पाप को चार भागों में विभाजित कर दिया था (१) अग्नि की प्रथम ज्वाला में, (२) वर्षा-काल के नदी के फेन में (३) वृक्ष से चूने वाली मस्ती में और (४) रजस्वला स्त्री में।

'इसके उपरान्त सुमित्र नामक ब्राह्मण की स्त्री जिसका नाम जयश्री था रजस्वला होने पर गृह के सब कार्य करती रही। फलस्वरूप मरणोपरान्त सुमित्र को बैल और जयश्री को कुतिया की योनि प्राप्त हुई।

'सुमित्र के पुत्र सुमति और वधू चन्द्रवती अपने पितरों के श्राद्ध के लिए खीर बना रहे थे इतने में उसमें सर्प गिर पड़ा किन्तु यह चन्द्रवती नहीं देख सकी। भाग्यवश इनके ही गृह में इनके पिता बैल और माता कुतिया रूप में इनकी देख रेख किया करते थे। खीर में सर्प को गिरते हुए कुतिया ने देख

लिया। तब उसने सोचा कि यदि ब्राह्मण यह खीर ग्रहण करेंगे तो उनकी मृत्यु हो जायगी जिसका पाप मेरी पुत्र वधू पर पड़ेगा। इस दृष्टि से कुतिया ने उसमें अपना मुँह डाल दिया। जब चन्द्रवती ने यह देखा तो क्रोधित हो कुतिया को मारने लगी उस खीर को उसने नाले में गिरा दिया और दुबारा खीर बनाकर ब्राह्मणों को भोजन कराया किन्तु कुतिया को खीर में मुँह लगाने के अपराध में भोजन नहीं दिया। बैल को भी उसने घास नहीं डाला।

प्रसंगानुसार बैल और कुतिया रात्रि में अपना दुःख एक दूसरे से कहने लगे, जिसको अनायास सुमति और चन्द्रवती ने सुन लिया। तब उनको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इस प्रायश्चित्त के लिए सुमति ने गंगा तट पर जाकर ऋषियों से उपाय पूछा। ऋषियों ने पशु योनि से निवृत्ति के लिए भादों शुक्ल पंचमी को सप्तऋषि तथा अरुंधती के पूजन का उपाय बताया। तभी से इस जनपद में ऋषि पंचमी का व्रत प्रचलित है जो रजस्वला काल में गृह कार्य करने वाली स्त्री के पापों को नष्ट करता है।

इस कथा प्रसंग से यह शिक्षा भी मिलती है कि यदि अपने कार्य में किसी के द्वारा हानि हो जाय तो उस अवस्था में भी अपनी बुद्धि का संतुलन न खोकर विवेक से काम लेते हुए संतोष रखना चाहिए।

**सन्तान सप्तमी व्रत**—भादों शुक्ल सप्तमी को बुन्देलखण्ड की सभी महिलाएँ संतान सात का व्रत सश्रद्धा रखती हैं। कहा जाता है कि इस व्रत की प्रथा द्वापर काल से प्रचलित है। इस कथा में श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने श्रीमुख से देवकी के गर्भ से जन्म लेने का वृत्तान्त कहा है जो लोमश मुनि की मथुरा यात्रा से प्रारम्भ होता है।

लोमश मुनि वसुदेव के घर जाते हैं। वसुदेव अपने पुत्रों के कंस द्वारा वध किये जाने का वृत्तान्त सुनाते हैं। तब लोमश मुनि वसुदेव और देवकी को राजा नहुष तथा विष्णुगुप्त ब्राह्मण की कथा सुनाते हैं। तदुपरान्त एक ईश्वरी रानी और भूषण नाम की ब्राह्मणी का प्रसंग आता है। रानी के कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण ब्राह्मणी रानी को संतान सप्तमी का व्रत रखने और शिव पूजन करने का उपदेश करती है। फलस्वरूप उसके संतान होने लगती है।

लोमश मुनि देवकी को भी यही व्रत रखने का उपदेश करते हैं। मुनि की आज्ञा मानकर देवकी भादों शुक्ल सप्तमी का व्रत और शिव का पूजन करती है जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण का जन्म होता है।

इस व्रत में स्त्रियाँ जब तक पूजन नहीं कर लेंगी तब तक जल ग्रहण नहीं करतीं। इसमें स्वर्ण अथवा चाँदी की एक चुरिया या चूरा और सात पुआ (गुड़ मिश्रित गहूँ की पूड़ी) रखकर शिव का पूजन किया जाता है। स्त्रियाँ वही चुरिया या चूरा और वही पुआ ब्राह्मण को अर्पित कर देती हैं। किन्तु

अब केवल पुआ ही अर्पित किये जाते हैं, चुरिया या चूरा नहीं। संतान सप्तमी का व्रत आज भी पूरे जनपद में रखा जाता है।

अनन्त चतुर्दशी का व्रत—भादों शुक्ल चतुर्दशी को इस क्षेत्र में अनन्त भगवान की अर्चना बड़ी श्रद्धा भावना से प्रत्येक गृह में होती है। इस व्रत को प्राय सभी स्त्री पुरुष रखते हैं। दिन में व्रत रखकर मध्याह्न में पूजन करते हैं। पूजन में रेशम या सूत के गंडा को जिसमें चौदह ग्रंथियाँ लगी रहती हैं चौक पूरकर पट पर रख फिर चंदन अक्षत, पुष्प चढ़ाकर उसकी पूजा करते है। एक फरा (आटे की पानी में उबली हुई रोटी)—जिसमें चौदह गोल टिपकियाँ लगी रहती हैं—लेकर उसके ऊपर एक गोरिया की भाँति को उबले हुए आटे का ढड़ोला बनाकर चौदह बार ढड़ोला जाता है। उस समय ये पंक्तियाँ कही जाती हैं

काय ढड़ोले ढड़ोलना अनत धर

पाये तो धाय धपाय।

तदुपरान्त आरती उतारकर कथा सुनाई जाती है। इस कथा को महाभारत काल में सूतजी ने शौनक आदि ऋषियों के प्रति कहा है। कथा का प्रारम्भ उस यज्ञशाला से होता है जो जरासंध वध और राजसूय यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए बनवाई गई थी। यज्ञशाला में भूमि में जल का भ्रम होने के कारण द्रौपदी द्वारा दुर्योधन का उपहास हुआ था। कथा प्रसंग यहीं से प्रारम्भ होता है।

जुए में दुर्योधन पांडवों से जीत जाता है। इससे श्रीकृष्ण को दुख होता है। पांडवों को इस कष्ट से छुड़ाने के लिए वे युधिष्ठिर को अनंत भगवान के व्रत रखने का साधन बताते हैं।

युधिष्ठिर के श्रीकृष्ण से यह प्रश्न करने पर कि यह व्रत किस देवता का है, श्रीकृष्ण ने अपने ही अनन्त नाम का उल्लेख कर व्रत प्रारम्भ करने को कहा। इसमें शेषशायी भगवान के पूजन का वर्णन और सतयुग में सुमन्तु ब्राह्मण जिनकी भृगु ऋषि की कन्या विवाही थी का प्रसंग आया है। इससे यह सिद्ध होता है कि अनन्त व्रत बुंदेलखण्ड में महाभारत काल से प्रचलित है।

जल विहार का मेला—बुन्देलखण्ड के अधिकांश शहरों और ग्रामों में जल विहार उत्सव बड़ी सज धज से मनाया जाता है। इस जल विहार का अपना विशेष महत्त्व है। वर्षा-काल में नदियों का जल अपवित्र कहा गया है। उसको पवित्र करने के लिए भगवान पहले अपने चरण पखारते हैं जिससे वह पवित्र हो जाता है और फिर वह जल मानव-समाज के काम में आता है।

यह उत्सव भादों शुक्ल एकादशी को और इसके अनन्तर कहीं कहीं श्रावण की द्वादशी से पूर्णिमा तक मनाया जाता है। इस दिन श्रीराम और श्रीकृष्ण के

सोरा बोल की एक कानिया।
सुनों आमोती दामोती रानी।
हाथी पूजिओं।

मामुलिया—आश्विन कृष्ण पक्ष म कन्याओं का भी एक सुंदर त्योहार इस क्षेत्र म होता है, जो मामुलिया' के नाम से प्रसिद्ध है। इस त्योहार म अविवाहित लडकिया वर वृक्ष की डाली को पुष्पा से सजोकर अपने पुरा पडोसिया के द्वार पर जाकर उसका प्रदर्शन करती हुई यह लोकगीत गाती हैं

त्याओ त्याओ, चपा चमेली क फूल,
सजाओ मेरी मामुलिया।
मामुलिया के आये लिवौआ
झमक चली मेरी मामुलिया।

इस लोकगीत म लडकियो द्वारा यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि सहेली के लिवान वाले (ससुराल वाले) आन वाले हैं। इस कारण उसका चपा, चमेली के पुष्प लाकर शीघ्र शृगार करो लेकिन तब तक लिवाने वाले आ जाते है और वह उनके साथ विदा होने पर झमक-झुककर चलने लगती है।

यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि अन्य वक्षो की अपेक्षा मामुलिया म वर वृक्ष की डाली का ही प्रयोग क्या किया जाता है। इस सम्बन्ध म एक कहावत मिलती है कि समय कचरिया कुसमय बेर।

अर्थात फसल उत्तम होने का प्रमाण यह है कि कचरिया का उत्पादन अधिक होगा और जब अच्छी फसल आने की नही होगी तब वर वक्ष अत्यधिक फलेगा। बेर से साधारण जन जीवन का निर्वाह आसानी से चल जाता है क्योकि उसके कई पदार्थ बन जाते हैं। सूखे बेर को कूटकर बिरचून (आटा) बनाया जाता है जो जल म घोलकर खाया जाता है। यह शीतल और पित्त-वधक होता है। सूखे बेर पानी म उबालकर खाय जाते हैं जो ग्रीष्म ऋतु मे बडे स्वास्थ्यप्रद होते हैं। इसके अतिरिक्त जरिया के कच्चे बेर को औषधि रूप म देने स कुकुरखाँसी को बडा लाभ होता है।

ये गुण बेर वक्ष में होते हैं, किन्तु परिवार के लिए वह किस प्रकार हितकर होता है, कि वह मामुलिया म प्रयुक्त किया जाता है? दृष्टिकोण यह है कि बेरो में फूल फल और काटे होते हैं और लडकी म भी पुष्पो जसी सुवास पुत्र रूपी फल देने की अनुपम शक्ति और काँटो जसी अपने उद्यान रूपी परिवार को सुरक्षित रखने की अटूट श्रद्धा भक्ति होती है, इसी कारण अन्य वक्षो के स्थान पर बेर वक्ष की डाली को ही मामुलिया का रूप देकर प्रदर्शन किया जाता है।

महालक्ष्मी व्रत या हाथी पूजन—आश्विन कृष्ण अष्टमी को महालक्ष्मी व्रत तथा ऐरावत हाथी के पूजन की प्रथा भी बुन्देलखण्ड में महाभारत काल से ही प्रचलित है। इस व्रत को केवल सुहागिन महिलाएँ ही रखती हैं। वे दिन में उपवास करके दो प्रहर उपरान्त मिट्टी के हाथी का विधिवत पूजन करती हैं। पूजन के उपरान्त जो कहानी कही जाती है वह महाभारत काल की एक घटना से सम्बन्ध रखती है। कथा इस प्रकार है

कुन्ती और गान्धारी व्रत के दिन सरोवर पर एक ही स्थान पर स्नान कर रही थीं। गान्धारी को विलम्ब से स्नान करते देख कुन्ती ने कहा—बहिन, शीघ्र स्नान करके चलो, क्योंकि घर चलकर मिट्टी का हाथी बनाना है। कुन्ती की इस बात को सुनकर गान्धारी ने व्यंग्य कसते हुए उत्तर दिया—बहिन, तुम ही शीघ्र घर जाओ, क्योंकि तुम्हारे तो केवल पाँच ही पुत्र हैं। इस कारण तुमको हाथी बनवाने में विलम्ब लगेगा और हमारे तो सौ पुत्र हैं। यदि वह थोडी थोडी ही मिट्टी लाएगे तो हाथी शीघ्र बन जाएगा। गान्धारी की यह बात कुन्ती के हृदय में चुभ गई और घर आकर उसने अपने पुत्र अर्जुन को सब वृत्तान्त कह सुनाया।

माता की बात सुनकर अर्जुन बोले, माता धैर्य रखो मैं मिट्टी का नहीं इन्द्र का ऐरावत हाथी पुजवाऊँगा। इतना कहकर वह बाणों द्वारा हस्तिनापुर से इन्द्रलोक तक मार्ग बनाने लगे। मार्ग बनने पर उन्होंने इन्द्र के ऐरावत हाथी को उतारा और माता के सामने खडा कर दिया। कुन्ती ने प्रसन्न होकर उसका पूजन किया और गान्धारी को यह बता दिया कि

माता जनमे दो जने, के दाता के सूर।
मातर तौ बाँझहि भली, वथा गमावे नूर।

महालक्ष्मी के हाथी पूजन के अवसर पर स्त्रियाँ जो कहानी कहती हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रदेश में कोई मगरसेन नाम का भी राजा रहा होगा जिसका राज पाटन नाम के नगर में रहा होगा। उस राजा की आमोती दामोती नाम की दो रानियाँ होंगी और राजा इस महालक्ष्मी के हाथी पूजन की प्रथा से प्रभावित हुआ होगा तथा राजमहल में पूजन कराने वाले ब्राह्मण या भाट आते होंगे। उन्होंने स्वार्थवश पूजन के बाद कही जाने वाली कहानी में राजा और रानियों का नाम उनकी कीर्ति के लिए जोड दिया होगा। वह इस लोकगीत में वर्णित है

आमोती दामोती रानी।
पोला पल पाटन गाँव मगरसेन राजा।
बम्मन बरुआ कथा कानियाँ।
हमसो कात तुमसो सुनत।

वन की चिरयाँ चुनाउत जहैं।
बूडी डुकरिया जुआउत जहैं।
ल्वा ल आईं मोय। मेरी पिठो

आप देखेंगे कि लोक कल्याण की भावना से समवत यह लोकगीत कितना श्रेष्ठ है। बहिन भाइयो के प्रति अपनी पवित्र भावना अभिव्यक्त कर रही है। ये चन्द्र और सूय दोनो मेरे भाई हैं जो मेरी पीठ के जाये हुए हैं अर्थात मुझसे छोटे हैं।

देखिय कितनी सुन्दर कल्पना है। बुन्देलखण्ड म जब बहिन के उपरान्त भाई का जन्म होता है तब उस बहिन की पीठ का पूजन किया जाता है। इस क्षेत्र म यह प्रथा इस युग म भी प्रचलित है। इसी दृष्टि से उपयुक्त लोकगीत म उसने भाई को अपनी पीठ पर का घोषित किया है। तदुपरान्त वह यह भाव प्रकट करती है कि ये मेरे भाई जब मुझको ससुराल से लिवाने जायेंगे तब नील वर्ण के अश्व पर सवार होकर हाथ म लाल छडी को चमकाते हुए चलेंगे और माग म जो अध कुआ (अँधकूप) दिखाई देंगे ये उनका जीर्णोद्धार करवाते जायेंगे, जो वीरान उजाड़ मिलेंगे उनको आबाद कराते जायेंगे एवं वन म जो पक्षी मिलेंगे, उनको चुगाते हुए चलेंगे। इसके अतिरिक्त वन पथ म जो वृद्धा दृष्टि गोचर होगी उन सबको भोजन से सन्तुष्ट करते जायेंगे। इसके उपरान्त मेरी ससुराल म पहुँचकर मुझे लिवाकर अपने घर जायेंगे।

वास्तव म यह सुअटा का लोकगीत, लोक कल्याण की भावना से परम श्रेष्ठ कहा जा सकता है। लड़कियाँ सुअटा पर नित्यप्रति नौ दिन चौक पूरती हैं और काय (अघ) डालकर उपयुक्त भावपूर्ण गीत गाती हैं। दसवें दिन सन्ध्या म जब वे सुअटा खेलती हैं तब चौक पूरने के उपरान्त भीगे हुए चनो का सत्कर सुअटा की गौरा रानी को भोग लगाकर यह कहती हैं कि गौरा रानी को पट पिरानो भसकू। इसमें सम्भवत नौ महीना के गभ का भाव समाहित है।

भसकूँ के उपरान्त सामूहिक रूप से लड़कियाँ पड़ोस म भिक्षा मागने जाती हैं जिसको ढिरिया कहा जाता है। इस अवसर पर ये जो लोकगीत गाती हैं उसे लोक साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त भाव प्रवण कहा जाता है।

पूछत पूँछत आय हैं नारे सुअटा कौन बिरन ? तेरी पौर।
पौरन बठे भया पौरिया, नारे सुअटा, चौकिन बठे कुतवाल।
बडी अटारी बडे दवा नारे सुअटा बडे तुमाये नाँव।
गज मुतियन के झूमका, नारे सुअटा लटकें पौर द्वार।

बहिन कह रही है कि भाई, हम तुम्हारे महल को पूछते-पूछते हुए आये है और हमको यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ कि तुम्हारे महल के द्वार पर

मामुलिया का त्योहार प्रकारांतर से इस जन पद को जीवन निर्वाह की सतत प्रेरणा भी देता है।

**नवरात्रि, सुअटा और दशहरा**—आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से दुर्गा पूजन (नवरात्रि) प्रारम्भ होता है और इसी दिन मे लडकियाँ सुअटा (नौरता) खेलना प्रारम्भ करती हैं। सुअटा का मनोरम खेल इस प्रकार है

सुअटा को हिमालय का रूप देकर उसमे सीन्यिा लगाई जाती हैं, जिन सीन्यिो पर खेल्ने वाली लडकिया मिट्टी की अपनी अपनी नौ गौरैयाँ रखती है। *तदुपरान्त सुअटा पर मिट्टी निर्मित गौरा रानी की कलापूर्ण मूर्ति प्रस्थापित* करके सुअटा के सम्मुख दुदी के रग बिरग कलापूर्ण चौक पूरती है। (यह चौकों का पूरा जाना भारतीय चित्रकला का प्रारम्भिक रूप है।)

चौक पूरन के उपरान्त लडकियाँ दूर्वा, अक्षत, पुष्प लेकर सुअटा के सम्मुख खडी होती हैं और दूध, जल द्वारा अर्घ्य (काँय डाल्ती है) देती हैं फिर सामूहिक रूप से मधुर स्वर मे यह लोकगीत गाती है

हिमाँचल की कुवरि लडांयतीं
नारे सुअटा गौरा बाई नेरा, तेरा नाँय।

हे देवि हिमगिरि की पुत्री गिरिजा! हम सब तुम्हारा नमन और विनय करती हैं। इसके उपरान्त लडकियाँ आरती उतारती हुई यह गीत गाती हैं

झिल मिल हो झिल मिल तेरी आरती।
महादेव तेरी पारती, की बाजी नौंनी।
चदा बाऔ नौंनी, सुरज बाजी नौंनी।
नौंने सलौने, भौजी कत तुमाये,
बिरन, हमाये, झिलमिल हो

हे झिलमिलाते हुए ज्योतिर्देव! तुम्हारी पत्नी आरती सुन्दर है और महादेव की भार्या पार्वती भी अति सुन्दर हैं और किस किसकी वधू सुंदर हैं? चन्द्रमा की सूर्य की। इसके अनन्तर भावज जिनके मुख पर लावण्य झलक रहा है। उनके पति यानी हमारे भाई भी सुन्दर हैं। इसके उपरान्त लडकियाँ फिर गीत गाती हैं

मेरी पिटी के चदामल भया सुरजमल भया।
जे कोई भया माई के जाये बहिन के खिलाये
लुआउन जहैं बुलाउन जहैं।
नील स घुड्व कुँदाउत जहैं।
लाल छडी चमकाउत जहैं।
अध कुआ उघराउत जहैं।
उजरे स बाग लगाउत जहैं।

माता के प्रचलित लोकगीतों में से हम एक गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जो ममता का प्रतीक है

दिन की उगन, किरन की फूटन,
सुरहिन बन खों जाय हो मांय।
इन बन चालीं सुरहिन दुज बन चालीं।
तिज बन पौंची जाय हो मांय।
कजरी बन चन्दन वारौ बिरछा,
जा सुरहिन मौं डारौ हो मांय।

नव प्रभात के उदय होने का समय था। इस समय सूर्य अपनी अरुण किरणों को बिखेर रहा था। ऐसे सुहावने समय में धेनु ने वन को प्रस्थान किया। वह एक वन दूसरे वन और फिर तीसरे वन में पहुंचती है। इसका नाम कजरी वन था। उस कजरी वन में एक हरा भरा चंदन का वृक्ष था जिसकी कोंपलों को खाने के लिए उसने एक दो बार अपना मुख डाला।

इक मौं घालौ सुरहिन दूजौ मौं घालौ,
तीज मौं सिंघा हुंकारो हो मांय।
अब की चूक बगस वारे सिंघा
घर बछरा नादान हो मांय।

गाय के तीसरी बार मुख डालते ही क्या हुआ कि उस वन का राजा सिंह आ गया और गाय को चन्दन के वृक्ष को खाते हुए देख, क्रोधित हो हुंकार मारकर गाय पर टूट पड़ा। सिंह को क्रोधित हुआ जानकर गाय अपनी भूल से मुक्ति पाने के लिए प्रार्थना करने लगी कि हे भाई सिंह, अब की बार तुम मेरी इस भूल को क्षमा कर दो क्योंकि मैं अपनी थान (गाय के बंधन का स्थान) पर अपना अबोध छोटा बछड़ा छोड आई हूं। इस कारण तुम मुझको अभी मुक्त कर दो और मैं कल फिर तुम्हारे इसी कजरी वन में आ जाऊंगी तब तुम हमारी भक्ष्य (शिकार) कर लेना। सिंह यह सुनकर कहने लगा कि हे सुरहिन कल तुम्हारे इस वन में आने का कोई साक्षी बन सकेगा? यह सुनकर गाय साक्षी बनाने के सम्बन्ध में अपने विचार यों प्रकट करने लगी

चंदा सूरज मोरे लागें लगनिया
बन के बिरछा जमान हो माय।

गाय कहने लगी—हे सिंह चन्द्र और सूर्य मेरे परम स्नेही होने है, इसलिए मेरे यहां आने का ये दोनों तुमको विश्वास दिला सकते हैं और साथ ही तुम्हारे वन के ये हरे भरे वृक्ष मेरे साक्षी हो सकते हैं। गाय की इस बात को सुनकर सिंह फिर प्रश्न करता है

पहरेदार बैठे हैं तथा चौकी पर कोतवाल तैनात हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारे इस महल की बड़ी अटारी और बड़े द्वारे दिखाई दे रहे हैं और शहर में तुम्हारा नाम भी महल के अनुरूप है जिसके द्वार पर गजमुक्ताओं के वंदनवार लटककर शोभा बढ़ा रहे हैं।

इसके बाद लड़कियां भावज से भिक्षा माँगती हुई, यह भाव प्रदर्शित करती हैं

> एसो हाँत गवाइयो भौजी, आव पसेरी दो चार।
> भर कोपर रानी ल चलीं, नारे सुअटा बिटियन दई असीस।
> जितने अच्छित हम दये नारे सुअटा उतने हुलसा तेरे पूत।
> बूदन पूतन घर भर नारे सुअटा, बउअन भर चितसार।

जब लड़कियाँ भावज से भिक्षा माँगती हैं तब भावज हर्षित हो उन्मुक्त हाथों से कोपर में भरकर अक्षत (चावल) प्रदान करती है जिससे लड़कियाँ सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं कि भावज, जितने अक्षत तुमने हमको प्रदान किये हैं उतने ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे और उन पुत्रों की वधुओं से तुम्हारी यह चित्रांकित अटारी भर जायगी।

सुअटा का यह लोकगान और सुअटा पर चौक पूरने की प्रथा बुन्देलखण्ड के जन जीवन को आज भी कला और समृद्ध जीवन की प्रेरणा प्रदान करती है।

दुर्गा पूजन और जवारों का मेला—दुर्गा पूजन और जवारों का मेला बुन्देलखण्ड में दो बार होता है—पहला चैत्र शुक्ल में दूसरा आश्विन शुक्ल में। दुर्गा पूजन के प्रारम्भ के दिन ही जवारे बोये जाते हैं और उनके पूजन का तथा दुर्गा पूजन क्रम नौ दिन चलता है।

दुर्गा पूजन में अधिकांश घरों में नौ दिन तक संयम नियमपूर्वक दुर्गा सप्तशती अथवा रामायण का पाठ किया जाता है। सायंकाल हवन करके विसर्जन करते हैं। और कुछ व्यक्ति विधिवत शतचण्डी यज्ञ करते हैं।

जवारों की मान्यता भी दुर्गा देवी की ही मानी जाती है। किन्तु अन्तर इतना है कि इस जनपद में जवारे काछी कोरी धीमर, आदि किसान या मजदूर कहा जाने वाला वर्ग बोता है। और ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आदि अन्य जातियाँ नव रात्रि में पूजन हवन आदि करती हैं।

जवारे आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के प्रातःकाल भीगे हुए जौओं द्वारा मिट्टी के पात्रों में बो दिये जाते हैं। उसी दिन से उन घटों का विधिवत पूजन होता है। सायंकाल में आरती उतारी जाती है। नौ दिन पूर्ण होने पर दसवें दिन जवारों के घटों को स्त्रियां अपने अपने सिरों पर धरके माता के भजन गाती हुई मंदिर के बराबर या सरिता पर सिराने जाती हैं।

वन को प्रयाण कर दिया। दोनो वनो को लाघकर जब तक वे तीसरे वन म पहुचते है तब तक सिंह क्षुधातुर होकर उठ उठकर वन पथ की ओर देख गाय की प्रतीक्षा करता हुआ कहता है कि गाय तुम अभी तक नही आई हो तुम्हारी प्रतिज्ञा का समय बीता जाता है। तभी गाय छोटे बछडे को साथ म लेकर सिंह के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। उसे देखकर सिंह प्रसन्न मन स कहने लगता है

बोल की बाँदी वचन की साची
एक गइ दो आइ हो, माय ।

सिंह कहने लगता है कि सुरहिन जिस प्रकार तुम अपने बोलो म बँधी हुइ निकली और उसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा की भी साची निकली तुम धन्य हो। यहाँ स तुम केवल एक गई थी और अपने स्थान स दो होकर आइ। सिंह के ये वचन सुनकर बछडा कहने लगता है

पैल ममया हमइ खाँ भख लो
पीछे हमाइ माइ हो माय ।

मामा, प्रथम तुम अपनी क्षुधा को मेरा भक्षण करके तृप्त कर लो उसके उपरान्त मेरी माता को खाना। बछडे के इन वचनो म छिपी हुई नीतिपूर्ण ममता और साहस पर बुन्देलखण्ड म एक कहावत प्रचलित है कि आग आय नाहर नइ खात यही बात सिद्ध हुई। यही थी हिंसा पर अहिंसा की विजय।

बछडे ने सिंह को मामा कहकर सम्बोधन किया था। इस कारण उसकी ममता जागृत हो उठी और वह द्रवित होकर बछडे स कहने लगा

कोनें भनेजा तोय सिख बुध दीनी
कौना लगे गुरु कान हो, माय ।

सिंह बोला कि भानजे किसने तुमको यह उत्तम शिक्षा दी है और किसने तुमको श्रेष्ठ बुद्धि दी है तथा कौन सा गुरु तेरे कान लगा है कि जिसने यह ज्ञान सिखाया है। तब बछडा फिर सिंह को उत्तर देता है

देवी ज्वाला मोय सिख बुध दीनी,
बीर लँगुर लगे कान हो माँय ।

मामा ज्वालादेवी ने मुझको यह शिक्षा और बुद्धि दी है और वीर हनुमान ने गुरुवत कान म लगकर मुझको ज्ञान सिखाया है।

बछडे ने इस बार और भी सूझ से उत्तर दिया था, क्योंकि सिंह आद्या शक्ति भगवती का वाहन होता है, और जब उसको यह ज्ञात हुआ कि इस बछडे को तो हमारी स्वामिनी का स्नेह प्राप्त है तब वह प्रसन्न होकर बछडे स कहने लगता है

चदा, सुरज दोउ, ऊगें, अथय
वन विरक्षा मुरझाय हो मांय।

हे गाय चन्द्र और सूर्य ये दोनों नित्य प्रति उदय और अस्त होते हैं इनका क्या विश्वास ? और वन के वृक्ष भी हरे होकर फिर मुरझा जाते हैं। यह तुम्हारी क्या साक्षी देंगे ? मुझको इन तीनों पर विश्वास नहीं है। इसके पश्चात गाय फिर कहती है

धरती के बासुक मेरे लागें लगनियाँ
धरती मोरी जमान हो, मांय।

हे सिंह जो इस पृथ्वी को अपने पर धारण किए हुए हैं वे शेषनाग भी मेरे परम स्नेही होते हैं। ये तुमको मेरा विश्वास दिला सकते हैं। यह पृथ्वी मेरी धर्म की बहिन होती है यह मेरी जमानत दे सकती है। सिंह अब गाय की बात का विश्वास करके उसको घर जाने की आज्ञा दे देता है और गाय सिंह के वन से घर को चल देती है

इक वन चालीं सुरहिन दुज वन चालीं
तिज मे बगर रमानो हो माय।
वन की हिरानी सुरहिन बगरन आइ
बछरे राम सुनाई हो माय।
आओ आओ बछरा, पीलो मेरो दुदुआ
सिंघें वचन दे आई हो, माय।

गाय वनों में मार्ग को तय करके अपने स्थान पर आकर रैंभाकर कहती है कि हे बच्चा तुम शीघ्र आकर मेरा दुग्ध पान कर लो क्योंकि मैं तुमको दूध पिलाकर फिर वन में वापस जाने का सिंह को वचन दे आई हूँ। अपनी माता के प्रतिज्ञापूर्ण वचनों को सुनकर बछडा कहता है

वचन को दुदुआ न पीहों मोरी माता
चल्हों तुमाये संग हो, माय।

माता, मैं इस प्रकार के वचनों में बँधा हुआ दूध पान नहीं करूँगा और मैं भी तुम्हारे साथ वन को चलूँगा। अन्त में ऐसा ही हुआ।

आगे आगे बछरा पीछे पीछे सुरहिन,
दोउ मिल वन खों जांय हो मांय।
इक वन चालीं, सुरहिन दुज वन चालीं
तिज वन पोंचीं जाय हो, मांय।
उठ उठ हेरे वन वारो सिंघा
सुरहिन अमउ न आइ हो, मांय।

अब क्या था ? आगे-आगे बछडा और पीछे उसकी माता गाय दोनों ने

रनवाड़ा का भारत म विलय हुआ तब स राजा द्वारा केवल नीलकंठ उड़ाया जाता है भस का बलिदान बद कर दिया गया है।

## शरद ऋतु के तीज त्योहार, व्रत, मेले और लोकगीत

शरद ऋतु का प्रभाव—आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को बुन्देलखण्ड के प्रत्येक नगर और ग्राम म शरद उत्सव बड़ उल्लासपूर्ण ढग स मनाया जाता है। रात्रि को खुले स्थल पर कांस्य पात्र म खीर अथवा दुग्ध भरकर रख दिया जाता है उस पर चन्द्रमा की किरणें पड़ती हैं। प्रात काल परिवार के सभी व्यक्ति उस ग्रहण करत हैं। यह प्रथा इस क्षेत्र म चिरकाल स प्रचलित है। इस सम्बन्ध म यहाँ यह धारणा है कि आश्विन शुक्ल पूर्णिमा स कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तक सुधाकर अपनी रजत रश्मियों द्वारा अमृत स्रवित करता है जो भून मात्र म सजीवनी शक्ति का सचारक है। यह बात आयुर्वेद भी सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त श्रीमदभागवत म भी यह प्रसग मिलता है कि श्रीकृष्ण ने गोपियो के साथ शरद पूर्णिमा के दिन ही रास लीला की थी। उस समय सुधाकर न पीयूष वर्षा की थी। इन दोनो दृष्टियो स इस प्रथा की प्राचीनता सिद्ध होती है। अब शरद ऋतु के लोक गीत का पीयूष पान और रसास्वादन कीजिये। एक ग्रामीण युवती अपनी सहेली स अपनी विरह व्यथा कह रही है -

> घुवगई नभ की सुरग चुनरिया
> गइ बदरन की बरात।
> बे नई आयें सरद रित आई
> को सौं कहा बसात।

वह यह भाव व्यक्त कर रही है कि जो आकाश अनेक रगो की चूनर ओढ़े रहता था उसकी वह चूनर शरद ऋतु आने के कारण धुलकर श्वेत हो गई है और बादलों की बरात भी विदा हो गई है। लेकिन सहेली मेरे पति नही आये हैं, किससे क्या बस!

> गई पुखरियाँ रीत, बीत गयें,
> नदियन के उतपात।
> सूखन लगी गैल पगडंडी,
> सरस निरस भयें पात।

कजरी वन मैंने तोड़ाओ दीनों
छुटक चरो मदान हो मांय।
सो गउ आगे सो गउ पाछें
हो औ बगर क सांड हो, मांय।

सिंह अपने स्नेह भरे शब्दों में उस बछड़े से कहने लगता है कि भानजे, जब तुम इस वन में स्वतन्त्र विचरण करते हुए चरा करो और मेरा तुमको यह आशीर्वाद है कि सौ गाय आगे और सौ गाय पीछे तुम्हारे साथ लगी रहेंगी जिनके साथ तुम सुख से जीवन का आनन्द भोग, विहार कर बगर के सांड बन रहो।

आपने देखा कि माता के इस लोकगीत में सत्य की निष्ठा कितने सुन्दर ढंग से प्रतिष्ठित की गई है। बुन्देलखण्ड में इस प्रकार के गीत महम्मा की संख्या में प्रचलित हैं, जो न अभी तक प्रकाशित हैं, और न संग्रहीत और जिनको हम अशिक्षित कहते हैं उनको ही केवल कण्ठाग्र है।

दशहरा—दशहरे का त्यौहार बड़ा मंगलदायक त्यौहार माना गया है। इस दिन प्रातःकाल में प्रत्येक व्यक्ति शुभ कार्य करने की भावना में संलग्न रहता है। इस दिन मछली या नीलकण्ठ का दर्शन और छेंकुर वृक्ष का पूजन करना अत्यन्त शुभ माना जाता है। इसके अतिरिक्त क्षत्रिय अपने घोड़े और तलवार का पूजन बड़ी श्रद्धा से करते हैं। सगाई, यात्रा, मुण्डन संस्कार आदि शुभ कार्य भी इसी दिन करना श्रेष्ठ समझा जाता है।

बुंदेलखण्ड के कई स्थानों पर दशहरे का मेला भरता है। दतिया राज्य तो इसके लिए अति प्रसिद्ध था। यहां दशहरे के दिन राजा द्वारा भैंसा मारा जाता था। यह प्रथा इस प्रकार थी कि सुरई के मैदान में एक पुष्ट भैंसे को पूजन करके छोड़ दिया जाता था। उस पर राजा लक्ष्य साधकर अपने भाले द्वारा वार करता था। भाले का वार होने पर जब भैंसा प्रबल वेग से भागता था तब सैनिक अपनी तलवार द्वारा उस पर प्रहार करते थे। कभी कभी तो इस संघर्ष में कई सैनिक हताहत हो जाते थे किन्तु भैंसे पर गोली नहीं दागी जाती थी। जब तक भैंसा मरता नहीं था राजा भी उसी मैदान में खड़े रहते थे। भैंसे के मरणोपरान्त जब राजा महल में पहुंचते थे तब पटरानी उनका पूजन करके आरती उतारती थी।

यह प्रथा दतिया राज्य में महाराज गोविन्दसिंह जू देव के समय तक चलती रही। इस प्रथा के सम्बन्ध में यहाँ यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि पहले दतिया वक्रदन्त दानव की राजधानी थी और दशहरा के दिन यह बलिदान की प्रथा उसी काल से चली आ रही थी। लेकिन जब भारत स्वतन्त्र हुआ और दशी

सहेली वह अपने जन्म जन्मान्तर के संस्कार के कारण कलानिधि और कुमुदिनी प्रेम सागर में डूबकर आनन्द विभोर हो गये और समय पाकर कुमुदिनी अपने दुख दर्द की कहानी कलाधर को सुनाने लगी कि कैसे कैसे कष्ट उसको चन्द्रमा के वियोग के समय सूर्य और कमल द्वारा प्राप्त हुए थे।

**कार्तिक स्नान की मान्यता और मेला**—बुन्देलखण्ड जिस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भारत का हृदय कहा जाता है उसी प्रकार धार्मिक भावनाओं में भी प्रमुख धार्मिक प्रदेश माना गया है। इस क्षेत्र में प्रत्येक त्यौहार और पर्व पर व्यक्ति सपरिवार स्थानीय सरिता सरोवर चौपड़ा बावड़ी आदि पर स्नान करने जाते हैं। इसके अतिरिक्त सोमवती अमावस्या संक्रान्ति और ग्रहण पड़ने पर इस क्षेत्र का जनसमुदाय सौ सौ डेढ़ डेढ़ सौ मील दूर से पद-यात्रा करके, ओरछा में वेत्रवती उनाव में पहूज और सेवढ़ा में सिंध नदी पर स्नान करने आता है। इस जन पद में इन पर्वों में भी अधिक पुरुषोत्तम मास और कार्तिक स्नान को महत्त्व दिया गया है।

कार्तिक स्नान के मेले वैसे तो सभी शहरों और ग्रामों में भरते हैं। लेकिन झाँसी, मऊरानीपुर, छतरपुर चरखारी सेवढ़ा और दतिया में इस मेले की छटा अधिक दर्शनीय है। स्त्रियाँ नित्यप्रति प्रात काल ही लोकगीत गाती हुई, स्थानीय सरिता या सरोवर पर जाती हैं। वहाँ पहुँचकर स्नान करके गीले वस्त्र पहने हुए रणुका के ठाकुर (शालिग्राम) प्रस्थापित कर पूजन करती हैं। यह कार्तिक का स्नान दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। कुछ स्त्रियाँ चार मास पूर्व आषाढ़ शुक्ल एकादशी को बुड़की (स्नान) लेती हैं। वह स्नान चित्रमासा के नाम से विख्यात है और जो स्त्रियाँ कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा से बुड़की लेती हैं उसे कार्तिक स्नान कहा जाता है।

इस पुण्य अवसर पर स्त्रियों द्वारा जो लोक गीत गाये जाते हैं, वे प्राय श्रीकृष्ण की लीला सम्बन्धी एवं भक्ति भावनापूर्ण होते हैं। ध्यान दीजिये, श्रीकृष्ण प्रात काल अपनी मुरली की मधुर ध्वनि छेड़ते हुए व्रज वीथियों में से निकलते हैं और वह मनमोहिनी ध्वनि श्रवणों द्वारा गोपियों की अन्तरात्मा में पहुँचकर प्रेम पिपासा को जाग्रत कर देती है तब गोपिकाएँ क्या कहने लगती हैं

> को हो लला, इत आउत हो जू।
> को हो लला
> नित आउत नित मुरली बजाउत,
> सोउत सखियाँ जगाउत हो जू।
> को हो लला

सहेली ! मेघ तो छोटे छोटे जलाशय रिक्त हो गये हैं और सरिताओं के यौवनकाल का कोलाहल भी समाप्त हो गया है तथा पंकिल वन पथ भी साफ-सुथरा हो गया है। वर्षा के कोमल और सरस पत्र भी शीत के प्रभाव से कड़े और नीरस हो गये हैं। इसके उपरान्त वह कहती है

राधा कान्ता हर सिंगार की,<br>
डारन लिपटत जात।<br>
फूलन लगो सोय कुमिनी ऊप,<br>
कुरइ कास की जात।

(लोक गायन पृष्ठ १०६)

सहेली ! दक्षिण वन में राधाकान्ता बेल हरसिंगार वृक्ष की डालियों से लिपटती जाती है और सुमन व्यथित देखकर यह काँस भी फूलने लगा है। इसका भी मेरा दर्द नहीं, इसकी जाति बहुत बुरी है।

एक दूसरे शरद-लोकगीत में एक वियोगिनी अपनी विवशताओं का वर्णन कर रही है

अमइँ मसूकेँ बीतीं सापिन सीं बरसा की रातेँ।<br>
सरद रैन अब बूढ़ी नागिन करन लगी हैं घातेँ।<br>
बादर की लीला चादर पै छिटकी सेत जुनइया।<br>
ता पै आन बिराजो समुद्र-पूत लछमी को भइया।

सहेली ! अभी-अभी ही यह वर्षा की सापिनी रातें बड़ी मुश्किल से व्यतीत हुई थी और अब यह शरद रैन बूढ़ी नागिन की तरह मेरे हृदय को आघात पहुँचाने लगी है। दक्षिण नीलाकाश में शरद की श्वेत चाँदनी छिटक गई है जिसके मध्य सुख भोगने की दृष्टि से यह समुद्र का पुत्र लक्ष्मी का भाई सुधाकर भी आकर बैठ गया है। इसके उपरान्त वह कहती है

ताय निरख कैं हँसी मनइँ मन कमोदनी कीं कलियाँ।<br>
विकसन लगीं उमग भरीं उमरी करबे रँग रलियाँ।<br>
उमयो अन्तस राग नैंव बस भई कुमुदनी भोरी।<br>
फल्यो फन्दा, कलानिधि आयो चढ चाँदी की डोरी।

सहेली ! चन्द्रमा को देखकर यह कुमुदिनी की कली प्रेम से कलोल करने की उमंग में विकसित होने लगी है और कलानिधि भी अपनी रजत रश्मियों द्वारा कुमुदिनी का आलिंगन करने को सुशोभित होने लगा है। इसके उपरान्त वह यह भाव प्रदर्शित करने लगती है

बूड़े दोउ अनुराग सिंध में जनम-जनम के नातें।<br>
दयें जितन दुख सब समन्न वे भईं आपुस में बातें।

(लोक गायन पृष्ठ १११)

के प्रतीक है। इसके अतिरिक्त एक कल्पनापूर्ण लोक गीत का और अध्ययन कीजिये जिसमे व्रजागना अपना भावपूर्ण पश्चात्ताप प्रकट कर रही है

सखी री, मैं तो भइ ना बिरज की मोर।
कान्हा के सग वन मे नचती,
जग सौं नातो तोर। सखी री
नचत नचत जो पखा झरते
बनते मुकुट की कोर। सखी री

कितनी सुन्दर प्रेम भावना थी उस व्रजागना की। वह अपने यह भाव इस प्रकार व्यक्त कर रही है कि हे सहेली यदि मैं कही भाग्यवश उस वृन्दावन में मोर होती तो श्रीकृष्ण के साथ समृति से मोह तोड वन मे नृत्य करती और नृत्य मे आत्म विभोर हो मेरे पख जब झडते तब उन पखो को श्रीकृष्ण अपने मुकुट की कलगी बनाकर धारण करते।

अब आप इस वात्सल्य भावपूर्ण गीत का अवलोकन कीजिये जिसमे यशोदाजी श्रीकृष्ण को प्रात काल होने पर जगा रही हैं

उठो मेरे हरजू भये भुनसारे गइअन के बद खोलो सबारे।
उठो मोरे हरजू दातुन कर लो दातुन करो मोरे कुवरिगरी।

श्री यशोदा कह रही है कि कृष्ण जागो प्रात काल हो गया है, गायो के बधनो को खोलो और उठकर दत धावन करो। इसके उपरान्त दूसरी गोपिका देख कह उठती है

काये की दातुन, काये को गडुवा काये को जल भर ल्याई जसोदा।
झारे की दातुन सोने को गडुवा, जमना को जल भर ल्याई जसोदा।

इस लोकगीत मे गीतकार ने सोने के पात्र और अज्जरझारे की दातुन का वर्णन किया है। ये दोनो स्वास्थ्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं क्योकि स्वर्ण पात्र के जल से जिह्वा और कण्ठ की शुद्धि तथा अज्जरझार की दातुन द्वारा दात एव मसूड़े मजबूत होते है।

श्रीकृष्ण उठकर शौचादिक क्रिया से निवृत हो जाते हैं और माता यशोदाजी अपने लाल को कलेवा (प्रात काल का नाश्ता) करने के लिए पकवान बनाने लगी है

घम सिला पर बठी जसोदा अपने कनइया खों रचती कलेवा।
कच्चर पापर सेव, सिंगारे, माल पुवा मन मोहन प्यारे।
इजन विजन सरस निगोना बेसन के दस बोमक दोना।
जब कृष्ण जुमाव जसोदा बाव ढुर प्यारी रुक्मिन राधा।

माता यशोदा द्वारा बनाए हुए षटरस व्यन्जनो को श्रीकृष्ण प्रेम से ग्रहण कर रहे हैं और सम्मुख बैठी श्री रुक्मिणी और राधिकाजी पखा डुला रही

मोर मुकट हर के अधिक विराज,
टिप का झलक दिखाउत हो जू।
को हो लला
नैनन काजर हर के अधिक विराज,
नैनन झलक दिखाउत हो जू।
को हो लला

हे लला तुम कौन हो जो नित्यप्रति प्रातःकाल व्रज-वीथियों में भ्रमण करते हुए अपनी मुरली की मधुर तान सुनाकर सोती हुई सखियों को जगा दिया करते हो। (लला शब्द का प्रयोग बुन्देलखण्डी वाणी में किशोर बालक के लिए किया जाता है।)

श्रीकृष्ण के भाल पर जो मोर मुकुट सुशोभित है उसे देखकर सखी कह रही है कि तुम अपने मुकुट की कलिंगी की झलक दिखा रहे हो और तुम्हारे विशाल माथे पर केशरिया चन्दन की खौर बढ़ी है उसके बीच जो लाल रोरी की टिपकी लगी हुई है उसकी झलक दिखा रहे हो। तुम्हारे नयनों में काजल सुशोभित है। उन कजरारे लोचनों की सैन द्वारा सखियों को मोहित करना चाहते हो।

इसके अतिरिक्त जब स्त्रियाँ स्नान करने के लिए जाती हैं उस समय यह लोकगीत गाती हैं

आजाउंगी बड़े भोर
दईया लके आजाउगी बड़े भोर।
ना मानो मटकी धर राखौं,
सबरे विरज को मोल। दईया लके
ना मानों चुनरी धर राखौ
लिखे पपीरा मोर। दईया लके

प्रेम की अनन्य भावना के बाद जब श्रीकृष्ण का किसी ब्रजाङ्गना से साक्षात्कार हो जाता है और जब श्रीकृष्ण उस गोपिका को घर जाने से रोकते हैं तब वे श्रीकृष्ण को अपने घर से प्रातः दधि लेकर आने का विश्वास दिलाती हुई निवेदन करती है कि मैं अवश्य ही कल प्रातःकाल आऊंगी। यदि आप विश्वास न करें तो मेरी यह दधि की मटकी रख लीजिये जिसका मूल्य ब्रज की पूर्ण धनराशि के समान है और कहीं आप इस पर भी विश्वास न करें तब यह चूनरी रख लीजियगा जिसमें ब्रज के सौन्दर्य रूपी मोर पपीहा चित्रित हैं। इस गीत में गीतकार ने दधि गोरस की मटकी और चुनरी में मोर पपीहा का वर्णन किया है। वास्तव में ब्रज में दुग्ध दधि ही श्रेष्ठ भोज्य है और चूनरी ही ब्रज भूमि की संस्कृति तथा मोर-पपीहा ही ब्रजभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य

ग्राम दीपकों की स्निग्ध ज्योति से जगमगा उठता है। रात्रि में धनी-मानी गृहों में 'गोपाल सहस्रनाम' के पाठ की भी प्रथा इस प्रदेश में है। पूजन के पश्चात व्यक्ति ओल-बाल (घास का बाँधकर और उसमें आग लगाकर अपने चारों ओर घुमाना) खेलते हैं जो कि लंका दहन का प्रतीक है और जिसे सब रोगों का नाशक समझा जाता है। ओल-बोल कहीं कहीं देव सुन्नी एकादशी को भी खेली जाती है।

सुराती की रात—दीपावली पूजन के उपरान्त रात्रि में स्त्रियों का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण त्यौहार भी होता है जिसे 'सुराती की रात' कहते हैं। इस त्यौहार को केवल सौभाग्यवती महिलाएँ मनाती हैं। इसका मनाने की रीति इस प्रकार है। हल्दी या ग्योरी द्वारा भित्ति पर एक प्रकोष्ठ में श्रीकृष्ण और राधिका की मूर्तियों का चित्रित कर इनके सम्मुख सोलह दीपक और मिट्टी की छोटी छोटी ल्हरियाँ डबुलियाँ में खील बताशा भरकर फिर पूजन होता है। पूजन के समय जो दीपक जलता रहता है उसके द्वारा कजरौटी पर काजल पार कर स्त्रियाँ लगाती हैं। फिर अपनी मनोकामना की सिद्धि के हेतु रात भर जागरण करती है। सुराती के पूजन के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास का यह दोहा इस जन पद में प्रचलित है

तिरिया अपने कारनें लिख पूजत है भीत।
सुफल होय मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीत।

गोवर्द्धन उत्सव—दीपावली के उपरान्त प्रतिपदा को प्रत्येक गृह में गोवर्द्धन का पूजन होता है। इस अवसर पर गोबर की प्रतिमा के मध्य गाय, ग्वाला, खेत गोवर्धन आदि बनाये जाते हैं। फिर चारों ओर मिट्टी के पात्रों में पकवान भरकर, परिक्रमा कर पूजन समाप्त किया जाता है। सायंकाल ग्वाल अपनी अपनी टोली बनाकर दीपावली का यह लोकगीत गाते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हैं

धनुष चढ़ाये राम न भयो थकत भये सब भूप रे।
मगन भई श्री जानकी जू देख राम को रूप रे।
आज दिवाली गालों भयो काल को जाने राम रे।
बाजत आव ढोल रे भया नाचत आव गुआल रे।

इस दिन श्रीकृष्ण ने अपना दायाँ हाथ की छिगुरी पर गोवर्द्धन पर्वत को धारण करके इन्द्र के प्रकोप से ब्रज मंडल को बचाया था। इस घटना से सम्बन्धित एक भावपूर्ण लोकगीत इस क्षेत्र में प्रचलित है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

हैं। इसमें सुन्दर वात्सल्य भाव का वर्णन है। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण को जब यमुना तट पर पालने में झुलाया जा रहा है तब सखियाँ कहती हैं

> सखि जमना के तीर लाल को चन्दन पालना।
> काहे को तेरो पलो पालना काहे लागी डोर। लाल को
> अगर चन्दन को पलो पालना, रेशम लागी डोर। लाल को
> चार सुआ चारउ खूँटन बैठे लख लाल को नाच। लाल को
> काऊ गुजरिया की नजर लगी है खीजत नंदलाल। लाल को
> राई नौंन उतार जसोदा पुसी भय वारे लाल। लाल को

बाल कृष्ण जिस पालने में यमुना तट पर झूल रहे हैं वह अगर चन्दन द्वारा कलापूर्ण ढंग से बनाया गया है। जिसके चारों सिंचवाओं पर शुक बैठे हुए हैं और वह रेशम की डोरी से बंधा है। पालने में झूलते समय जब श्री लाल को किसी की डीठ लग जाती है तब श्री यशोदाजी राई नौन द्वारा उसे उतारती हैं जिससे लालजी हँसने लगते हैं।

कार्तिक स्नान करने वाली महिलायें इस प्रकार के मंगल लोकगीत पूजन के समय नित्यप्रति गाती हैं। इसी बीच में दीपावली का महोत्सव आ जाता है जो भारत की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है।

संस्कृति की व्याख्या करते हुए मनीषियों ने कहा है, कि किसी भी प्रदेश में संस्कृति का उदय पर्याप्त काल के उपरान्त ही होता है। जिस प्रदेश में चारित्र बल की श्रेष्ठता अन्यायपूर्ण उपद्रवों के विरोध में वीरतापूर्ण कार्य, आश्रयहीन दीन दुखियों के प्रति दया भाव और वरिष्ठ पुरुषों की मान्यता तथा विविध कलाओं के कलाकारों की कला का सम्मान होता है तब इन सद्शक्तियों द्वारा अनुप्राणित होकर जनता कर्तव्य निष्ठ बनती है और तब उस प्रदेश में संस्कृति का उदय होता है।

बुन्देलखण्ड प्रदेश को इसी प्रकार की मान्यता प्राप्त रही है। भानुकुल भूषण श्रीराम अपनी संकटकालीन अवस्था में आश्रय हेतु चित्रकूट ही पधारे थे, क्योंकि चित्रकूट सब प्रकार से सुसंस्कृत समृद्धिशाली और सुरक्षित स्थान था। यही कारण था कि जब श्रीराम रावण पर विजय प्राप्त करके लंका से लौटे तब भी वे सर्वप्रथम चित्रकूट के ऋषि मुनियों के दर्शन करने को उनके आश्रम में पधारे। इसके उपरान्त उन्होंने अवध को प्रस्थान किया था। बुन्देलखण्ड में श्रीराम का विजयोत्सव प्रतिवर्ष दीपावली के रूप में बड़े उत्साह पूर्ण ढंग से मनाया जाता है।

**दीपावली**—दीपावली बुन्देलखण्ड में सभी वर्ग के व्यक्ति मनाते हैं। इस अवसर पर प्रत्येक गृह लीपा पोता जाता है। सायंकाल लक्ष्मीनारायण का विधिवत् पूजन होता है। तदुपरान्त आतिशबाजी होती है। प्रत्येक शहर और

आई। और सात बबूर के काट निकार जो वाने दूला के ऊपर फेरे मोई दूला हास हवास मे आके उठक बठ गओ। जो दख क सब खौ बड़ो अचभो भओ। अब सब नगन जोगन म बाखौं अँगाडू अँगाडू करन लगे।

"बगत की विदा होकैं जस घर आर्ड क दुलन की मूड माहुर होन लगो, तौ बन कउन लगी कै पले हमाओ करौ। देइ देउता पूजन लग तौ वा बोली क पल्ऊँ हमाओ पूजन करौ। ऐसई जौन जौन जागा ऊ क भैया खौ कष्ट होन हतो। वान आगू हो हा क बचा लओ। सौना भैया की दौज आ गई सो बान अपने भया खौं टीका करो। ता पीछ बाव लिवौआ आ गय सोई भया न वाय लहर पटुरिया दैके विदा कर दई। भया दूज की इस कहानी म भाई के प्रति बहिन का स्नेह और उसके द्वारा रक्षा का भाव प्रदर्शित किया गया है। यही इसकी महत्ता है।

कार्तिक स्नान के सम्बन्ध म यह बात ध्यान देन योग्य है कि भाई दूज के उपरान्त कार्तिक शुक्ल तीज स वियोग दिवस मनाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा स कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा तक कार्तिक स्नान की साधना द्वारा गोपिकाओं का श्रीकृष्ण म आत्मसाक्षात्कार हुआ था। परन्तु भाई दूज को बहिन भ्रातृ स्नेह क कारण लौकिक बन्धन म बँध जाती है। इस कारण गोपिकाओं का श्रीकृष्ण म विलगाव हो जाता है और फिर गोपिकाएँ श्रीकृष्ण क अनन्य प्रेम म विह्वल हो वन उपवनो म उनको खोजती फिरती हैं। यही भाव कार्तिक स्नान के इस लोकगीत से दर्शित होता है। गोपिकाएँ कहती हैं

वे न मिले जिनकी मैं दासी।
वे न मिले। जिनकी
गोकुल ढूढ विन्दावन ढूडो,
ढूड आई मथुरा उर कासी।
वे न मिले। जिनकी
रे रे मन मे एसी आव
तज डारौं प्रान गरे डारौं फाँसी।
वे न मिले। जिनकी

गोपिकाए जब श्रीकृष्ण के प्रेम म विह्वल हो व्रज के वन उपवनो म भटकती फिरती हैं तब उन्हे श्रीकृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि अनायास कर्णगोचर होती है जिसस प्रेम विभोर हो कहन लगती हैं

फिर बाजी फिर बाजी हर की मुरलिया,
दखो सखी मेरो मन हर लीनों। देखो सखी
काये की तेरी रग मुरलिया। काये की

ऋतु म सामाजिक और पारिवारिक जीवन म जो रस रग का सुखद स्रोत बहता है उस पर ही इस क्षेत्र की सस्कृति अधिकाशत आश्रित है।

**सकटा (सकष्ट) चतुर्थी व्रत**—तिथिया क अनुसार सबमे पहले सकट चतुर्थी व्रत आता है। इस व्रत को केवल स्त्रिया ही रखती हैं। यह मार्गशीर्ष म कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को होता है। इस व्रत के सम्बन्ध म यह धारणा है कि इसके रखन स सकट स मुक्ति मिलती है। किन्तु इस जन पद म इस व्रत का महत्त्व बहुत ही कम है और इसलिए चलन भी।

**श्री काल भैरव जयन्ती**—श्री काल भैरव जयन्ती मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को मनाई जाती है। इसको अधिकाशत शाक्त लोग ही मनाते हैं। मायकाल भैरव का शृगार करके इमरतियो का भोग लगाकर उसकी आरती उतारत हैं। इसकी मान्यता भी इस प्रदेश म कम है।

**श्री राम विवाह पचमी का मेला**—श्री राम विवाह इस जन पद मे प्रत्यक नगर और ग्राम म विशष उल्लासपूर्ण ढग से मनाया जाता है। इस महोत्सव के उपलक्ष्य म कई स्थानो म मेले भी भरत ह जिनम ओरछा का मेला विशेष दर्शनीय है। इस अवसर पर यहा दूर-दूर स यात्री आते हैं।

मदिर के प्रागण म श्रीराम और जानकी की प्रतिमाओ को प्रस्थापित करके, तल चढाकर फिर मडप गाडा जाता है और भावर पडने के उपरात मदिर के बाहरी भाग की परिक्रमा देकर बिनायकी फेरी जाती है। बिनायकी के उपरान्त ज्योनार होती है, जिसमे स्त्रिया विवाह की मधुर गारिया (लोक गीत) गाती है। वास्तव म ओरछा म श्री राम का विवाहोत्सव विशष दर्शनीय होता है। यह माग शुक्ल पचमी को मनाया जाता है।

**माघ-स्नान**—माघ की बुडकी (स्नान) इस जन-पद म माघ शुक्ल पूर्णिमा को ली जाती है। यह स्नान केवल स्त्रिया ही (पव रूप मे) पौष शुक्ल पूर्णिमा तक करती हैं। यहाँ इसकी अन्य प्रान्ता की अपेक्षा कम मान्यता है। इस स्नान क क्रम म स्त्रियाँ स्नान करके रेणुका क ठाकुर प्रस्थापित कर उस प्रतिमा का विधिवत पूजा करती हैं और सायकाल भोजन म मसीला (मूग की दाल को उबालकर फिर उसका पिठी बनाकर घत म भूज, शक्कर मिलाकर बनता है) ग्रहण करती ह।

हेमन्त ऋतु तरुण हो चली है। नभ म शुक्रोदय अवलोकन कर ज्योतिषियो न विवाह के मुहूत शोधन प्रारम्भ कर दिय हैं। बुन्देलखण्ड की गली-गली मे विवाहो के बाजो की ध्वनियाँ गूजन लगी हैं।

ऐसी उल्लसित अवस्था म एक ग्राम वधू अपनी ननद की मुग्धावस्था के कारण, उसके अग प्रत्यगो मे यौवन का उभार और निखार देखकर, उससे विनोद भरे शब्दो म कह रही है

काये के तारन गसी है मुरलिया। काये के
जाऊँ विन्दावन कटाय डारों बसा। जाऊँ
उपज न बाँस न बाज मुरलिया। उपज
फिर बाजी फिर बाजी

**देवोत्थानी एकादशी और बकुण्ठ चतुर्दशी**—कार्तिक शुक्ल एकादशी को देव प्रबोधिनी एकादशी होती है। फिर चतुर्दशी को भूत भावन भगवान शंकर का उत्सव मनाया जाता है जो कि वकुण्ठी चौदस के नाम से विख्यात है।

इन दोनों उत्सवों पर अधिकांश स्त्री-पुरुष व्रत रखकर पूजन उपरान्त फलाहार करते हैं। चतुर्दशी के व्रत की महत्ता यह है कि गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम देखकर भगवान शंकर उनको वरदान देते हैं जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण गोपियों के साथ महारास रचते हैं जो कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को होता है। भगवान शंकर स्वयं श्रीकृष्ण के इस महारास का आनन्द लेने को एक गोपिका का वेष धारण कर महारास में सम्मिलित होते हैं। तभी से शंकर का नाम गोपेश्वर विख्यात हुआ है।

जब जीव को ब्रह्म-सुख की प्राप्ति हो जाती है तब वह सब कर्मों को भगवत चरणों में समर्पित कर देता है। यही भाव कार्तिक पूर्णिमा के स्नान द्वारा गोपिकाओं के हृदय में आता है। और वे भगवान की प्रदक्षिणा करती हुई सब काम्य कर्मों को उन्हें समर्पित करती हैं। देखिये यही भाव इस लोक गीत में प्रदर्शित हुआ है

सालिगराम सुनों बिनती मोरी
सो जो बरदान दया कर पाऊँ। सालिग राम
जितने पाप करे दुनियाँ मे,
सो परकम्मा को राय बहाऊँ। सालिग राम
जितने पुन करे दुनियाँ में,
सो हर चरनन खों धाय चढ़ाऊ। सालिग राम

ये कार्तिक स्नान का मेला बुन्देलखण्ड में प्रत्येक वर्ष भरता है।

## हेमन्त ऋतु के तीज-त्योहार, व्रत, मेले और लोकगीत

हेमन्त ऋतु परमोल्लास की ऋतु मानी जाती है। इस कारण इसमें व्रत तो कम होते हैं, पर विवाह तथा अन्य मांगलिक कार्य अत्यधिक होते हैं। इस

तुम्हारे वही कजरारे नैना की मन स माथी (नाविक) घायल होकर रिपट पडा तो उस बचारे की जीवन नौका मझधार म फस जायगी।

यह भावज ननद का मनाविनाद दालान म खडी खडी मा भी सुन रही थी। उसने विचार किया कि लडकी विवाह योग्य हो गई है। इसका ध्यान अपन पति को कराना चाहिए और उसने समय पाकर पति स लडकी के प्रति अपने भाव इस प्रकार प्रकट किय

खेतन फूल तुरया वन फूल कचनार।
बिटिया फूल सासुरे सया करो विचार।

जिस प्रकार तुरया खेत म और कचनार वन म फूल्न से सुशोभित होती है उसी प्रकार लडकी का विकसित यौवन उसक श्वसुर गृह म ही शाभा पाता है। पत्नी की न्याय सगत बात सुनकर उसका पति कहन लगता है

रन बिहनो होओ जिन होओ न सोसन पाय
भई रजायस काज की करो कओं पन भाव।

प्रिय लडकी क शोक म चिन्ताग्रस्त होकर रात रात भर मत जगा और न शोक से व्याकुल होकर पनी की तरह दुबल बनो। तुम्हारे कहने स यह ज्ञात होता है कि लडकी विवाह योग्य हो गई है और अब तुम्हारी सम्मति भी मिल गई है। मैं तुमको वचन देता ह कि मैं शीघ्र लडकी की सगाइ अपने सम्बंधियो का सहयोग लेकर पक्की करता हू।

बुन्देलखण्ड म सगाई की प्रथा आज भी प्राचीन परम्परानुसार ही चल रही है। हा, इतना अन्तर अवश्य आ गया है कि ग्रामों म अपने पच मुखिया के समक्ष एक टका (दो पस) दकर लडकी लडके का सम्बन्ध पक्का कर दिया जाता है और शहरों म कुछ फल मिठाई और सवा रुपया देकर। किन्तु लडकी लडके को देखे या लडका लडकी को देखे यह प्रथा अभी भी कम है। यह प्रथा केवल बुन्देलखण्डवासियों म ही प्रचलित है अन्यत्र नही।

सगाई होने क उपरान्त लडके का पिता लडकी की योली (गोद) भरता है। इस प्रथा म सोने अथवा चांदी का एक आभूषण पहनाकर उसकी परिया (ओढन का वस्त्र जो अविवाहित लडकियाँ ही धारण करती हैं) म सवा सेर मिठाई और नारियल डालता है।

पुरोहित द्वारा विवाह का मुहूत सुधाकर लग्न पत्रिका लिखाई जाती है जिसम मात पूजन, तेल, मडप द्वारचार, टीका और भांवर पडने की तिथियाँ लिखी जाती हैं। तदुपरान्त पुरोहित गोबर द्वारा गणेश की मूर्ति का निर्माण करके भूमि में चौक पूरकर वहाँ गणेशजी प्रस्थापित कर लग्न-पत्रिका का पूजन करता है। तदनन्तर सब पच (व्योहारी) उस लग्न पत्रिका का अपन

दूर खिलन जिन जाओ ननद बाई ?
नना लगाय कोऊ ल ज है।

ननद अब तुम पुरा पड़ोस को त्याग किसी दूर स्थान म खेलने को न जाया करो। कहीं ऐसा न हो कि कोई व्यक्ति अपनी स्नेह भरी आँखें लगाकर तुमको ले जाय।

सुबरन की तोरी देइया,
उर गाँव बसत बटमार। ननद बाई

ननद, तुम्हारी स्वर्ण की तरह दमकती हुई देह है और तुमको यह ज्ञात नहीं है कि ग्राम म डाकू भी निवास करते हैं।

मों दव निदरत कमल दल,
परत, भमर भर मार। ननद बाई

ननद तुम्हारे मुख के लावण्य को देख कमलों के दल के दल लज्जित हो जाते हैं और भ्रमरों के झुण्ड गुंजार करने लगते हैं।

मोय डर कुल की लाज को,
कउँ होय न सूनी सार। ननद बाई

ननद, मुझ इस बात का भय है कि कहीं तुमने हमारा विनय पर ध्यान नहीं दिया और किसी मनचले व्यक्ति ने तुमको अपने प्रेम पड्यन्त्र म फाँस लिया तो कुल की लज्जा भी चली जायगी और यह घर जिसमें हम तुम सानन्द निवास करते हैं, सूना हो जायगा। एक दूसरा लोकगीत भावज द्वारा गाया गया है। वह ननद से कह रही है

सुरग चुनरिया, जिन ओढ़ो जिन ओढ़ कुअल प जाव।
नजर बटरिया काउ छैल की लग जहै चुर नईं पाव।
ननद बारी रइओ उमर बारी है। ननद

जिस स्थान पर सुरंग शब्द का प्रयोग हुआ है वह लाल रंग के ही लिए प्रयुक्त हुआ है। भावज कह रही है कि ननद, लाल रंग की चूनरी ओढ़(पहन) कर कुएँ पर जल भरने को नहीं जाया करो, क्योंकि किसी प्रेमी की दृष्टि रूपी कटार यदि तुम्हारे मन पर चल गई तो उस स्नेह-कटार का घाव जीवन भर नहीं पुरने का। तुम्हारी अवस्था अभी अल्हड़पन की ही है। इस कारण मैं तुमको सावधान कर रही हूँ। इसके उपरान्त वह फिर यही भाव या प्रदर्शित करने लगती है

ननद कजरा जिन आँजो उर आँज न नदिया जाव।
रिपट परो कउँ माँजिया मझधार आय पँग माव।
ननद बारी रइओ उमर बारी है। ननद

ननद, नयनों म काजल आँजकर, सरिता तट पर मत जाओ क्योंकि

की गाँठें डालकर पाँच व्यक्ति उस मडप को पकड़कर प्रस्थापित करते हैं। फिर हाम करके गुड घन और सब्जी (दाल, भात, कढ़ी, रोटी) रसोई का भाग लगाते हैं।

विवाह सस्कार म मडप का पूजन ब्रह्मा की भावना स किया जाता है। जस ब्रह्मा के चार मुख होत हैं वैस ही मडप के भी चार मुख बनाय जात हैं। मडप का प्रस्थापित करत समय जा लोकगीत गाया जाता है उसकी य पक्तियाँ अध्ययन करन योग्य हैं।

मडप-गीत—

सुघर बढ़या चदन मडया
रुच रुच के गढ़ ल्यायो रे।
रोप फफुल ने आमन जामुन के
पत्तन सों छायो रे।
सोने की झारी फुआ भर ल्याई,
छप्पन भोग लगायो रे।
दइ देउतन सुमर मनइ मन
जुर मिल मगल गायो रे।

चतुर शिल्पी बढई चन्दन का कलापूर्ण मडप बनाकर लाया है। मान्यवर फूफा ने उसे पृथ्वी का पूजन करक प्रस्थापित किया है और उसके ऊपर के छाया-वान को आम्र और जामुन के हरित पल्लवा द्वारा छा दिया है। फुआ स्वर्ण-झारी म जल और छप्पन भोजन लाई है जिससे मडप को भोग लगाया गया है तथा कुटुम्बी जन और सम्ब धी-जना ने कुल देवता और अय देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए मगल गान गाना प्रारम्भ कर दिया है। इसके उपरान्त पगत होती है जिसमे अधिकाश परिवारा म कढी देवल (चना) की दाल भात (चावल), बरा (यह उद की दाल की पिठी द्वारा गोल बनाकर और तेल मे सेंक फिर दही म डालकर बनता है) और गोरस परोसा जाता है। किसी किसी समाज म इसके साथ फरा (य गेंहूँ क आटा द्वारा पानी म उबालकर बनाय जाते हैं) और गुड भी परोसा जाता है। इस पगत को मडप की पगति कहा जाता है।

मडप के पश्चात भाई द्वारा बहन को जिसके लडके अथवा लडकी का विवाह हाना है भेंट देने को चीकट लाई जाती है। (इसे भात देना भी कहत है।) इस भाई अपनी पीठ पर वस्त्र रखकर भेंट करता है। उपरान्त बहन भाई को मडप क नीच बठाकर कुछ मिष्ठान्न खिलाती है।

चीकट के उपरात रात्रि म कुटुम्बीजन विवाह को निर्विघ्न सम्पन्न हाने

हाथ से स्पर्श करते हैं और तब वह पत्रिका नाई द्वारा समधी के घर भेज दी जाती है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बुन्देलखण्ड में जो विवाह संस्कार होते हैं उनमें पंचों का ही अनुशासन चलता है। उसमें लड़की और लड़के वाले बंध रहते हैं। इसमें विवाह के सब कार्य प्रायः निर्विघ्न सफल होते हैं।

सगाई पक्की हो गई है और नाई लगन पत्रिका लेकर समधी के गृह पहुंचा है। समधी लग्न पत्रिका लाने वाले नाई को आया जानकर अपने नाते रिश्तेदारों को एकत्र कर उसके पैर धुलवाकर, हल्दी से तिलक कर प्रथम उसको घृत और गुड़ खिलाता है। आगन्तुक व्यक्तियों को भी वह गुड़ बांटता है। इसके अतिरिक्त सायंकाल फिर सब पंच एकत्र होते हैं। इस समय पुरोहित लग्न पत्रिका बांचता है। त्यौहार में लड्डू या बताशे बांटे जाते हैं और पंगत (भोजन) होती है, जिसे लगुन की पंगत कहते हैं। अब वर तथा कन्या दोनों गृहों में विवाह का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है।

विवाह-संस्कार में वर कन्या दोनों के गृहों में मुहूर्त के अनुसार मातृ पूजन तेल, मंडप आदि का कार्यक्रम चलता है। तेल दोनों पक्षों में चढ़ाया जाता है किन्तु कन्या को पांच बार और वर को सात बार। तेल के उपरान्त मंडप गाड़ा जाता है जिसको दोनों पक्षों में मान्य दान (सगे बहनोई फूफा) ही गाड़ते हैं।

अब हम प्रचलित लोकगीतों के माध्यम से सम्पूर्ण विवाह संस्कार का चित्र प्रस्तुत करेंगे। वर को तेल चढ़ाते समय यह लोकगीत गाया जाता है

राम जी चढ़ गयो तेल फुलेल,
चमक रई पाखुरिया।
राम जी ऊंच ऊंच तेल चढ़ाव,
राम जू की बहुनिया।

तेल और इत्र वर के पैरों में लगाया जा रहा है जिससे उसके पैरों की पीड़ी चमक उठी है। तेल चढ़ाने वाली वर की बहनें हैं।

तेल के बाद मायनो (मातृ पूजन) होता है। इसमें मान्यवती स्त्रियाँ खदान का पूजन करके मृत्तिका लाती हैं। इसी मृत्तिका द्वारा एक चूल्हा बनाया जाता है जिस पर सबसे पहले महेर (जो कुलदेवता को चढ़ता है) रखा जाता है। महेर में गेहूँ के आटे में गुड़ मिलाकर फिर उसको माड़कर छोटी गालियाँ और क्रिया के यहाँ बनियाँ बनाकर उसमें लिया जाता है। इनको मायें कहते हैं।

मंडप अधिकांशतः पलाश वृक्ष का लकड़ियों का ही होता है जिसको बढ़ई बनाकर लाता है। जब बढ़ई मंडप लाता है तब उसका पूजन किया जाता है और उसको 'सीधा' और सवा रुपया भेंट में दिया जाता है। बाद में भूमि का पूजन करके खोदते हैं और उस खोदे हुए गड्ढे में पांच टका पैसा और पांच हल्दी

के लिए देवताओं को आमन्त्रित करते हुए यह लोकगीत गाते हैं

विवाह निमन्त्रण गीत—

> हनुमान बाबा हो तुमइ निमते हो,
> सांज सँजूते आइयो काज समारन आइयो।
> हरदौल लाला हो तुमई निमते हो,
> सांज सँजूते आइयो काज समारन आइयो।
> मकरी, कूकरी हो, तुमई निमतो हो
> सांज सँजोती आइयो काज समारन आइयो।

इसी प्रकार इस गीत में अपने पूर्व पुरुषों का नाम ले-लेकर आमंत्रण दिया जाता है। यह गीत माम्य भाव की दृष्टि से बड़ा सुन्दर है।

अब आप ध्यान दें कि विवाह में जो विषम परिस्थितियाँ आ जाती हैं और उनमें जो विघ्न उत्पन्न होता है उसका वर्णन इन लोकगीतों में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।

दरिद्र विवाह के आनन्दमय समय में पिता के लिए गरीबी बाधक बन जाती है जिसकी चर्चा कन्या के अजा (बाबा) तक पहुँच जाती है। उसके दुख से दुखित हो वे अपने कुल की लज्जा बचाने की दृष्टि से गृहत्याग कर योगी (साधु) बनने की ठानते हैं और आजो विषपान करके मरने के लिए उद्यत हैं।

इस विषम परिस्थिति में वधू अपने अजा और आजी से जाकर विनय करती है। इस सामाजिक विषमता का करुण चित्र इस लोकगीत में मिलता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक विषमता प्राचीन काल से ही अपना पर जमाये हुए है। इस आधुनिक युग में भी यह अपने उग्र रूप में प्रखर समाज में दृष्टिगोचर होती है। अध्ययन कीजिये वधू अपने अजा से समयोचित विनय कर रही है

विषम परिस्थिति के लोक-गीत—

> पुर पुर, पुरियन महल उठाये,
> आजुल ! कहूँ हम जोगी होयें जहैं।
> आजो ! कहे हम जिहर विष खहैं।
> काहे खों, आजुल ! जोगी होयें जहो।
> काहे खों आजो ! जिहर विष खहो।
> अपना न हारो, मजन को न जोरो।
> कन्या के हाथ पीरे कर दीजो।

सौ मन गुर चावर सजौं,
बौंडार समारौ ।
भेंट करौ जाय माय सौं,
चौक्ट जाय उतारौ,

भानजा न लज्जा क भार स दब हुए गूढ भाव द्वारा मामा से विवाह का सकत करत हुए कहा कि "मामा चिन्ता त्यागकर काय को लखिय और सौ मन चावल सौ मन गुड तथा वस्त्र-आभूषणो को ले जाकर अपनी वहन को चौक्ट भेंट करक उतारिय।"

इस दिन पन म द्वार चार के समय एक भावपूण लोकगीत और गाया जाता है।

टीका का लोकगीत—

कोट नव पवत नव, सिर नवयें न आये।
मायो अजुल जू कौ जब नव जब साजन आये।

परकोटा झुक सकता है और समय पर पहाड भी झुक सकता है। लेकिन श्रेष्ठ पुरुषो का भाल नही झुकता है। इसी प्रकार हमार अजा का सिर नही झुकता है और वह तभी झुकगा जब उनके द्वार पर बारात लेकर साजन अर्थात उनक समान समधी पधारेंगे। इस गीत की आगे की पक्तियो का भाव इस प्रकार है

काना के बडे बागिया, जिन बाग लगाये।
काना की बेटी ? कोकिला, फुल बीनन आई।
राजा जनक से बागिया, जिन बाग लगाये।
सीता सी-बेटी ? कोकिला फुल बीनन आइ।
रामा से धनु धारिया जिन धनुष चढाये।
राजा दसरथ से साजना चढ व्याउन आये।
कोट नव पवत नव, सिर नवयें न आये।

चचा चल रही है कि व कौनस श्रीमान है जिन्होन इतने सुन्दर विशाल बाग लगाय है और वह कोकिल म मधुर शब्द बोलन वाली पुत्री जो पुष्प चुन रही है किसकी लडकी है ?

ऐसा ज्ञात होता है कि जो राजा जनक के समान सामर्थ्यवान हैं इनक ही लगाय हुए य सुन्दर उद्यान हैं तथा जो फूल चुन रही है वह उनकी ही पुत्री जानकी है एव जो तिलक करवान द्वार पर पधारे हैं वे धनुषधारी राम के तुल्य चरित्रवान् दूल्हा हैं। जो बारात सजा कर लाय हैं वे राजा दशरथ के समान समधी हैं।

का पात्र) भर भर दूध पिओ, और गोद म बठी-बठी इच्छा क पान चबाया करो। तुमको घर क इस भाभुजाव की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लकिन वध बडी चतुर थी। वह अपनी मधुर वाणी म अजा स फिर निवदन करन लगती है

आजुल! पगडी जो धरिओ उतार।
पिछौरी सिर बाढिओ।
टीका करो जो बना! आये द्वार,
कारज अपनो साढिओ।

आजुल अपनी पगडी को उतारकर सिर स पिछौरी को बाँधिय क्योंकि तुम्हारे द्वार पर दूल्हा खडा हुआ है। जाकर उसका टीका (तिलक) कीजिय और अपने यज्ञ काय (विवाह काय) को सम्हालिय।

एक लोक गीत का भाव और प्रस्तुत है। मगल-काय म मामा किसी मतभेद के कारण सम्मिलित नहीं हुए। बहन समझाकर थक गइ। तब कन्या माँ की आज्ञा से मामा को मनाने गई। वह मामा को दख रही है

ऊँची अटरियां रग भरीं
चदन जडी हैं क्विरियां।
जहां मामुल मोरे पौढ़िओ,
माई ढुरयें बिजनिया। ऊँची
जौनों लडलडी बेटी? चढ गई
मामुल सोओ क जागो।
हम कहा सोब बेटी लडलडी
हमे सोच तुमाओ। ऊँची

लडकी देखती है कि रगीन चित्रा स सुशोभित एक उच्च अट्टालिका है जिसम चदन की लकडी की सुन्दर किवरिया लगी हुई हैं। उस सुन्दर अटारी म मामा बैठे हुए है और उनक समीप माइ बठी हुई पखा चल रही हैं।

ऐसी अवस्था म अनायास ही भानजा मामा स जाकर कहने लगती है कि *मामा तुम सो रहे हो या जाग रह हो। मामा भी बडे गम्भीर थ। लज्जा* क मारे बिना किसी वाद विवाद क अपनी भानजी को प्रेम स उत्तर दते हैं कि बटी! हम किस प्रकार सो सकते है जब हमको अपनी भानजी के विवाह की चिन्ता है।"

यह सुन भानजी सकुची सी दबी हुई वाणी स मामा का समन करती है

सोच मामुल? मोरे जिन करो,
उठ काज सुदारो।

भाँवर का लोकगीत—

भाँवरें लागी परन मोरी गुइयाँ।
क मोरी गुइयाँ पाँवन की पजनियाँ,
झनन झन लागी बजन मोरी गुइयाँ। भाँवरें
क मोरी गुइयाँ बना उर बनीं को,
नजरियाँ लागी मिलन मोरी गुइयाँ। भाँवरें
क मोरी गुइयाँ जुग जुग जिये जा जोरी,
लगी रयें हमसों लगन मोरी गुइयाँ। भावरें
(नागा)

पली भाँवर के परतई, भौजी मन मुस्कानी।
दूजी भाँवर के परतई, माँईं मन सकुचानी।
तीजी भाँवर के परतई, वीरन हिय भर आओ।
चौथी भाँवर के परतई, सखियन मोद मनाओ।
पाचो भाँवर के परतई, माई - पीर सिरानी।
छाटी भाँवर के परतई, मना मन बिलखानी।
साती भाँवर के परतई, बेटी भई है बिरानी।

प्रथम भाँवर के पडन समय भावज मन ही मन म मुस्कराने लगती है, दूसरी भाँवर क समय माँइ सकुचाने लगती है। तीसरी भावर को पडते देख भाई का हृदय भर आता है। चौथी भाँवर पडने म सहेलियाँ मोद मनाने लगती हैं। पाँचवी भाँवर को पडते हुए जब माता देखती है तब उसकी प्रसव काल की पीडा (जो उक्त पुत्री को जन्म देते समय उसको हुई थी) शान्त हो जाती है और छठवी भाँवर के समय जो मना कन्या के साथ विलाप करती रहती थी उसका बिलखना अत्यन्त भावात्मक हो जाता है तथा सातवी भावर पडते ही कुटुम्बी जन यह जान लेते हैं कि अब लडकी पराये गृह की हो गई है।

परिक्रमा क पश्चात पाँव पखरई (वर का कन्या को पद प्रक्षालन करते हुए आभूषण तथा द्रव्य भेंट करना) होती है। भावर के उपरान्त दूल्हा श्वसुर के मैहर-गृह (कुल देवता गृह) म प्रवेश करता है तब उसे साली सरहज द्वार पर पर्दा डालकर प्रवेश करने से रोकती है और यह लोकगीत गाती है

धीरे धीरे आओ छिनर के नदिया बहत है।
तेरी बना, मोरे भया जुड़िया मिलत है।

अथात साली और सारजें व्यग्य और हास्य म कहती है कि हीन-चरित्र माता के लाल तनिक धीरे धीरे गृह म प्रवेश करो क्योंकि यहा पर प्रेम की पवित्र सरिता बह रही है कहीं इसम तुम बह न जाओ और तुम्हारी बहन और हमारे भाई की भी सुन्दर जोडी बनती है।

का पात्र) भर भर दूध पिओ, और गाय म बैठी-बैठी इन्हा क पान चबाया करो। तुमको घर क इस मामुराव की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ग्रदिन वधू बड़ी चतुर थी। वह अपनी मधुर वाणी म अन्त म फिर निवेदन करने लगती है

आजुल ! पगड़ी जो धरिओ उतार।
पिछोरी सिर बांधिओ।
टीका करो जो बना ! आये द्वार,
कारज अपनो साधिओ।

आजुल अपनी पगड़ी को उतारकर सिर स पिछौरी को बाँधिय क्योंकि तुम्हारे द्वार पर दूल्हा खड़ा हुआ है। जाकर उसका टीका (तिलक) कीजिय और अपने यत काय (विवाह काय) को सम्हालिय।

एक लोक गीत का भाव और प्रस्तुत है। मगल काय म मामा किसी मतभेद के कारण सम्मिलित नही हुए। बहन समझाकर थक गई। तब कन्या माँ की आज्ञा स मामा का मनाने गई। वह मामा को देख रही है

ऊंचो अटरियां रग भरीं
चदन जड़ी हैं किवरियां।
जहाँ मामुल मोरे पौढिओ
माई ढुरयें बिजनियां। ऊँचो
जौनों लड़लड़ी बेटी ? चढ़ गइ,
मामुल सोओ क जागो।
हम कहा सोव बेटी लड़लड़ी
हम सोच तुमाओ। ऊँचो

लड़की देखती है कि रगीन चित्रा स सुशोभित एक उच्च अट्टालिका है जिसम चदन की लकड़ी की सुन्दर किवरियाँ लगी हुई हैं। उस सुन्दर अटारी म मामा बैठे हुए हैं और उनक समीप माइ बैठा हुई पखा झल रही हैं।

एसी अवस्था म अनायास ही भानजी मामा स जाकर कहने लगती है कि मामा तुम सो रहे हो या जाग रह हो। मामा भी बड़ गम्भीर थ। लज्जा के मारे बिना किसी वाद विवाद के अपनी भानजी को प्रेम से उत्तर देते है कि बेटी ! हम किस प्रकार सो सकते हैं, जब हमको अपनी भानजी क विवाह की चिन्ता है।

यह सुन भानजी सकुची सी दबी हुई वाणी स मामा का सकेत करती है

सोव मामुल ? मोरे जिन करो,
उठ काज सुदारो।

घर होती आदर कर लेती घर होती।
राम नाम की पातर धरती चित की दुनियां धर देती। घर होती
बुध की दार, दया के चावर, बरा सुमत के धर देती। घर होती
प्रीत को पापर, ज्ञान गारमा मन को दोना भर देती। घर होती
मान को माडो, धीव जियरा को असडा खाड परस देती। घर होती

समधिन कह रही है कि यदि मैं गृह में उपस्थित होती तो समधी के लिए राम नाम रूपी पवित्र पात्र, चित्त रूपी दुनिया (दौना) बुद्धि की दाल, दया के उज्ज्वल चावल सुमति के बरा (उद की पिठी का बनता है) और प्रेम के पापड तथा ज्ञान रूपी गारमा (गोरम) पवित्र मन के दोनो में भर कर उपस्थित करती तथा मान रूपी माँडे (माडा मैदा का बनता है) हृदय रूपी घृत एवं बनारस की कच्ची शक्कर समधी का परोसकर उनका सम्मान करती। वास्तव में समधी के प्रति उपमा का यह भावपूर्ण लोकगीत बडे सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है। श्री मुंशी अजमरीजी की यह गारी आज भी बडी प्रसिद्ध है

रामगारी –

जनकपुरी की नार नवेली हँस हँस बोल सुनाव
गारी गावें जू। जनक
चारउ भया चतुर बने हो सुनो राम जू प्यारे।
एक पिता क कसे उपज दो गोरे दो कारे।
लालन हम प रोस न करक भेद आप समझाव।
गारी गाव जू। जनक
कोऊ कहे लाल का जाने भद गुप्त है जाको।
अवधपुरी की रीत अनोखी उतै न काम पिता को।
कौसिल्या ककई, सुमित्रा खीर खाय सुत जाव।
गारी गाव जू। जनक
कोऊ कहै खीर को मिस है उन ऋषी बुलाये।
कर सेवा सब भाति ऋषिन की जे चारउ सुत जाये।
ऐसे उपज कुवर मनोहर दसरथ सुवा कहाव।
गारी गाव जू। जनक
कोऊ कहै लाल की भगिनी एक हतीं अन याहीं।
सुघर सलोनी सान्तादेवी शृंगी ऋषि ने चाहीं।
इनके मान बडो ऋषियन को बन संग पोचाव।
गारी गाव जू। जनक

बुंदेलखण्ड में दूल्हे का टीका अधिकतर घोड़े पर ही किया जाता है। लेकिन कुछ समाजों में पालकी तथा पगों पर भी किया जाता है।

टीका (द्वारचार) के पश्चात प्रीतिभोज होता है जिसको 'आगौनी की पगत' कहा जाता है। यह पगत किसी किसी समाज में पक्की (जिसमें पूड़ी, साग मिष्ठान्न दही और रायता परोसा जाता है) और किसी किसी समाज में कच्ची ली जाती है जिसमें दाल भात माड़ा (मैदा का बनना है) घृत शक्कर, बरा पापड़ और गोरस परोसा जाता है। कच्ची पगत को इस क्षेत्र में अधिक मान्यता दी जाती है, किन्तु यह पगत पक्की से अधिक व्यय साध्य होती है। पगत के समय महिलाएं मधुर स्वरों में लोकगीत गाती हैं, जिनको गारी कहा जाता है।

पगत के पश्चात श्वसुर दुल्हन का चढ़ावा चढ़ाने जाता है और मंडप के मध्य कन्या को श्वसुर स्वयं अपने हाथों स्वर्ण तथा चांदी के आभूषण पहनाता है और उसकी आरती में नारियल बताशा डालता है। तत्पश्चात कन्या को शक्ति का रूप मानकर उसका पूजन करता है।

चढ़ावा चढ़ने के उपरान्त परिक्रमा (फेरे) पड़ने के प्रथम मंडप के मध्य सात ऋषियों और सात समुद्रों को प्रस्थापित किया जाता है। इनको बई कहा जाता है। इसमें किसी धातु या मृत्तिका के चौदह पात्र रख दिये जाते हैं जिनको सप्त ऋषियों और सात समुद्रों का रूप मान लिया जाता है।

इस प्रथा के उपरान्त पुरोहित मंत्र पढ़कर वर कन्या को मंडप में आने के लिए आह्वान करता है और वर कन्या जब मंडप के मध्य अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं तब जवा, तिल शक्कर शहद घृत से बनाई गई 'साकिल्य' द्वारा पुरोहित के मंत्र उच्चारण के साथ साथ वर आहुति देकर हवन करता है।

हवन के पश्चात कन्या का पिता वर के हाथ में अपनी पुत्री का हाथ रखकर पुरोहित के कन्यादान संकल्प का मंत्र उच्चारण करते समय 'कन्यादान' (पाणिग्रहण) करता है। इस अवसर पर शकुन भी किया जाता है जिसे प्रायः दोनों पक्ष करते हैं।

इस प्रथा के पश्चात पुरोहित शिव-पार्वती का कथा प्रसंग कहते हुए वर कन्या द्वारा सात-पांच वचन (जिसमें वर सात प्रतिज्ञाएँ कन्या को सत्य ग्रहण करने की कहता है और पांच प्रतिज्ञाएँ कन्या पति को सत्य ग्रहण करने के लिए कहती है) भरवाता है। जब वर और कन्या वचनबद्ध हो जाते हैं, तब भाँवर (परिक्रमा) पड़ना प्रारम्भ हो जाती है। भाँवर पड़ते समय महिलाएँ यह लोक-गीत गाती हैं

करती है। इस लोकगीत मे भावज और ननद का स्नेह कितने सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है।

उपयुक्त विवाह संस्कार समाप्त होने पर अब केवल विदा और दहेज लेना रह जाता है। इसके लिए दूल्हा अपने माता के साथ मडप के मध्य आता है। इस प्रथा मे किसी किसी समाज मे दूल्हा का पिता भी साथ आता है।

समधी दूल्हा और उसके माता दोनो को मण्डप के मध्य विश्राम देकर तिलक लगाकर अपनी इच्छानुसार दहेज देते हैं। पश्चात माँ मडई (समधी अथवा उसके माता का मुख हल्दी द्वारा समधिन रग देती है और कुछ भेंट भी देती है) होती है। इसके उपरान्त दूल्हा मडप के मध्य दुलहिन का कंगन छोरकर श्वसुर और सास से विदा के लिए आग्रह करता है। यह विदा किसी के यहाँ विवाह के पश्चात ही कर दी जाती है और किसी के यहाँ चलाव (द्विरागमन) करके की जाती है।

देखिये विदा होने लगी है। यह विदा का दृश्य बडा करुणाजनक होता है कैसा भी कठोर हृदय हो विदा को देखकर द्रवित होने लगता है ननद की विदा के समय भावज अपने हृदय के भावपूर्ण उदगार कोमल और विनम्र शब्दों मे प्रकट कर रही है

विदा का लोकगीत—

बिदा की कौनें बेल बई।
मिलक बिछुरन की नइ नोंनी, जग मे नीत दई।
सरद जुनया सो, बारी ननदिया की चमक रई उनई।
बिदा की कौनें बेल बई।
झिलमिल होंय, बदिया कानन करन फूल छब नई।
सासुल लेय उसांस, ससुर की हिलकी हिलक रई।
बिदा की कौनें बेल बई।

भावज कहती है कि यह विदा की बेला का बीज किस निर्मोही व्यक्ति ने बोया है। विधाता ने ससार मे मिलाकर वियोग की नीति उत्तम नही बनाई है।

वह ननद के आभूषणो का वर्णन करती है ननदी के माथे की टिकली शरद चाँदनी की तरह दमक रही है और बन्दियो के नग झिलमिल झिलमिल हो रहे है तथा कानों मे कर्णफूल नवीन छवि दे रहे हैं।

इसके उपरान्त वह वर्णन करती है कि ननद के रुदन को देखकर, सास दुखित होकर उच्च श्वास भरने लगी है और श्वसुर के कंठ से अपनी पुत्री के करुण क्रन्दन को सुनकर जो हिडकी उठती है वह वहा हिडककर रह जाती है।

दूल्हे के गृह में प्रविष्ट होने पर कुल देवता के समक्ष ज्योति मिलाई जाती है। जिसमें वर और कन्या दो जलती हुई बातियों को अपने अपने हाथों से एक करके अपने दो हृदयों के एक होने का प्रमाण देते हैं। इस ज्योति मिलान में वर को नेग भी दिया जाता है। इसके उपरान्त दूदा भाती (दूल्हा दुल्हिन एक-दूसरे को दूध भात खिलाते है) होती है। इसमें भी दो हृदयों के एक होने का भाव प्रदर्शित होता है। इसके पश्चात दूल्हा जनवासे चला जाता है।

दूल्हा मध्याह्न में फिर कंवर कलेवे के लिए श्वसुर गृह में आता है और अपने साले सालियों के मनाने पर कलेवा (नाश्ता) करता है। यह अवसर बड़े मनोरंजन का होता है। इस समय दूल्हे को उसकी इच्छानुसार भेंट भी दी जाती है। तत्पश्चात सजन पगत (प्रीतिभोज) होती है। यह विवाह में विशेष महत्व रखती है। इस समय समधी (वर पक्ष) समधिन (कन्या पक्ष) को भेंट देता है। किसी समाज में मेवा किसी में बताशा द्वारा यह प्रथा सम्पन्न की जाती है। किसी किसी समाज में कन्या का पिता वर के पिता का घत शक्कर द्वारा पौंचा (हाथ का पंजा) काटता है। यह प्रथा प्राचीन काल के युद्ध का प्रतीक है और बुन्देलखण्ड में अभी भी क्षत्रिय वंशियों में प्रचलित है। सजन पगत' के समय समधिनें, समधी को सम्बोधन करती हुई गारी (लोकगीत) गाती हैं जो अत्यन्त भावपूर्ण एवं मनोरंजक होती हैं। अनेक प्रचलित गारियों में से एक यहाँ प्रस्तुत की जा रही है

सजन गीत—

पतिया रमानो सजन घर आये।
ऐसे सजन जू को आदर कीजो।
तातो सो नीर चरन धोवे दीजो।
चंदन पटरी पौढ़न खों दीजो।
खाड पुरोस भोजन खों दीजो।
सीतल जल आचमन खों दीजो।
पानन बिरियां चबन खों दीजो।
मोरग पन्छा परन खों दीजो।
लरम गेंड़वा उसास खों दीजो।
शालों दुपट्टा उढ़न खों दीजो।
फूलन माला झूलन खों दीजो।

यदि किसी कारणवश समधिन गृह पर नहीं होती है, तब वह अपने समधी के प्रति यह भाव प्रदर्शित करता है

माई कहै बेटी नित दिन अइओ,
बाबुल कहैं दोऊ जोर।
विरना कहैं बना ? औसर पै अइओ,
भौजी, कहैं असढा मोर। देरो मे

मा ममतावश पुत्री को आंखो से ओझल होते नही देखना चाहती, इस कारण वह कहती है कि बेटी, नित्यप्रति आया करो और पिता कुछ साहस करके यह कहते हैं कि बेटी, प्रात और सध्याकाल अवश्य हो आया करो, तथा भाई को कुछ बहन को देना पडता है इसलिए वह लोभवश कहता है कि बहन, अवसर काज के समय पर अवश्य आया करो। किन्तु भावज का हृदय कठोर होता है, इस कारण वह वर्ष भर की नीव डालकर बात करती है कि ननद आषाढ मास पश्चात सावन मास म रक्षा बन्धन के त्यौहार पर अवश्य आया करो। इस लोकगीत म गीतकार ने कितने सुन्दर ढग से मानव चरित्र का काव्यात्मक वर्णन किया है।

विवाह होने पर जब दूल्हा दुलहिन घर पहुचते हैं तो धूरे पावन (धूलि-भरे हुए पर) स्थानीय देवी देवता पूजे जाते हैं। उपरान्त ब्याहारी और पुरा पडोस म दूल्हा दुलहिन देखने का बुलावा फेरा जाता है।

इस अवसर पर देवी देवता पूजने के पश्चात गृह म महिलाएँ मगल-गीत गाते हुए एक नेग (नियम) करती हैं जिसे सोनारा कहते है। इसम भावज एक गृह म सेज लगाकर वधू को समझा-बुझाकर प्रवेश करा देती है। फिर देवर से भी उस गृह म प्रवेश करने का अनुरोध करती है। इधर स्त्रियाँ मधुर कठ से बडी लगन और चाव से गीत गाती है। बडा ही विनोद भरा और मनोरम समय होता है। सोनारा' के समय जो गीत गाया जाता है उसकी दो पक्तिया यहा उद्धृत की जा रही हैं

पायल दाब चलो मोरी सजनी,
कानन भनक न होय।
रये बड लरका, सुख मे सोय,
पायल दाब चलो मोरी सजनी।

मार्गशीर्ष मास समाप्त होने पर विवाह आदि मगल कार्य भी बन्द हो जाते है क्योंकि बुन्देलखण्ड म यह कार्य शुक्रोदय तक ही शुभ माने जाते हैं और यह प्रथा बुन्देलखण्ड निवासियो म अभी भी प्रचलित है। पौष मास म कोई विशेष तीज, त्यौहार व्रत तथा मेले नही होते।

आप अब उस फूल चौक के लोकगीत का अध्ययन कीजिए जिसका गीत-कार न न जाने कितने मनन चिन्तन और शोध के पश्चात सृजन किया होगा।

जब नवोढा युवती मुग्धा अवस्था म पदार्पण करती है, और जब उसके

कोऊ कहैं गुनें रघुवंशी बीर बड़े बलधारी।
बलहारी जा बल की लाल्न प्रथम ताड़का मारी।
सांचें सूर नहीं नारी प कबऊं हथि उठाय।
गारी गाय जू। जनक

कोऊ कहैं मुनि के बेन्र लाल सुनैन आली।
फूल वाटिका म सब भूलें निरखे सगुल ध्याली।
'प्रेम' भरे अटपटे बैन गुन रायौ मन मुसकाय।
गारी गाय जू। जनक

विवाह होने स पूर्व लड़की अपनी भावज के समीप सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहती है। उस समय के इस भावपूर्ण लोकगीत का मनन कीजिये जो भारतीय परम्परा का प्रतीक है

सुहाग गीत—

हसत खिलत भौजी ढिग आई
दैओ मोरी भौजी सुहाग कौ बीरा।
वर-पाये, जसे मानिक हीरा।
मानिक, हीरा जसे जड़ित नगीना।
वर पाये जसे मानिक, हीरा।

ननद प्रसन्नचित्त होकर अपनी भावज से सौभाग्य का पान (बीरा) प्राप्त करने की कृतज्ञतापूर्ण जिज्ञासा प्रकट कर रही है कि भावज, सुहाग का बीरा प्रदान करके मुझको सदा सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद प्रदान कीजिये। मुझको तुम्हारी कृपा से इस प्रकार के तेजवान वर प्राप्त हुए जिस प्रकार रत्नों म श्रेष्ठ पानीदार और आबदार मोती और हीरा होता है। भावज जब ननद के ये भाव भरे शब्द सुनती है तब वह दौड़कर ननद का स्वागत करती हुई, विनम्र शब्दों म कहती है

चंद बदन भौजी उठ धाई
लयौ मोरी ननदी सुहाग कौ बीरा।
वर पाये जसे मानिक, हीरा
मानिक हीरा जसे जड़ित नगीना।
वर पाये जसे मानिक हीरा।

भावज जब ननद द्वारा स्नेह और श्रद्धापूर्ण शब्द सुनती है, तब बड़ी उमंग से उठकर उसको हृदय से लगाती हुई अपने मन म दृढ़ संकल्प करके कहती है कि लीजिए ननद सुहाग का बीरा और अपनी मांग का सिन्दूर दाहिने हाथ से लेकर उसकी मांग भरकर उसको सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद प्रदान

डिग द अँगन लिपाओ वारी सजनी, मौंतिन चौक पुराओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।
मौंतिन चौक पुरा ो वारी सजनी चदन पटरी डराओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।
चदन पटरी डराओ वारी सजनी चौमुख दियल जराओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।
चौमुख दियल जराओ वारी सजनी, इमरत अरग दुआओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।
इमरत अरग दुआओ वारी सजनी, जसुद चौक ल्याओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।
चौक ल्याक पूजा कराओ लालन कठ लगाओ महाराज।
आज दिन सौंने को महाराज।

महाराज शब्द का प्रयोग यहा गृह के प्रधान पुरुष को सम्बोधित करके किया गया है। गृह की मान्य महिला कह रही है, कि आज सोन (स्वण) का दिवस और सोन की रात्रि है अर्थात स्वण-अवसर है। इसलिए द्वार पर स्वण कलश प्रस्थापित कीजिये। और वह गृह की महिला से अनुरोध करती है कि सजनी! गाय के गोबर द्वारा आगन का लिपवाकर फिर मोतियों द्वारा चौक पुरवाइए। उसम चन्दन की पटरी (पटा) डलवाकर चौमुख दीपक प्रकाशित करके, फिर अमृत द्वारा प्रसूता के आवाहन के लिए अर्घ्य दीजिये। इसके उपरान्त पूजन हवन करके नवजात शिशु को अपने कण्ठ से लगाकर हृदय को शीतल कीजिये इसके उपरान्त पाचवें दिन ननद पच लेकर आती है। उस समय के लोकगीत का आनन्द भी कम नहीं है। भावज के गृह ननद चगर लेकर आई है। तब उस पर भावज व्यग्य कसती है

ननद बिरहुलिया झगुलिया न ल्याई?
टोपी न ल्याई कतया न ल्याई,
प दरजो को यार सगइ ल क आई।
ननद बिरहुलिया झगुलिया न ल्याई।
चूरा न ल्याई, करदौनों न ल्याई,
सुनरा को यार सगइ लै क आई। ननद
अलना न ल्याइ पलना न ल्याई,
बढइ को यार सगइ ल क आइ। ननद
छूटा न ल्याइ, पौंचिया न ल्याइ,
पटवा को यार सगइ ल क आइ। ननद

अब विदा का एक और लोकगीत देखें। इसमें मातृ गृह से विदा होते समय पुत्री को अपने पिता माता, भाई, भावज का ध्यान हो आता है। वह अपने वियोग काल में भविष्य का क्या-क्या अनुमान लगाती है

देरी मे इटिया, न दइओ मोरे बाबुल।
बिटिया न दइओ पर देस।
देरी की इटिया, खिसक जहै बाबुल।
बिटिया बिसूरे पर देस।

बिटिया (पुत्री) यह भाव प्रदर्शित कर रही है, कि पिता द्वार की देहरी में इंट लगवाना उचित नहीं, और न अपनी लड़की को अपना ग्राम छोड़कर परदेश में देना क्योंकि जिस प्रकार देहरी की लगी हुई इंट पैरों की ठोकरों से निकल जाती है उसी प्रकार मातृ गृह त्यागने पर सास गृह में जो देवरानी, जिठानी तथा ननद आदि के बहू पर समय समय पर वाक्य प्रहार होते हैं उनसे उसका हृदय टूट जाता है। और जो दुख उसे होता है वह किसी से कह सुनकर बटा भी नहीं पाती है। वह मातृ गृह के सुखों का स्मरण करती हुई अपने अन्तर्मन में ही रुदन करती हुई दुखी रहती है। इसके उपरान्त वह यह भाव प्रदर्शित करती है

कौना के रौयें नदिया बहत है,
कौना के रौये बेला ताल।
कौना के रौयें छतिया फटत है,
कौना कौ जियरा कठोर। देरी मे

लड़की कहती है कि किसके रुदन करने से सरिता प्रवाहित होने लगेगी किसके करुण क्रन्दन से बेला ताल (महोबा का एक सरोवर) भर जायगा तथा किसके रोने से हृदय में आघात होगा एवं किसका हृदय वज्र की भांति कठोर रहेगा। उत्तर इन पंक्तियों में प्रथित है

माई के रौंयें नदिया बहत हैं
बाबुल के रौये बेला-ताल।
बिरना के रौंयें छतिया फटत है
भौजी कौ जियरा कठोर। देरी मे

वह कहती है कि मेरी माँ के मेरे वियोग दुख में रुदन करेगी, तब उसकी अश्रुधारा में सरिता प्रवाहित होने लगेगी। जब मेरे पिता रुदन करेंगे तब बेला ताल भर जायगा और जब भाई रुदन करेगा, तब मेरा हृदय फटने लगेगा एवं भावज के हृदय की मैं क्या कहूँ क्योंकि वह ननद के प्रति बाहर से कोमल और अन्तर्मन से वज्र के समान कठोर होती है। उसका यह भाव बड़ा मार्मिक है

भरन और पूजन करन कुएँ पर पहुचती है, तब उसके सौन्दय पर मुग्ध होकर कुआं उमँग पडता है। यह देखकर उसकी साथ की सहेली कहने लगती है

तुम साचउँ सुघर पनहार
कुअला उमँग परो ।
क तुम गोरी धन, साँचे की ढारीं
क तोयँ गढे री सुनार ।कुअला

सहेली तुम वास्तव म बडी सुन्दर, रूपवती जल भरन वाली हो कि तुम्हारे सौन्दय पर मुग्ध होकर, दखिए कुएँ का जल ऊपर उमड आया है। गोरी, या तो तुमको ब्रह्मा न स्वय साचे म ढालकर बनाया है, या किसी कुशल शिल्पी स्वणकार न तुमको गढा है। यह सुन वह कोमल शब्दो म सहेली को उत्तर दती है

ना हम गोरी धन साँचे की ढारीं
न हमे गढीरी सुनार ।कुअला
माइ बाप ने जन्म दिओ है
रूप दिओ करतार ।कुअला

सहेली न तो मुझको ब्रह्मा न अपने साचे म ढाला है और न चतुर स्वण कार न अपने हाथो स गढा है। मुझे तो मरे माता पिता न जन्म दिया है और सौन्दय मुझको करतार की कृपा स प्राप्त हुआ है।

इसके उपरान्त प्रसूता महिला कुए का पूजन करके और जल भरके सहेलिया क साथ चल देती है। जब प्रसूता घर क द्वार पर पहुचती है तब उसका देवर नग (भेंट) लेकर खेप (दो पात्र) का भावज क सिर से उतारता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ यह लोकगीत गाती है

हम पर मूगन की माला—
हमारी कोउ गगरी उतारो।
कहा गए मोरे सइयाँ गुसइयाँ,
कहाँ गए वारे लाला । हमारी
एक हात मोरी गगरी उतारो
दूजे सें घूघट समारो ।हमारी
एक हात मोरी गगरी उतारो
दूज सें चूनर समारो । हमारी
एक हात मोरी गगरी उतारो
दूजे सें ललना समारो ।हमारी
हम परें मूगन की माला—
हमारी कोउ गगरी उतारो।

प्रथम रजोदशन होता है तब वह दशवें दिन ऋतु स्नान करती है इसी दिन फूल चौक होता है। फूल चौक का दिवस सतान के शुभ अशुभ लक्षणा का प्रतीक माना जाता है। इस कारण इस दिन के लिए ज्योतिष के विद्वान द्वारा मुहूत देखना अति आवश्यक समझा जाता है। इस मांगलिक फूल चौक के समय जो लोकगीत इस क्षेत्र म प्राय गाया जाता है वह यहा प्रस्तुत है

सोंन के दियल जराओ, गोरी धन, चौक आंइ।
चदन चौक पुराओ, गोरी धन चौक आंई ।
बमन बुलाओ वेद दिखाओ, गुन क गनत लगाओ।
गोरी धन चौकें आई। सोंने के दियल जराओ। गोरी
सहदेव्या, लखना ल्याओ देवरा गिन दिन वार बताओ।
गोरी धन चौक आई, सोंने के दियल जराओ। गोरी
चदा छोड, सुरज कों छोडो उर भगुवार बचाओ।
गोरी धन चौक आई। सोंन के दियल जराओ। गोरी

फूल चौक का यह बुन्देलखण्डी लोकगीत बडा ही महत्वपूण है। परिवार की एक मान्य महिला कह रही है कि वधू ऋतु-स्नान से निवत्त होकर पूजन म बैठ रही है। चौक पुरवाइये और पण्डित द्वारा यह विचार कीजिये कि यह रजोदशन शुभ-महूत म हुआ है अथवा नही। और देवर का यह काय है कि वह सहदेवी अथवा लक्ष्मणा बूटी को लाकर भावज से उसकी इच्छा का पात कर कि वह कन्या अथवा पुत्र—किसकी इच्छा रखती है, क्योंकि ऋतु-स्नान के उपरान्त सहदेवी के प्रयोग म पुत्री और लक्ष्मणा के प्रयोग म पुत्र का जन्म होता है। इसके अतिरिक्त देवर भावज को पडित द्वारा गणित पूछकर यह भी निर्देश कर कि गभाधान म सोमवार रविवार और भृगुवार भी वर्जित होते हैं। नारद पुराण म इन सभी मान्यताओं का उल्लेख है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लोकगीतो द्वारा किस प्रकार प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण रखा गया है।

गभाधान के नौ मास उपरान्त जब नव शिशु को जन्म देकर स्त्री को जननी बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है तब वह दिवस स्वण दिवस माना जाता है। इस स्वण दिवस के अवसर पर बुन्देलखण्ड म जो गीत गाये जाते हैं उनको सोहर कहा जाता है। इस अनेक सोहरा म से यहाँ एक गीत प्रस्तुत है

आज दिन सोंने को महाराज ?
सोंने को सब दिन सोंने की रात सोंने के कलस धराओ महाराज।
आज दिन सोंने को महाराज।
गउआ को गोबर मंगाओ बारी सजनी दिग दै अंगन लिपाओ महाराज।
आज दिन सोंने को महाराज।

६ मदन पुरी क आये वीर
 कर मे बांधे सौ सौ तीर।
७ एक तीर मोय मारो तो
 डिल्ली जाय पुकारो तो।
८ डिल्ली के घर अशा
 गलन मे सग दान सा।
९ हूं लू लू लू

यद्यपि यह लोरी वालका द्वारा रचित प्रतीत होती है पर इस अथहीन गीत म तात्विक अथ छिपा हुआ है। उसका विवचन यहा प्रस्तुत है

१ अथात—हे मनुष्य, तेरा यह शरीर जिमम जीवात्मा निवास करता है, पच तत्व का निर्मित होन पर भी एक कौडी का नही है।

२ तरा वह गभावस्था का नान ध्यान कहा उड गया ? जो तू पेट रूपी नरक स मुक्त हाने क लिए करता था। अब ससार म जम लेते ही तेरे शरीर मे माया रूपी चोरा न अधिकार जमा लिया है। जा भक्ति रूपी कुवरियां गभ की अवस्था म तरे मन म उत्पन्न हुई थी, उसका लोभ, मोह तथा मत्सर रूपी चोर ले गये हैं।

३ अब तरे शरीर म इद्रियाकी वन पडी है। माया के अधीन होकर इद्रिया कुमाग पर चलन लगी हैं जिससे माया रूपी कुवरिया तरुण हो गई है।

४ माया इद्रियो द्वारा मनमाने काय करन म सलग्न है और ब्रह्मा ने जो सयम नियम आदि बनाय हैं उनमे जूझन के लिए तत्पर है।

५ माया यह नही जानती है कि उसके गुरु शिव हैं जिन्होने अपन तीसरे लोचन म कामदेव को भस्म कर दिया था उनकी शक्ति कितनी तीव्र है।

६ तरे शरीर पर उसी कामदेव ने भोग की दष्टि से इच्छा रूपी अनेक नास्त्रा को बाँधकर धावा बोला है।

७ कामदेव के तीर लगने पर शरीर की इद्रिया ने जीवात्मा से, जो ईश्वर का अश है पुकार की है।

८ जीव, जो ईश्वर का अश है अपने मन से कहता है कि तू कम धम दान आदि शुभ मार्गों पर चल।

९ यदि तू शुभ मार्गों पर नही चलेगा तो इस ससार के मानव तेरा हूं लू लू कहकर परिहास करेंगे।

मोरे सो जा बारे वीर वीर की बलयां ल लउं जमना के तीर।
भया की बाई मम्मन कें गइ भया खों घरे छोंड गइ।

पेरा न ल्याइ, बतासा न ल्याइ,
मिठया को यार सगइ ल क आइ। ननद

इस जन्म उत्सव के पश्चात दसवें दिन 'दसटौन' होता है। इस दिन भी प्रसूता का विधिवत पूजन होता है और 'पगत' होती है जिसम प्राय सूखी रसोई (मूग की दाल, भात, कढा रोटी, गोरस) परोसी जाती है। सायंकाल म प्रसूता अपनी मानवती महिलाओ के साथ गीत गाती हुई कुऐं के पूजन को जाती है। इस अवसर पर जो लोकगीत गाये जाते हैं वे आज भी बहुत प्रचलित हैं। उन लोकगीतो म से हम यहा एक दो गीत प्रस्तुत करेंगे

ऊपर बदर घहराय हो
नच गोरी पानी खों निकरीं।
जाय जो कइओ उन राजा-ससुर सों
अगना मे कुइया खुदाय हो,
बहू धन ? पानी खों निकरीं।
जाय जो कइओ उन राजा जेठ सौं,
अगना मे पाटें डराय हो।
बहू धन ? पानी खों निकरीं।
जाय जो कइओ उन बारें देउर ? सों,
रेशम की डोरी ल आय हो
तुमाइ भौजो पानी खों निकरीं।
जाय तो कइयो उन राजा ननदेउ सों
मुतियन चुनरी बनाय हो,
तुमाइ सारज पानी खों निकरीं।

प्रसूता जब कुऐं का पूजन करने और जल भरने घर म चलती है तब मेघ गरजने लगते हैं। वह मार्ग म भीग जाने की आशका से अपने परिवार के वरिष्ठ तथा मान्यों से अनुरोध करती है—सबसे प्रथम वह अपने श्वसुर से निवेदन करती है कि मेघ गरजने लगे हैं इस कारण आँगन म ही आप कुआं खुदवा दें जिससे मैं घर के ही कुए का पूजन कर इस प्रथा का पूर्ण कर लूँ। फिर वह अपने जेठ से निवेदन करती है कि आप आँगन म पाटें लगवा दें जिससे मेरे पैर न भीगें। वह अपने देवर से विनय करती है कि आप मेरे जल भरने के लिए रेशम की डोरी लाइये। वह अपनी ननद के पति से भी आग्रह करती है कि तुम्हारी सरहज (साले की पत्नी) जल भरने को जाना चाहती है यह आवश्यक बात है। इस कारण आप शीघ्र मोतियों की चुनरी गोटकर लाइये।

एक दूसरे मातृत्व लोकगीत का विवेचन और प्रस्तुत है। जब प्रसूता जल

एक सहेली दूसरी सहेली की हथेली को थपथपाती हुई, उसकी चारो उँगलियो को क्रमश पकडती हुई कह रही है कि काली गाय ब्यानी है और उसके श्वेत बच्छा हुआ है तथा यह गाय भाई की, यह बहन की, यह पिता की, एव यह बैल का खूटा है। वह अँगूठे को बैल बाँधने का खूटा बताती है। तत्पश्चात अँगूठे को आगे बढाती हुई कहती है कि लँगडा बच्छा आया है। हे डुकरिया (वृद्धा) अपने सूत कातने का राछ और पोनियो को उठा ले। वह उस वृद्धा को यह सकेत करती है कि मेरे घर म जो वधू है, वह कलह करने वाली है। वह दाल छानने से बची हुई चुनी उसको देगी और दाल कहेगी। यह वणन करती हुई वह अपनी सहेली की काँख म कुलकुलाती है जिससे दोनो हँसने लगती हैं।

*एक और मनोरजक खेल का चित्रण भी देखें। इसम प्राचीन युग के कृषि* सम्बधी उत्पादन तथ्य का सकेत किया गया है

हिली मिली दो बालें आइ
का भर ल्याइ , पिसी चना।
भाव बताओ, टका पसेरी।

इस खल क खेलने की प्रथा यह है कि बालक बालिकाएँ पहले एक स्थान पर एकत्र होते हैं। उसमे से एक बालक और बालिका एक दूसरे के गले मे बाँह डालकर, फिर वापस आकर कहते हैं कि मिल जुलकर दो बालें आई हैं, अथात बुदेलखण्ड म जो बेजरा (पिसी चना) एक साथ बोया जाता है, उसकी दोनो बालें आई हैं। तब उन बालक बालिकाओ म स कोई पूछता है कि ये बाल क्या भर लाई हैं ? तब यह दोनो उत्तर देते हैं कि 'पिसी चना'। फिर वह पूछते हैं कि भाव (दर) क्या है ? उत्तर मिलता है कि दो पैसा की एक पसरी।

इस विनोद गीत म उस काल का सकेत मिलता है जबकि बुदेलखण्ड म गेहूँ चना चार आना मन बिकता था।

अब आप बुन्देलखण्ड के व्यग्य पर शिष्ट साहित्य का अवलोकन कीजिय यह साहित्य उस समय का परिचय कराता है जबकि बालक बालिकाएँ, कुछ सयाने होकर अपनी बुद्धि द्वारा कहने सुनने और समझने की शक्ति का अनुभव करने लगते हैं

सूप से कान, भटा सी आँखें,
काय बिरा से सूजत हैं।
नाक की नकटी भौंयें की चपटी
गज मदन सा जूझत है।

इस मधुर लोकगीत की समाप्ति पर प्रसूता घर में प्रवेश करती है। अन्त में कुलीओं में स्त्रियों को बताशों या गोन्द वितरण कर इस मांगलिक कार्य को समाप्त किया जाता है। प्रसूता स्त्री द्वारा कुऐं के पूजन की यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

माता की गोद में पालन पोषण पाने के उपरान्त जब नवजात शिशु मातृ भूमि की पावन रज में लोटने, खेलने और कूदने लगता है तब उसकी बुद्धि का स्वाभाविक विकास प्रारम्भ होता है। और यहीं से उसके मन में कल्पना शक्ति का प्रस्फुटन होता है जिससे बाल-साहित्य का सृजन होता है।

बाल विनोद सम्बन्धी लोक साहित्य— बाल साहित्य का सृजन प्रकृति की गोद में पले हुए सीधे, सरल ग्राम्य बालक बालिकाओं द्वारा होता है। वही भविष्य में लोक साहित्य के रूप में परिणत हो जाता है। इसकी प्रेरणा मिलती है खेतों की हरी भरी बालों से मधुर स्वर से चहचहाते हुए वन के पक्षियों से इठलाते हुए सुवासित वन पुष्पों से तथा गर्जन करते हुए मेघों से।

यही कारण है कि लोक साहित्य कृत्रिमता अथवा बाह्याडम्बर से मुक्त और छन्द के विशेष बन्धनों में बन्दी न होने पर भी रस का अक्षय स्रोत है। इसमें जन मन की समवेत स्वर लहरी गुंजायमान होती है। बुंदेलखण्ड का बाल विनोद साहित्य भी इन्हीं गुणों से सम्पन्न है। बाल लीला के विविध भाव चित्रों को लोकगीतों में जिस श्रेष्ठता से संजोया गया है वह देखते ही बनती है। एक ग्रामीण बहन अपने छोटे भाई के खेलने पर यह गीत गा रही है।

यह एक लोरी है। लोरी उस समय गाई जाती है, जब एक या दो वर्ष का बालक खीझता है

१ कोंडी के रे कोंडी के,
पाँच पसेरी के।
२ उड़ गयें तीतुर,
बस गये मोर,
सरी डुकरिया ले गयें चोर।
३ चोरन के घर खेती भइ,
मार डुकरिया मोटी भइ।
४ मन मन पीसे मन मन खाय
बड़े गुरू सों जूझन जाय।
५ बड़े गुरू की छपन छुरी
तीसों कॉंप मदन पुरी।

वाले बड आदमियो की बात को बड़े ही आदमी पहचानते हैं। लेकिन वास्तव म तुम राव और हम बना है।

*अब आप बाल साहित्य से कुछ बुझौअला के उदाहरण देखिये*

१ लाल छडी मदान गडी। (गाजर)

२ हरी ती मन भरी तो नौ लाख मोती जडी थी।
बाबा के बाग मे, दुसाला ओढे खडी थी। (ज्वार का भुट्टा)

३ नाँय गइ, माय गइ तनक सी जागा मे आन बठी। (लकडी छडी)

× × ×

४ एक लकरिया अगुर चार।
बढ़इ क डारी, बढइ पूत तैं का कर डारी।
नौ सौ कोलू नौ सौ लाठ।
राटा, गड़े तीन सौ साठ।
पटा पिंडी सब गढ लिऔ।
अब लकरिया फेर दिऔ।

इस चौथी बुझौवल म कलम तूलिका का वणन किया गया है। एक चार अगुल की लकडी बढई को दी गई। उसन उस लकडी को छीलकर कलम का रूप दे दिया। जब उसको कलम का रूप प्राप्त हो गया तब वह किसी चित्रकार के हाथ म पहुच गई। तब उस चित्रकार न उस कलम द्वारा नौ सौ तेल निकालने के यन्त्र (कोल्हू) और तीन सौ साठ सूत कातने के राटा तथा अनेक पटा पिंडी आदि अकित कर दिये, फिर भी वह अपन मूल रूप मे बनी रही।

**बुन्देलखण्डी कहानी-साहित्य**—सायकाल जब किसाना की वधुएँ और वद्धाएँ अपन खेत खलिहान तथा घर के काय से निवत्त होकर पार पडोसिना के साथ बठती हैं तब एक दूसरे से किस्सा-कहानिया अवश्य कहती हैं। यह कहानी कहने की प्रथा इस युग मे भी प्रचलित है।

य कहानिया पहले प्राय वद्धाएँ ही कहती हैं फिर वधुएँ और ग्राम्य युवतियाँ। ये बुन्देलखण्डी प्राचीन कहानिया साहित्यिक रुचि स पूरित, और जन-मन के मम को निकट स स्पश करने वाली हैं। एसा प्रतीत होता है कि अधिकाशत इनका सृजन भावा म भीगी हुई वद्धाओ द्वारा ही हुआ होगा जसा कि यहा उद्धत कहानी स भासित होता है। देखिय एकत्र बैठी हुई ग्राम बालिकाओ और वधुओ से एक ग्राम युवती कहानी कहना प्रारम्भ करती है

कहानियाँ सो झूठी बात सो मीठी।
घरी घरी को बिसराम, जाने सीताराम।
सक्कर की घोडी सकरपारे की लगाम।

आओ कूकरा करो उजार भया की लगीं करियाँ चार।
मोरे सो जा बारे बीर।
भया की छिरियाँ बुकरियाँ चरन पहारे जाँय।
आइ नदी की पानू पीय राय करोंदा खाँय।
मोरे सो जा बारे बीर।

प्राकृतिक भाव से पूरित इस लोरी में बहन यह भाव व्यक्त कर रही है कि भाई, माता वास्तव में बड़ी निष्ठुर है। देखो तो तुमको घर अकेला छोड़कर मामा के घर चली गई। कुत्ता आया और नुकसान कर गया, उसके बदले में उसने तुमको मारा है। मेरे छोटे भाई सो जा।

जब वह इस पर भी नहीं सोता तब वह कहती है कि तेरी छिरियाँ-बुकरियाँ पहाड़ पर चरने गई हैं और वहाँ जाकर वह बहती हुई नदी का जल पी रही हैं और वन के राय करोंदा खा रही हैं।

यह स्वाभाविक सिद्ध है कि जिसका मन जिस वस्तु में रमता है उसका नाम लेने से उसे प्रसन्नता होती है। अतः ज्योंही उसने छिरिया बुकरिया का नाम सुना जिनके साथ वह नित्यप्रति खेलता था तो सुनते ही तुरन्त सो गया।

भूमि का यह प्रभाव है कि जब बालक उसकी गोद में खेल-कूदकर, धूल धूसरित होकर उसकी पावन रज अपने मस्तक पर विनोद में चढ़ाने लगता है, उसी क्षण से उसके हृदय में भावों का सृजन होना प्रारम्भ हो जाता है। देखिये तो, बालिकाएँ, 'था था, थपरी' का खेल खेल रही हैं। यह खेल इस प्रकार खेला जाता है कि एक बालिका दूसरे की हथेली को अपनी हथेली द्वारा थपथपाती हुई कहती है

था था थपरी।
गया ब्यानी कबरी।
बच्छा जायो सेत।
नाव धरो गनेस।
जा भया की।
जा दद्दा की।
जा बन की।
जो बल को पूरा।
डुकरिया राटा पौनी उठाइये,
लगड बच्छा आओ है।
तरी बहू करकसा मार।
द है चुनी बताहे दार।
कुल कुल-कुल-कुल।

स्वाभाविक रूप से मुखरित हुई है बुन्देलखण्ड के अंचल म युवतियाँ और वृद्धाओं के मुख से आज भी श्रवण करने को मिलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक गद्य एवं पद्य साहित्यकारों को इन्ही ग्रामीण कहानियों से प्रेरणा मिली है।

*एक कहानी के प्रसंग पर और ध्यान दीजिये। एक युवती दूसरी को* उलाहना दे रही है

चंदबदन मृगलोचिनी ढपल अपनों अंग।
तोय देख मोरे पिय गिरे धूरन भर गयें अंग।

एक चन्द्रवदनी जिसके नयन मृग के नेत्रों की भांति बड़े और गोल थे, अपनी छत (ढावा) पर खड़ी थी। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर एक दूसरी स्त्री के पति मूर्छित हो धरती पर आ गिरे जिससे उनका शरीर धूल में धूसरित हो गया। इस कारण वह स्त्री उसको उलाहना दे रही है कि हे चन्द्रबदन मृगलोचनी बहन! अपने इस सुन्दर शरीर पर आवरण तो डाल लिया करो। जब वह सुन्दरी उलाहना सुनती है, तब वह उस स्त्री को गर्व के साथ उत्तर देती है

मोय देख तरवर डिगें उर उखर जात गज दंत।
भाग सराओ गोरी आपने, सो जियत मिले तोय कंत।

हे गोरी! यदि तुम्हारे पति मेरे सौन्दर्य को निरख केवल मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े हैं तो इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है! यह तो तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमको तुम्हारे पति जीवित प्राप्त हुए हैं। अरी बहन! नहीं तो मेरे सौन्दर्य के प्रभाव से जो जड़ तरुवर हैं वे क्षण में डिगने लगते हैं और उन्मत्त हाथी के दाँत तक मोहित होकर उखड़ पड़ते हैं।

यह है बुन्देलखण्डी लोक साहित्य जो इस जन पद में आज भी मधुर रस का स्रोत प्रवाहित करता रहता है।

अन्त मे हम कुछ घरेलू कहावतों का उल्लेख करना चाहेंगे। कहावतों में ध्वनि और भाव-व्यंजना ही प्रधान होती है, जो किसी कार्य अथवा उदाहरण को देते हुए प्रस्फुटित होती है।

देखत की धन नोंनी।
रोटा कर न पोंनी।

भावार्थ—देखने मे तो अति सुन्दर लगती हैं किन्तु रोटा बेलने और पोनी बनाने तक की योग्यता नहीं रखती हैं।

बे गुन पूत कठगर से।
बे गुन बिटिया डूँगुर सी।

भावार्थ—विवाह के पश्चात बिना गुण वाला ऐसा प्रतीत होता है जैसे

मारी के गिरधारी लाला
कायें हमाइ नाक चपटी ।
बठी रऔ स्याम सुन्दरि,
कायें पों अटकों ।

एक बावड़ी के समीप मड़की और गिरधौरा नाम गाय निवास करते थे। एक दिन उस बावड़ी के समीप से एक हाथी निकला, जिसका पर उस मड़की से अनायास छू गया। अब क्या था वह तमककर कहने लगी—जो सूप की भांति कण वाले और बगा के सदृश आँख वाले तथा पिंडा (घड़ा का ढेर) की तरह ऊँचे शरीर वाले हाथी, क्या तुमको दिखता नहीं है जो तूने मुझको अपनी लात मार दी ? मढ़की के कठोर और व्यंग्य वचनों को सुनकर हाथी भी क्रोधातुर होकर व्यंग्य में ही उत्तर देता है—अरी नासिका की नाटी और भौंहों की चपटी मढ़की, तू उस हाथी से बकवाद करके लड़ना चाहती है जो अभिमानियों के मद का मदन करता है। हाथी के इन व्यंग्य वचनों द्वारा जब मढ़की के रूप पर चोट की जाती है तब वह आतुरता के साथ अपने समीप रहने वाले गिरधौरा को लाला शब्द से सम्बोधित करके अपना वृत्तान्त सुनाती है—गिरधारी लाला क्या हमारी नाक चपटी है ? गिरधौरा बड़ा कूटनीतिज्ञ था, तुरन्त उत्तर देता है—अरी श्यामसुन्दरी बठी रहो क्या व्यर्थ की बातों में उलझती हो ?

आप विचार करें कि बालकों के इस बुन्देलखण्डी व्यंग्य प्रधान पर शिष्ट गीत में उपमा द्वारा रूप का वर्णन करने की क्षमता और अपने विचारों के समर्थन कराने की योग्यता कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है। अब आप इन चार पंक्तियों में केवल शिष्ट साहित्य की बानगी देखिये

कांधे धनुष हाँत में बाना।
कहाँ चले डिल्ली सुल्ताना।
बन के राव बेर का खाना ।
बड़िन की बात बड़े पचाना ।
तांय तुप - तुप तना ।
तुम राव, हम बना ।

एक बना (धुनकर) अपने कंधे पर धुनकी और हाथ में जिस्ता लिए जा रहा था। तब तक उस मार्ग में एक राव (जंगली जाति जो सहरिया के नाम से प्रसिद्ध है) निकला और उसने उस बना से पूछा कि कंधे पर धनुष और हाथ में बाण को लिए हुए दिल्ली के सुल्तान कहाँ प्रयाण कर रहे हैं ?

वह बना अपने सम्मान की बात राव द्वारा सुनकर बड़ी गम्भीरता से उत्तर देता है कि हे वन के राव (राजा) और बदरीफल (बेर) के भोजन करने

**भमरांत का त्योहार**—मकरांति के दूसरे दिन भमरांत का त्योहार होता है। इस दिवस घोड़े, हाथी और गाडी का पूजन करके गोन (खाद्य भरने की खोली) भरकर और घोड़े हाथी तथा गाडी पर रखकर छोटे छोटे बालक खींचते खचोरते हैं, जिसको 'बजी भोरी करना' कहते हैं अथात व्यापार के लिए भ्रमण करना। इस प्रथा से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में जब ट्रेन, बस आदि यातायात के साधन उपलब्ध नहीं थे, व्यापारी वर्ग घोड़ा गाडी आदि से ही अपना कार्य करता था।

**बड़े गणेश**—बड़े गणेश का पूजन माघ कृष्ण चतुर्थी को होता है जो गणेश की पामिनी के नाम से विख्यात है। इस दिन घर का कोई वृद्ध पुरुष उपवास करके सायकाल गणपति का विधिवत पूजन करता है। फिर खीर और तिल के लड्डुओं का भोग लगाता है। तदुपरान्त व्रत खोला जाता है।

**सरस्वती जन्म**—माँ सरस्वती का जन्मोत्सव माघ शुक्ल पंचमी को होता है और उसी दिवस बसन्त-पंचमी का त्योहार मनाने की प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित है। बसन्त का त्यौहार माघ मास में ही क्या मनाया जाता है जबकि बसन्त ऋतु चैत्र से प्रारम्भ होती है। इस बात का उल्लेख हम पहले ही बसन्त ऋतु के वर्णन में कर चुके हैं।

अब हम उस प्रथा पर प्रकाश डाल रहे हैं जो प्रथा भमरांत में व्यापारी वर्ग बरतता है—अथात यात्रा सम्बन्धी। एक स्त्री का पति अपनी पत्नी से साय काल गृह वापस आने की बात कहकर यात्रा करने चला गया था और जब वह वापस नहीं आया तब उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा में कहने लगी

सूरज की मुरक गइ कोर
बरद की छाय अटरिया चढ गइ।
पछिन की लगन लागी दौर
न उनके आउन की बेरा भइ।

सूरज की किरण पश्चिम दिशा की ओर मुड गई है। बरगद की परछाहीं भी लम्बी होकर आगन से अटारी पर चढ गई है। नभ पथ से बसेरा लेने की दृष्टि से पक्षियों की भी दौड लगने लगी है किन्तु पति के आने का अभी तक समय नहीं हुआ है।

उस बेचारी को यह ज्ञात ही नहीं था कि उसका पति तो दुर्भाग्यवश अपनी आपत्तियों को समेटे हुए द्रव्य उपार्जन के निमित्त विदेश चला गया है वह अब कैसे वापस आता? लेकिन जब उस पर विदेश में विपत्ति घिर आती है तब वह अपनी करुण गाथा अपने हार मन से कहता है

हुरा फिरत विपत के मारे,
अपने देश बिना रे।

ना घोड़ा घांस खों खाय।
ना घांस घोड़ा खों खाय।

सखी कहानिया तो झूठी हैं किन्तु लगती मीठी हैं। जिसके कहने से प्रत्येक घड़ी मन को आराम मिलता है। लेकिन इसका ज्ञान सीताराम को ही प्राप्त है। जिस प्रकार सक्रांति के त्योहार पर सांचे में ढालकर शक्कर(चीनी) के घोड़े सहित सवार बनाये जाते हैं और जिसमें शक्करपारे की लगाम भी लगी रहती है, किन्तु वह घोड़ा न तो उस घास रूपी शक्कर को चरता है और न वह घास घोड़े को भी खाने की इच्छा करती है अर्थात किसी का प्रभाव किसी पर नहीं पड़ता। लेकिन सखी, हैं ये दोनों मीठे। अब कहानी आगे बढ़ती है जिसमें सुकुमारता का भाव मुखरित होता है। एक सहेली दूसरी सहेली से कहना प्रारम्भ करती है

एक हतो खाखस को दानों।
आठ बेर पीसो, नौ बेर छानों।
ताय खाय मेरो पेट पिरानों।
चलो सखी राजन दरबार।
तै सुक्वार, के मैं सुक्वार।

वह अपनी सुकुमारता का वर्णन सहेली से करती है कि एक खसखस (पोस्त) का दाना था। जिस दाने को आठ बार पीसा गया और नौ बार छाना गया। उसका भोजन जब मैंने किया तब सखी, मेरे पेट में पीड़ा उत्पन्न हो गई। तुम कहती थी कि मैं बहुत सुकुमार हूँ। अब राजा के दरबार में चलकर निर्णय करा लिया जाय कि तुम कोमल हो या मैं। यह सुनकर एक दूसरी सखी अपना वर्णन करने लगती है

एक सखी सुन बोलो यों।
हवा लग तो जीऊँ क्यों।
जो न लगाउते कत किवार।
तो उड जाती कोस हजार।
चलो सखी राजन दरबार।
तै सुक्वार के मैं सुक्वार।

पहली सखी की सुकुमारता सुनकर दूसरी सखी कहने लगी—सखी, तुमने जो कहा सो कहा मेरी बात तो सुनो। मैं तो वायु को भी सहन नहीं कर सकती हूँ। कल वायु चली अच्छा हुआ कि तुरन्त पति ने किवाड़ लगा लिये। यदि वह ऐसा नहीं करते तो मैं हजार कोस उड़ जाती। अब राजा के दरबार में चलकर निर्णय करा लिया जाय कि कौन अधिक सुकुमार है।

इस प्रकार की मधुर कहानियाँ जिनमें अतिशयोक्तिपूर्ण काव्य प्रतिभा

रूप म सास लेने क लिए किसी के द्वारा मुख और शाति की भी प्राप्ति होती है।

अवलोकन कीजिय एक पुरप विदेश म कष्टो से पीडित होकर जब अपने स्वदेश को विदा होने लगा तब उसको अनायास उस प्रेमिका का स्मरण हा आया जिसक साथ उसन सुख क कुछ क्षण व्यतीत किय थे, और वह उसके स्नेह से विह्वल होकर अपने मनाभावो का प्रकट करता है।

चलती बेर नजर भर हेरो,
दिल भर जाबें मेरो।
मिला लेव आखन सों आँखें,
घूघट तनक उबेरो।
टप टप, अँसुवा होंयें धरन प,
चित चित मुख तरो।
इसुर' कात विदा की बेरा
होत विधाता डेरो।

जब मैं इस देश म आया था तब केवल तुम्ही मरे दुखी जीवन का अपने प्रेम द्वारा मुख शान्ति देन का चेष्टा करती रहा हो। लेकिन अब विछोह हो रहा है इसलिए इस वियाग वेला म, तनिक प्रम की दष्टि स फिर देख लो, जिससे मेरा यह हृदय आनन्द म भर जाए। अपन घूघट को भी उठाकर अपने नयन मरे नयना से मिला लो। जरा देखो ता तुम्हार बिना देखे य [हमारी आखा क अश्रु टप-टप धरती पर गिर रहे हैं और यह बात तो सिद्ध है ही कि वियोग की बला म विधाता बायाँ हा जाता है।

नयना की बातें अब नयना स हाने लगी थी। वस तो शरीर की सभी इन्द्रियाँ बलवती होती हैं किन्तु उन सबम नत्रेन्द्रिय का बल सर्वोपरि माना गया है। इस पर कवि स्व० एन साइ' का एक उत्तम दाहा मिलता है

नन नैन कै जात हैं नन नन के हेतु।
नन नैन के मिलत ही, नन ऐन' क देत।

नेत्र तो अपनी मूक भाषा म बातें कर ही रह थे। कवल मुख ही मौन था। वह भा अब अ तमन की प्रेरणा क द्वारा अपने विदेशी प्रेमी स कहने लगता है

जो तुम छल, छला हो जाते,
परे उँगरियँन राते।
घरी घरी घूघट खोलत में,
नजर सामने राते।

वध के पैर में अपराध करने पर कठघरा डाल दिया था (दंडी रास्ता में डाला जाता था) और पिता गृह में पुत्री का लगा प्रतीक होती है अत लड़के के गले में डगर (काष्ठ की टेढ़ी लकड़ी जो जानवर (गाय बैल) के गले में डाल दी जाता है)।

घल्लौं में गाय दोवें।
कवार खोर दय ।

भावार्थ —दल्लना में गाय का दूध लहते हैं और भाग्य का दोष देते हैं।

## शिशिर ऋतु के तीज-त्योहार, व्रत, मेले और लोकगीत

माघ मास प्रारम्भ हो गया है। भारतीय मनीषियों के दृष्टिकोण से यह महीना और महीनों की अपेक्षा अनुराग रंजक और चेतना संचेतक तथा स्वास्थ्य प्रदायक माना गया है।

इस महीने में प्रात स्नान करने से शरीर नीरोग रहता है और कंठ बुद्धि तथा वाणी में बल आता है। इसका प्रमाण वाक्लि में मिलता है। शिशिर ऋतु प्रारम्भ होते ही उसके स्वर में मधुरता आ जाती है जो पावस ऋतु प्रारम्भ होते ही मन्द पड़ जाती है।

बुन्देलखण्ड में माघ स्नान की मान्यता महाभारत काल से प्रचलित है। नित्यप्रति प्रात काल नर-नारी स्थानीय सरिताओं सरोवरों और बावड़ियों पर पूरे महीने बड़ी श्रद्धा से स्नान कर हवन दान आदि शुभ कर्म करते हैं।

मकर संक्रांति का महान पर्व और मेला—यह संक्रांति पर्व (स्नान) सूर्य के मकर राशि में आने पर मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड में संक्रांति को बुड़की के नाम से विख्यात है। संक्रान्ति पर्व कभी पौष और कभी माघ मास में पड़ता है। बुन्देलखण्ड में इसका विशाल मेला अन्य स्थानों की अपेक्षा मऊरानीपुर और पारीछा में अधिक उत्साह से भरता है। इस पुण्य पर्व पर स्नान करने के लिए सहस्रों नर-नारी बहुत दूर दूर से बेतवा पुष्पावती सिंधु, धसान और नर्मदा के भेड़ा घाट तक जाते हैं। ऋषियों के कथनानुसार मकर संक्रान्ति का पर्व अघनाशक और मोक्ष प्रदायक माना जाता है।

परम्परानुसार स्नान के पूर्व शरीर पर तिलों का उबटन मर्दन करके फिर जल में डुबकी लगाई जाती है। उपरान्त तिलों द्वारा हवन करके तिलों को ही दान में देते हैं और खाते भी हैं।

अल्पनतावश उस चौखट लगी हुई दीवार को ऊंचा नहीं उठाया।

अब उस स्त्री का पति गृह में अपने संगी साथियों के समीप बैठ कर अपने ऊपर बीते हुए जीवन संघर्ष के कटु अनुभवों को सुनाते हुए कहता है

अबना होबी यार किसी के,
जनम जनम खा सींके।
नेकी करत, काउ नईं जानी
जे फल पाय बदी के।
निठुर्आ ज्वाब दओ है उन
हने नजीके जाके।
मानुष जनम न देओ इसुरी'
पथरा करौ नदी के।

यह मनुष्य यह भाव प्रदर्शित कर रहा है कि अब हमारा यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि हम जन्म जन्मान्तर तक किसी के मित्र नहीं बनेंगे। जिन व्यक्तियों के साथ हमने नेकी बरती, उस तो किसी ने भी नहीं जाना और उसके बदले में जो उन व्यक्तियों ने हमारे साथ व्यवहार किया उसका फल हम भोग रहे हैं। और क्या कहें यहाँ तक हुआ कि हम जिन व्यक्तियों के हृदय के समीप रहते थे, उन्होंने समय स्थान पर सहयोग न देकर कोरा उत्तर दिया। इस कारण अब ईश्वर से यह विनय है कि हे ईश्वर, भविष्य में मुझको मनुष्य का जन्म न देकर सरिता का पाषाण ही बनाना, क्योंकि उसका हृदय मनुष्य के हृदय से कहीं अधिक कोमल होता है।

यहाँ हमने जनकवि स्व० 'ईसुरी' के लोकगीतों का विश्लेषण किया है। उनके लोकगीतों की विशेषता यह है कि वे मूलभाव को और उसके सत्य को शब्दाडम्बर के आवरण में छिपाने का प्रयास नहीं करते। वे तो अपने सरस और सरल हृदय से जनता के सामने अपने भावों को उँडेल देते हैं।

बुन्देलखण्ड के अन्य लोक कवियों द्वारा रचित कुछ ऐसे लोकगीत अब प्रस्तुत हैं जिनमें मानव जीवन में नारी का महत्त्व बताया गया है

घर है घरवारी बिन सूनों।
रात बिना दिन ऊनो।
जस सब तिथियन में नोंनी
होत सिरोमन पूनों।
सौंन, जुही सेवती निवारी
है गुलाब खुसबू नों।
तसई नारी बिन नर कौ
दुख कौ दरिया दूनों।

अब बेदन के आंव चुगाया
कबरा चुनें बिचारे।
अब का धरें ताल तलयन
टारि समद किनार।
इसुर' कात कुटुम अपने सों,
मिलबी कौन दिना र।

हे श्रेष्ठ मानव के हस मा तू अपने देश का त्यागकर विदेश म विपत्तियो से घिरा हुआ मारा मारा फिर रहा है। जो अपने देश म बिना बिंधे हुए मुक्ताओ का भक्ष्य चुगता था वही दुर्भाग्यवश ककड़ो को चुग रहा है और समुद्र के तट को त्यागकर यह अब क्या छोटे छोटे तालाबो के किनारे विश्राम करेगा? भगवान यह दिन कब करेगा जब अपने बधु बाधवो म मिलन होगा।

इसके उपरान्त वह अपने देश प्रेम म विह्वल होकर हृदय के भावों को प्रकट करता है

हसा आ गये बस बिरान
सरवर जाँय सुखानें।
यहाँ रये सों कौन भलाइ
जहाँ बकन के थानें।
उत चल समद अगम्य भरे हैं,
सुख पाव मन मानें।
बचत बने तौ बचौ 'इसुरी'
तान काल कमाने।

रे हस मन तुम अपना स्वदेश त्यागकर विदेश म आ फँसे हो, और तुमको यह भी स्मरण नही हो रहा है कि तुम्हारे बिना वह तुम्हारे प्रदेश का मान सरोवर जिस पर तुम नित्यप्रति विचरण और विहार करते थे, सूख रहा होगा। क्या तुमको यह ज्ञात है कि यहाँ पर रहने म तुम्हारी कौन-सी भलाई है? इस स्थान पर बगुलो का शासन चल रहा है, इस कारण तुमको चाहिए कि तुम अपने ही देश को प्रस्थान करो जहा सुख का अथाह सागर लहरा रहा है। तुम्हारे मन को वहीं विश्राम मिलेगा। इस कारण तुम्हारा यह कर्तव्य है कि जिस शक्ति द्वारा तुमको मुक्त होने म सफलता प्राप्त हो सके, उस पान का प्रयत्न करो क्योंकि इस विदेश म तो तुम्हारे लिए चारों ओर से विपत्ति अपनी भीषण कमान को ताने हुए दृष्टिगोचर हो रही है।

अब एक दूसरे लोकगीत के भाव की बानगी और लीजिए। जब जब मनुष्य के दिन कष्ट म व्यतीत होते है तब-तब उसको उसी स्थान पर किसी न किसी

बुलाया है। वन तो मार्ग में बहुत से व्यक्ति चले जा रहे हैं। हमको तुम्हारे सम्बन्ध में यह ज्ञात है कि तुम बुरे कर्मों से विलग और सुकर्मों के समीप रहते हो तथा जब जब कुल की मर्यादा एवं रक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब-तब साधारण वीरों की तो बात ही क्या, तुमने परशुराम जैसे महाक्रोधी वीर को भी अपने वाक्य प्रहारों से पराजित करके वापस कर दिया।

वह व्यक्ति यह सुन्दर उक्तिपूर्ण उदाहरण सुनकर अत्यन्त हर्षित मन से कहने लगा— 'भया हरो बिना करम धरम कर भय जा ससार सों पार होवे की कौनउँ आसा नईयाँ।' इसी भाव का विवेचन यह आध्यात्मिक लोकगीत करता है

रे मनुआँ, नोने करमन बिन तिरवे की नईं आसा तेरी।
जो बजत की अबकी बिरियाँ,
भ्रमना में ते भरमत रहे।
तौ तेरौ फिर सगौ - सातौ,
कितउ न कोऊ एक दिखहे।
पूरब के खोटे करमन की घिर आहै चउँ ओर अधेरी।
रे मनुआ नोने करमन बिन, तिरवे की नईं आसा तेरी।

रे मन, यदि तुम शुभ कर्मों को नहीं करोगे तो इस असार ससार-सागर से तुम्हारी इस जीवन-नौका के पार होने की कोई आशा नहीं है। यदि तुम इस जन्म में भी माया मोह के मिथ्या बन्धन में बँधे हुए भ्रमते रहे तो तुम्हारा फिर कोई भी साथ देने वाला कहीं भी दिखाई नहीं देगा, क्योंकि जब तुम्हारे चारो ओर अशुभ कर्मों की अँधियारी छा जायेगी तब फिर तुम्हारी अवस्था ऐसी होगी

तिसना के नरकन में परके,
जो जी कितऊ बिलखत रहै।
पर चौरासी जोनन में इत उत
जो जियरा तरसत रहै।
इसों अबकीं बिरियां कैसउँ, होन ना पावे, पल की देरी।
रे मनुआं नोने करमन बिन, तिरवे की नईं आसा तेरी।

रे मन, तब तेरा यह जीव तृष्णा के गहरे गड्ढों में पड़ा हुआ कहीं कष्टों को भोगता हुआ बिलखता रहेगा। इसी प्रकार फिर तू चौरासी लक्ष योनियों में इधर-उधर भटकता हुआ, इस मानव-हृदय को तरसाता रहेगा। इस दृष्टि से तुझको अब इस जन्म में यह ध्यान रखना है कि एक पल का भी विलम्ब न होने पाये। यदि अहंकार और तृष्णावश तू कहीं अपना ही अपना स्वार्थ देखता रहा तब तू यह हीरों सदृश उज्ज्वल मानव जीवन के पुण्य दिवस व्यर्थ में ही

जो पीतम चाकर हो लगते
कजरा देत दिखाते।
'ईसुर' दूर दरस के लाने,
ऐते मड्ड ललाते।

जिसकी प्रेमी यदि मेरा तुम मेरी इन अंगुलियों में छल्ला (अंगूठी) बन जाते तो तुम घूंघट काढ़ते समय मेरी दृष्टि के सम्मुख रहा करते। और मुख पोंछते समय मेरे कपोलों का स्पर्श करते तथा नेत्रों में काजल लगाते समय मेरे मुख की छवि का निरखा करते। ऐसे अपने दूर वास करने पर भी मेरे दर्शन के लिए कभी भी लालायित नहीं रहते।

यह ठीक ही है कि जीवन में जब तक स्नेह का स्थान नहीं बनता तब तक जीवन कलिका विकसित नहीं होती। परन्तु जिस अर्थ व्यवस्था के नाते में किसी प्रकार शान्ति का अंकुर भी तो प्रस्फुटित नहीं होता है। इस दृष्टि से जो प्रेम के स्वरूप की उचित व्याख्या हो सकती है वह केवल स्वार्थ के ही सम्बन्ध में है। मनुष्य जीवन में प्रेम प्रेम के लिए नहीं, स्वार्थ सिद्धि के लिए होता है और स्वार्थ सिद्ध होने पर वह विलग हो जाता है।

विदेशी यात्री का भी यही हाल हुआ। वह अर्थ लाभ न होने के कारण अपने देश को चल दिया। जब वह अपने ग्राम में पहुंचता है और उसकी पत्नी को विदित होता है कि हमारे पति आ रहे हैं तो वह उनके स्वागत के लिए द्वार पर उरैन (पोतकर लीपना) डालने को निकलती है। उस समय के इस लोकगीत का अध्ययन कीजिये

कढ़तन लागो मूड़ दिरौंदा
उत हतो सकरौंदा।
लचगइ, नगइ दूनर होगइ
नबू कसौ लौंनि।
कहा कहौं या कारीगर खों
धरो न ऊंचो सौंदा।
'ईसुर' बात भोर की कड़बी,
सूरज को चकचौंदा।

जब वह स्त्री उरैन डारन को निकली तब मार्ग में बैठे हुए बुजुर्ग पुरुषों के कारण उसे संकोच था और प्रातःकालीन सूर्य किरणों की चकाचौंध लग रही थी जिससे उसका सिर द्वार की चौखट से टकरा गया। इस चोट के लगते ही वह स्त्री इस प्रकार झुकी और नव गई जिस प्रकार नवनीत का लौंदा अपनी कोमलता के कारण ज़रा-सा दबाने से नव जाता है।

लोकगीतकार कहता है कि मैं उस कारीगर से क्या कहूँ, जिसने अपनी

मन जुबान लों करो चाइये
सदा नौन सों होय।
ऐसे नर के मर 'इसुरी'
अस गगा को होवें।

जो दार रण भूमि म युद्ध करता हुआ अस्त्र शस्त्रों द्वारा विधकर अपन शरीर का त्याग करता है और समराङ्गण म पीठ न देकर अपन वक्षस्थल पर शस्त्रा के प्रहार सहता है वही वीर है। वीर पुरुष का यही कर्तव्य है कि इस प्रकार अपन नमक को अदायगी करे।

जो वीर इस प्रकार का वीर कर्म करके अपन प्राणा को त्यागता है उसको गगा का पुण्य प्राप्त होता है। इसके उपरान्त वह अपनी प्रेमिका और मात भूमि के प्रति एक लोकगीत कहने लगता है

मानो इतनों जस कर लीजो,
चिता अन्त ना दीजो।
चलतन सिर की गिरें पसीना,
भसम की अन्तस भीजो।
निगतन खूद चेटका लातन।
उन लातन मन दीजो।
वे सुस्ती ना होंयें रात - दिन,
जिनके ऊपर सीजो।
गगा जू लों मरें 'इसुरी'
दाग बगौरा दीजो।

'मित्रो तुमको हमारे साथ इतना उपकार अवश्य करना है कि हमारे मरणोपरान्त हमारी चिता को हमारी प्रेमिका के मार्ग म ही लगाना क्योंकि मुझको यह विदित है कि जिसके पवित्र प्रेम म हम अपने प्राणों को त्याग रहे है वह अहर्निश अपने कार्यों के कारण निवृत्त ही नही हो पाती है, अत यदि तुम हमारी चिता को उस मार्ग म लगा दोगे जिस मार्ग से वह नित्य प्रति निकलती रहती है तो यह होगा कि उनके शरीर से मार्ग श्रम के कारण जो पसीना चिता पर गिरेगा उससे हमारी भस्म का अन्तस भीज जायगा और उनके चरणो के पड़ने म जो हमारी चिता की भूमि खुदेगी उसमें हमको सुख शान्ति की प्राप्ति होगी। इसके अतिरिक्त एक बात पर विशेष ध्यान और देना कि यदि दुर्भाग्यवश मेरा मरण गगा के किनारे हो तो मेरे शरीर का दाह-संस्कार बुन्देलखण्ड की पावन भूमि बगौरा ग्राम म ही करना। यह हैं लोकगीतकार के भाव अपनी प्रेमिका और अपनी बुन्देलखण्ड मात भूमि के प्रति।

जितने बुन्देलखण्डी लोकगीत इस जनपद म प्राचीन काल से प्रचलित हैं,

पत्नी के बिना घर वैसा ही सूना होता है जैसे रात्रि के बिना चन्द्र और पूर्णिमा के बिना तिथियाँ तथा तालाब के पुरइन के बिना उसकी शोभा, सुहो, सिंगारी आदि की शोभा। बिना नारी गृह के मन के मन की सरिता लिए लिए दुखी प्रवाहित होती जाती है। एक दूसरी उक्ति का अवलोकन और कीजिए

सब कोउ सुख करे हैं जा तन कौ,
को जाने जा मन कौ।
भाइ ब ह, उर कुटुम कबीला,
साथ करें सब धन कौ।
नारी बिन कोऊ नइँ औंटत
बिपता पोंछे पन कौ।
सूख परत सब अब लरिया
अरधंगिन, जीवन कौ।

पत्नी के बिना इस शरीर की कौन सुधि लेगा और अन्तर्मन की बात कौन जानेगा? बन्धु-बान्धव नाते रिश्तेदार तो केवल द्रव्य के ही चाहक होते हैं। उनका इस मन से क्या सम्बन्ध? जब यह शरीर वृद्धावस्था की विपत्तियों से घिरा होगा तब बिना पत्नी के कोई भी दुख का बँटाने वाला नहीं मिलेगा।

इस कारण लोकगायक कहता है कि नारी का मूल्य अपने जीवन के अनुभवों से परखकर देखा है। जिस प्रकार नेत्रहीन व्यक्ति को मार्ग में केवल लकड़ी से ही सहारा मिलता है उसी प्रकार मानव का जीवन निर्वाह में पत्नी के सहयोग की नितान्त आवश्यकता पड़ती है।

ग्राम के साथी अथाई पर बठे हुए उनके जीवन के अनुभवों को बड़े चाव के साथ श्रवण कर रहे हैं (अथाई उस स्थान को कहते हैं जिस स्थान पर ग्राम्य जन प्रातःकाल और सूर्यास्त पर एकत्र होते हैं)। तब तक अथाई पर बठे हुए एक व्यक्ति की दृष्टि मार्ग से जाते हुए एक विशिष्ट पुरुष पर पड़ती है और वह उसे बड़े स्नेह से बुलाता है। वह व्यक्ति भी लौटे पाँव अथाई पर आकर सबसे पूछने लगता है कि "भया हरो, कओ काय खों बुलाओ ?" तब उनमें से एक व्यक्ति कहने लगता है

हमनें लखन जान के टेरे,
नातर चले जात भौतेरे।
डेरे रये कुकरमन सों तुम
रये सुकरमन नेरे।
कुल की मरजादा राखन खों
परसराम से फेरे।

भाई हमने तुमको लक्ष्मण सदृश गुणवान और बलवान समझकर

के सम्बन्ध म वेद शास्त्र और पुराणो म यह प्रसग आया है कि तारकासुर दत्य के आतक से जब देवतागण विकल हुए तब उन्होंने ब्रह्मा से जाकर निवेदन किया और ब्रह्मा ने भगवान शिव से हिमवत की पुत्री पावती क साथ विवाह का आग्रह किया, जिसे शिव ने स्वीकार किया।

भगवान शिव का विवाह फाल्गुन कृष्ण चतुदशी को हुआ जो शिवरात्रि के नाम से अन्य प्रान्तो की अपेक्षा बुन्देलखण्ड म आज भी बडी श्रद्धा भक्ति के साथ मनाया जाता है।

कालान्तर म भगवान शिव के घर स्वामिकार्तिक का जन्म हुआ जिन्हाने तारकासुर दत्य का वध किया।

बरूला पाचें—बरूला पाचें शुक्ल पचमी को होती है। इस दिन प्रत्यक गृह मे गाय क गोबर द्वारा बरूले (य गोल गोल बनाय जाते हैं तथा इनक मध्य एक छिद्र रखा जाता है) थापे जाते है। इन बरूलो क सूखन पर इनकी मालाए बनाकर रख दी जाती हैं, फिर फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को 'कनक' (गहू के आटे) द्वारा चौक पूरकर इन मालाओ को धरती पर प्रस्थापित कर, मध्य म एक बाँस या एरण्ड वक्ष का तना गाडकर होलिका दाह किया जाता है। दाह के उपरान्त उसी अग्नि पर कनक की गकरियाँ (हाथ से बनाई हुई रोटी) सेंककर फिर होलिका का विधिवत पूजन करके इनका भोग गुड और घृत क साथ लगाया जाता है। इन गकरियो को सभी परिवार के व्यक्ति प्रसाद रूप म ग्रहण करते हैं।

यहाँ हम कनक शब्द की व्याख्या कर देना उचित समझते हैं। इस क्षेत्र म 'कनक' गहूँ या किसी के पिसे हुए आटे को कहते हैं और कनक स्वण' तथा 'धतूर को भी कहते हैं। जिस प्रकार स्वण प्राप्त होने पर प्रत्यक व्यक्ति म मद आ जाता है उसी प्रकार धतूरे के ग्रहण करने पर भी नशा आ जाता है। लेकिन कनक अर्थात अन्न धन जब किसान के पास एकत्र हो जाता है तब उसको भी मद आ जाता है। इसके सम्बन्ध म इस जन पद म एक कहावत प्रसिद्ध है कि गागर म नाज गवारे राज।' और जब उसी अन्न धन को भोजन म ग्रहण किया जाता है तब गरीब अमीर किसान मजदूर सभी को भाजनोपरान्त इसका नशा अवश्य आता है। अन्तर केवल इतना है कि गरीब या मजदूर नशा आन पर कुछ और नशा (बीडी या तमाखू का) करके उसको दबाकर काय म जुट जाते हैं और धनी व्यक्ति नशा आन पर निद्राग्रस्त हो अपन शयनागार म चले जाते है। प्रभाव दोनो पर होता है।

इसी प्रकार अन्य बुन्देलखण्डी शब्द जसे उरया, उजगती लौलयाँ, भोरभुरैया भिठुवाँ, आदि सहस्रो हैं, जो सस्कृत के अति समीपवर्ती दष्टिगत होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिन धरती पुत्रो ने इन बुन्देलखण्डी शब्दा को

थे था। अन्त में यह कहना कि इस संसार में हमारा कोई नहीं है।

अब एक और भाव पूर्ण लोकगीत प्रस्तुत है

> कउतइ अब कोउ नइ हमारो।
> तो तने हीरा सौ अपनो
> बिरथां जीवन गारो।
> अपनोंइ सुख अपनोंइ दुख,
> हरदम हियें बिचारो।
> कमरें काउ के काम परो नइं
> फनों फिरो मतवारो।

तुम सदैव ही अपने सुख को सुख और अपने दुख को दुख मानते रहे और जब किसी व्यक्ति पर विपत्ति का समय आया तब तुम उसके विपत्ति काल में सहयोग न देकर अपने अभिमान के मद में उन्मत्त होकर ही घूमते रहे।

> मन में अब तलक मानत रयें,
> अपनों पुजो पसारो।
> अपनों कुआ सबइ सबइ सौं मीठो,
> और सबन को खारो।

अभी तक तुम अपने मन में यह भान रखते रहे कि यह सम्पत्ति यह वैभव का प्रसार हमारा ही है और जिस कार्य रूपी कूप से हम जल पान कर रहे हैं, वही केवल मीठा है तथा अन्य व्यक्तियों का खारा है।

> अपनो करनीं सबसों नोंनी,
> अपनोंइ नोंनों द्वारो।
> अपनें गुनत लगा कें अपनों
> तकत रओ उजयारो।

तुम अपने कर्तव्य कर्म को सबसे श्रेष्ठ और अपने ही शोभा प्रतिष्ठा रूपी द्वार को सुन्दर मानते रहे तथा अपने ही स्वार्थ के लिए प्रत्येक समय का गणित लगाकर अपने ही प्रकाश की खोज में सदैव घूमते रहे।

अथाई (चौपाल) पर बैठे हुए व्यक्तियों में एक कहने लगा—'भैया कछू हमाइ सोइ सुन लो।" सब कहने लगे— भौतउ नोंनी भैया अवस्सइ सुनायें चइये।' वह कहने लगा बड़े हर्ष के साथ

> जो कोउ समर भूम लड़ सोवे
> तन तरवारन खोवे।
> देय न पीठ, ठीक छाती के—
> घाव सामनू होवे।

भाइयो को भोजन करावर, टीका करके कुछ मिष्ठान भी भेंट करती हैं। इस टीके के उपलक्ष्य म भ ई भी अपनी बहन को यथाशक्ति द्रव्य आदि भेंट करता है।

उनाव का फाग मेला—उनाव बु देलखण्ड का प्रमुख तीथ स्थान ह जो बालाजी क नाम म विख्यात है। यहा पर पहूज नदी (पुष्पावती) क तट पर बालाजी सूयदेव का दुग सदृश कलापूण मदिर अवस्थित है जिसकी सिंह पौर सरिता क अचल म खडे होकर अवलोकन करने म अधिक रमणीक लगती है।

यह सूय देव का मदिर जन श्रुति के अनुसार प्रसिद्ध तांत्रिक अमरसिंह सेवरा का बनवाया हुआ कहा जाता है। इतिहासकारो ने इस मन्दिर म प्रतिष्ठित सूर्य की मूर्ति को सूययत्र माना है। कप्टन ल्युआड क मत स यह यत्र एक पाषाण खण्ड है जो पड अगुल व्यास म है। इस पर इक्कीस त्रिभुजो म सूय के २१ स्वरूपो का प्रतिनिधित्व है। (भारती वाणी अक पृष्ठ ११) इस सम्बन्ध म एक जनश्रुति और भी चरिताथ है। यह मूर्ति बरयजू नामक एक काछी को प्राप्त हुई थी। इसके कारण इस मूर्ति का नाम बरम्बाला पडा है।

उनाव क समीप ही अशोक का शिलालेख भी है। इससे सिद्ध होता है कि यह सूय मन्दिर लगभग ढाई हजार वष पूव निर्मित हुआ। यहा इन्ही सूयदेव की मान्यता म प्रत्यक वष चत्र कृष्ण पचमी को फाग का मेला भरता है।

इस स्थल पर दूर दूर स व्यापारी क्रय विक्रय करन और दशनार्थी अपनी मनोकामना की सिद्धि क लिए उपस्थित होते हैं। अवलोकन कीजिये ग्राम्यजनो की सजी बलगाडिया जिनम ग्राम युवतिया अपने मधुर कठ से लोकगीत को गाती हुई चली आ रही हैं।

बाला जू बराबर देव नयां'

देखत हा दखत पहूज नदी क तट पर अपार जन समूह एकत्र हो गया और रग से भरी पिचकारी और गुलाल भर कुमकुमा चलने लग। युवको की टोलियाँ ढोलक और मजीरा के स्वर म स्वर मिला फाग क लोक गीत गान लग

जा होरी खेल राम लला,<br>
हो राम लला गोविन्द लला। जा होरी<br>
केसर भर पिचकारी मारें,<br>
मानौं भदइयाँ पर झला। जा होरी

एक ओर ग्रामीण युवतियाँ अपनी टोली बनाये हुए मधुर कठ स गा रही थी

उनमें अधिक भावपूर्ण लोकगीत जिनको फाग कहते हैं बुन्देलखण्ड जन कवि 'ईसुरी' के मिलते हैं। ईसुरी अपनी मातृभाषा बुन्देलखण्डी के प्रति स्वप्रतिष्ठित रहे हैं। उन्होंने जो लोक साहित्य प्रदान किया वह अमूल्य निधि है।

फाल्गुन मास आ गया है। यह मास अन्य मासों की अपेक्षा प्रत्येक बाल-वृद्ध और वनिताओं के लिए आनन्ददायक सिद्ध होता है। तभी तो इस महीने से आकर्षित हो कवि सेनापति ने लिखा है कि "रस फाग को है—रंग हुलास को है फागुन को मास राग रंग को है रंग को।" इसके अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास जैसे भक्त कवि ने भी इस मास के वर्णन में लिखा है मनहुँ मुए मन मनसिज जागा।' और आल्हाखण्ड के रचयिता जगनिक ने तो इस महीने में विधुरा का वर्णन करते हुए यह भाव प्रदर्शित कर दिया कि 'रहुआ रोवें रे फागुन में सुन सुन बिछियन की झनकार।'

फाल्गुन मास में वास्तव में बिछिया की झनकार इतनी मधुर लगती है कि नेत्रेन्द्रिय की शक्ति क्षीण होने पर भी वृद्ध पुरुष अपनी कर्णेन्द्रिय द्वारा इस झनकार को श्रवण करने हेतु अति आतुर भाव से द्वार पर बैठे रहते हैं। बिछिया की झनकार के सम्बन्ध में लिखे गए लोकगीत बुन्देलखण्ड में 'लेद' के नाम से विख्यात हैं। उसके बोलों का चयन प्रस्तुत है। एक युवती दूसरी से कह रही है

धीरे धरो धन पाँव न कानन
बिछियन की धुन सुन पर।
बसई चाल गयन्द की उर
तइप मद असवार। न कानन
मोर बनक बिछिया बने,
जो करतइ गरल अहार। न कानन
गोरी फूक फूक के डग धरो,
उर मित्र जई में सार। न कानन

हे धना (धन्या स्त्री) अपने पैरों को धरती पर धीरे धीरे रखो जिससे तुम्हारे इन बिछियों की मधुर झनकार किसी के कानों में सुनाई न पड़े क्योंकि एक तो तुम्हारी चाल ही स्वभावतः गजेन्द्र की तरह है और उस पर मुग्धावस्था का मद चढ़ा हुआ है तथा इसके अतिरिक्त जो तुम अपने पैरों की अंगुलियों में बिछिये पहने हो, वह मोर पक्षी की बनावट के हैं जो विषपान करता है। तब फिर इन बिछियों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय?

इस कारण हे गोरी धन अपने पैर इस धरती पर फूंक फूंक कर (धीरे-धीरे) धरकर चला करो इसीमें सबका कल्याण है।

शिवरात्रि—शिवरात्रि फाल्गुन कृष्णपक्ष चतुर्दशी को आती है। शिवरात्रि

मूर्तियाँ भी अपनी भाव व्यजना द्वारा कला प्रेमियो के हृदयो को आकृष्ट करती हैं।

यह मनोरम स्थान छतरपुर और पन्ना राज्य के मध्य मे अवस्थित है। इसकी रक्षा सदव बुन्देले नरेश करते आये हैं और बुन्देला वीर छत्रसाल ने तो इसकी रक्षा हेतु अस्सी वष की वृद्धावस्था तक शत्रुओ से डटकर युद्ध किया है। आज भी अपनी पूव परम्परानुसार छतरपुर नरेश इसकी रक्षा के लिए तत्पर हैं और वहा की कलाकृति के प्रसार के लिए एक बहुत विशाल मेला इस खजुराहो के प्राङ्गण म प्रत्यक वष लगवाते है जो फाल्गुन कृष्ण चतुदशी (शिवरात्रि) से चत्र कृष्ण चतुदशी तक भरता है।

इस मेले म आपको ग्रामीण लोक साहित्य और सर्वोच्च सर साहित्य, जो बुन्देलखण्ड की साहित्य निधि माना जाता है, सुनने को प्राप्त होगा। सैर छद की जो पक्तियाँ हमको शोध करने पर प्राप्त हुई है उनसे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। अतएव यह भी सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र सस्कृत साहित्य से अधिक प्रभावित रहा होगा। यही प्रभाव इन सर छद की पक्तियो म दर्शित होता है।

बे कलम कुभ सम उरोज विदरत सौंहें।

इस पक्ति म नायिका अपने नायक के प्रति यह भाव प्रदर्शित कर रही है कि मेरे पति हाथी क कुभ सदृश उरोजो को विदीर्ण करने अथवा उनका मद उतारने की शक्ति रखते है। एक सर छद की पक्ति और उद्धत की जा रही है जो सस्कृत-साहित्य से प्रभावित होना पूणत सिद्ध करती है

सस्कृत मे सर छद पढे ज्ञानी कविजन।

अब हम यहा की ग्रामीण युवतिया द्वारा गाये जाने वाले कुछ रसपूण लोकगीतो के उदाहरण देते हैं। देखिय एक युवती अपनी सहेली से अपने यौवन धन पर डाका पड जाने का वणन कर रही है

जुवन प डाके पर मोरी गुइयाँ
क मोरी गुइया कौनें कासे लख लयें।
परख लयें, ढाक धरे मोरी गुइयां। जुवन प
क मोरी गुइयां, लाज शरम सब लुट गइ,
धरम प धांके परे मोरी गुइयां।
जुवन प डाके परे मोरी गुइया।

(स्व० गुरा अजमेरा)

इस क्षेत्र म ग्रामीण लोकगीतो म 'रावला' को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस अधिकाशत ग्राम नतकी (बेडिनी) ही लोकनृत्य करते हुए गाती हैं। जब वह गीत प्रारम्भ करती है तब उसकी सम और ताल की लय के साथ

'ईसुर' कउ जगा फिर आये,
कोउ धरत नईं गानें।

मुझे अपन मन रूपी माती का परखवान क लिए एक चतुर जौहरी की आवश्यकता है, क्योंकि मैंन इस तन रत्न को बडे प्रयत्न मे रखा है और इसको प्रेम रूपी सान पर चढाकर उज्ज्वल पानीदार बनाया है। अब हम इस मन मोती को बचना चाहत हैं किन्तु यह बचा उसी दुकानदार को जायेगा जो इसक गुणा का ज्ञान रखता होगा। लेकिन क्या करें हमको इस बात का अत्यन्त खेद ह कि हम अनेक दुकानदारो के पास गये किन्तु कोई ऐसा भी नही मिला कि जिसम खरीदने की तो बात ही क्या इसको गिरवी रखने की भी क्षमता होती।

खजुराहो क विशाल म मले आपको यहा का रहन सहन, आहार व्यवहार और रीति रिवाज देखने का तो अवसर प्राप्त होगा ही, साथ ही जो वस्तुएँ यहाँ क्रय विक्रय के लिए ग्रामो स आती हैं उनको भी परखने का अवसर मिलगा। जस हल्दी, जीरा धना मिच आँवला चिरौंजी पपीता बिल्व आदि की इस क्षेत्र म बहुत बडी फसल होती ह। ये इस मेल म बिक्री क लिए आते हैं। इसके अतिरिक्त यहा क निर्मित पीतल और मिट्टी क बतन तथा खिलौने, जो कलापूण होत है, वे भी इस मल म बिकन आते हैं। महुआ और तेंदू के पत्ता का तो बहुत बडा व्यवसाय इसी मेल के अन्तगत होता है। खजुराहो का मेला सभी दृष्टिया म बडे महत्व का है।

o o o

जसुदा जू तुमाये दुआर हमारो-
खेलत मोती गिर गओ।
मोती कों मोती गओ।
उर चपाकली को हार । हमारो

इस फाग के लोक गीत में मोती के यशोदाजी के द्वार पर खो जाने मे किसी गोपिका को कृष्ण पर मोहित होने की भाव-व्यंजना कितने सुन्दर ढंग से वर्णित की गई है। तब तक एक टोली ईसुरी का फाग अपनी नगड़िया के स्वरों में मिलाकर गा उठती है। इस फाग में ईसुरी ने स्वयं दूतिका नायिका का वर्णन किया है। इसका अध्ययन तो कीजिये

जिन जाओ विदेशी दिन थोरो,
जिन जाओ विदेशी दिन थोरो।
उर दुआरे प बादों घोरो। जिन
चों मैंला पै पलँग बिछा दउँ,
आराम करो कम्मर छोरो। जिन
सास ससुर को डर जिन मानों
घर को बालम है मोरो। जिन
कात 'इसुरी सुनो मन प्यारे,
मन भरदउँगो मैं तोरो। जिन

बुन्देलखण्ड में यह बालाजी का मेला सभी दृष्टि से उत्तम रीति से भरता है।

खजुराहो का मेला—बुन्देलखण्ड को जिस प्रकार इतिहास वेत्ताओं ने भारतवर्ष का हृदयस्थल माना है, उसी प्रकार कलाकारों ने खजुराहो को बुन्देलखण्ड की ललित कला का उद्गम घोषित किया है। यहाँ के मन्दिर ऋषि वात्सायन के काम सूत्रों के आधार पर निर्मित हुए हैं।

इसका निर्माण चन्देल वंश के राजा नन्हुक से प्रारम्भ हुआ था और अन्तिम राजा शशांक तक चलता रहा। इन राजाओं का राज्य इस भूमि पर सन ८०० सौ से सन १५३० तक रहा है। यह बात खजुराहो के शिलालेखों द्वारा ज्ञात होती है। इस स्थान का प्रथम नाम खजूर वाहक था जो कालान्तर में खजुराहो के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस खजुराहो को बुन्देलखण्ड के जन पद में प्रमुख तीर्थ-स्थान की मान्यता प्राप्त है और यहाँ के मन्दिरों तथा मूर्तियों में जो कला है वह केवल भारतवर्ष में ही नहीं विश्व की कलाकृतियों में अपना श्रेष्ठ स्थान रखती है।

इन मन्दिरों की कुछ मूर्तियों को कला शून्य बहलोल लोदी और सिकन्दर लोदी ने अपने क्रूर प्रहारों द्वारा खण्डित कर दिया था, लेकिन ये अंग भंग

ढोलक, झिकिरी, मजीरा और नगाड़ी वाद्य बजते हैं। गायक का नाई मशाल या
छड़ पर तेल डालकर रागनी जिताता हुआ रंग जलाकर गाता घूमता फिरता
है। अब आप राउला का पंक्तियों का आनन्द लीजिए। इस पर ग्राम
नर्तकी गा रही है

विजनया डुलाय, विजनया डुलाय
राजा पसीना म डूब गय।

किसी सौभाग्यशाली पुरुष की रमणी अपनी सखी को आशा दे रही है कि
प्रियतम पसीने में तर बतर हो गये हैं। शीघ्र पंखे द्वारा वायु करो जिससे
उनको आराम और शान्ति प्राप्त हो। पसीने में क्यों डूब गये? यह प्रश्न बड़ा
ही गूढ़ है और लोकगीतकार की कल्पना शक्ति का द्योतक है। ध्वनि अथवा
कथित गुण जाती के अनुसार साहित्यिक स्वयं अपने विचार द्वारा भाव को
ग्रहण करने में समर्थ होंगे। एक और भावपूर्ण राउला की पंक्तियों का आनन्द
लीजिये

इधियारी है रैन, इधियारी है रैन
भौजी के बूंदा दमक रये।

अमावस्या की घोर अंधकारपूर्ण रात्रि है और इस अंधकारपूर्ण आकाश
में रजनी भावज के सुन्दर ललाट पर तारागण रूपी बेंदी के बूंद देदीप्यमान
हो रहे हैं। इस राउला छन्द में लोकगीतकार ने सुन्दर उक्तिपूर्ण ढंग से
रूपकोतिशयोक्ति का विशद वर्णन किया है। यह राउला छन्द होता तो केवल
दो ही पंक्तियों का है लेकिन भाव और राग में अपना विशेष महत्त्व रखता
है। यह बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी प्रान्त में नहीं गाया जाता।
बुन्देलखण्ड में भी यह ग्रामीण मेला एवं फाग उत्सवों में ही श्रवण करने को
प्राप्त होगा।

मेरा विश्वास है कुछ लोग यह समझते होंगे कि मेरे रहन सहन का
अवलोकन और लोकगीतों के श्रवण करने कराने की दृष्टि से भरते होंगे।
लेकिन बात ऐसी नहीं है। मेरे अधिकतर श्रय विनय की ही दृष्टि से भरते
हैं। देखिये जन कवि ईसुरी अपने मन मोती का यत्न आये है और यह भाव
प्रदर्शित कर रहे हैं

अपने मन मानिक के लानें
सुघर जौहरी चानें।
नर-तन रतन जतन सौं राखो.

# सहयोग तालिका

इस शोध ग्रन्थ में हमने जिन प्राचीन तथा आधुनिक विद्वान लेखकों कवियों और पुस्तकों तथा पत्र पत्रिकाओं से सहयोग प्राप्त किया उनका क्रम इस प्रकार है

सर्वश्री कवि कुल गुरु कालिदास, कवीन्द्र केशवदास गोस्वामी तुलसीदास, रहीम, कबीरदास, राय प्रवीण राममिश्र, दीन, सुजान, बिहारी, महाराज छत्रसाल लालकवि, पृथ्वीसिंह रसनिधि, जगनिक चन्द्रवरदाई भड्डरी बोधा, काली कवि, रूपदास नीघरा श्याम, गंगाधर व्यास ईसुरी कमय, सहन्य, जुगलेश विष्णुभट्ट गौड़ गोरेलाल तिवारी रतनेश, दामोदरदास जय कृष्ण काल, पं० श्याम बिहारी मिश्र, जगोले शायर म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मुंशी अजमेरी, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, शिवरत्न चन्देल, रसिकेन्द्र पं० बेनीमाधव तिवारी, पं० घनश्याम दास पाण्डेय कवीन्द्र नाथूराम माहौर, राष्ट्रीय कवि घासीराम व्यास नरोत्तमदास पाण्डेय मधु, भगवानदास दास, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि, पं० सदाशिव दीक्षित साहित्याचार्य, डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा डॉ० भगवानदास गुप्त, मोहनलाल श्रीवास्तव अम्बिका प्रसाद वर्मा दिव्य, गौरीशंकर द्विवेदी जगदीश उपाध्याय रामप्रसाद शर्मा उपरीन, राजकवि हरनाथ अम्बकेश भैयालाल व्यास वासुदेव गोस्वामी, शिवशंकरलाल रिछारिया अशान्त, दीपक, द्वारिकेश मिश्र, कन्हैयालाल शर्मा कलश, सर्वेन्द्र, राघवेन्द्र, नीरज जैन धन्नू कुशवाहा, तुलसी कुशवाहा रामदास कुसुम।

वीर सतसई हिन्दी साहित्य का इतिहास रत्नावली वीरसिंह देवचरित, माझा प्रवास, विज्ञान गीता रामायण, रामचन्द्रिका, खजुर्वाहिक खजुराहा, केलिकुतूहलम, बुन्देल वैभव, छत्रप्रकाश चन्देल चन्द्रिका हरदौल चरित्र, राजा हरदौल सरसी भेंट, ओरछा दर्शन लोकगायनी, महोबा खण्ड काव्य गारीज्ञान बोध मनोहर गीत गायन मोहनीगारी, वीर ज्योति।

सुकवि मधुकर विपिनवाणी बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण अङ्क, बुन्देली वार्ता, विन्ध्य भूमि प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ भारती, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर लोक पथ। ● ●